व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध

(2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के सन्दर्भ में)

VYANGYA KAVI PRAMOD KUMAR NAYAK KE SANSKRIT SAHITYA MAIN MANAVIYA MULYABODH

(2016 ESVI TAK RACHIT RACHANAON KE SANDARBH MAIN)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला–संकाय

शोधार्थिनी

शशी मथुरिया

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय
सह–आचार्य

संस्कृत–विभाग

राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2021

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the Thesis entitled "व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के सन्दर्भ में)" by **Shashi Mathuria** under my guidance. She has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented her work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date :

(Dr. Purnachandra Upadhyaya)
Associate Professor
Department of Sanskrit
Govt. College, Bundi (Raj.)

स्वीकृति

दि. 11.01.2021

मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि, डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय, सह–आचार्य एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष, राजकीय महाविद्यालय बून्दी (राजस्थान) के मार्ग निर्देशन में सुश्री शशी मथुरिया मेरी संस्कृत कृतियों पर शोधकार्य कर रही हैं। इन का शोध शीर्षक है– 'व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध' (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के संदर्भ में)।

मैं इस विषय पर पीएच्.डी. करने हेतु सुश्री शशी मथुरिया को सहर्ष स्वीकृति प्रदान करता हूं।

प्रमोद कुमार नायक
11.01.2021

(डॉ. प्रमोद कुमार नायक)

प्राचार्य, श्री दामोदर संस्कृत महाविद्यालय

भद्रक, ओडिशा

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that Ph.D. Thesis Titled **"व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के सन्दर्भ में)"** by **Shashi Mathuria** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.

e. The Thesis has been checked using Plagiarism checker **URKUND** and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

Shashi Mathuria	**Dr. Purnachandra Upadhyaya**
Research Scholar	**Research Supervisor**
Place :	Place :
Date :	Date :

शोध–सार

सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा।।

संस्कृतसाहित्य एक महान् वटवृक्ष है, वेद उसका मूल है। ब्राह्मण और आरण्यक उसके तने हैं, रामायण, महाभारत और पुराण उसके परिपुष्ट मध्यभाग हैं, जिनके ऊपर विविध दर्शन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्वविद्या, वास्तुशास्त्र आदि भौतिक ज्ञान–विज्ञान को पल्लवित करने वाली बहुमुखी शाखाएँ हैं। इसी कारण, संस्कृतसाहित्य का अनुसंधान हर युग और हर देश के विद्वानों के लिए मानव जीवन के सकल लक्ष्य की सर्वांगीण सिद्धि के लिए सर्वदा सफल प्रयास सिद्ध हुआ है।

कालक्रमानुसार परिवर्धमान संस्कृत साहित्य का आयाम इतना विस्तृत हो चुका है, कि इस की प्रत्येक शाखा के उद्‌गम और प्रसार की पूर्वापरता का निर्णय करना आज अनुसंधान का एक प्रमुख विषय बन गया है। बदलते परिवेश में संस्कृत साहित्य में भी नयापन आया है। आज संस्कृत में न केवल नवीन विचारों को लाया जा रहा है अपितु इन नवाचारों को नये ढंग से रचित भी किया गया है। अतः यह शोध प्रबन्ध नवीन काव्य की व्याख्या करने का एक अभिनव प्रयास मात्र है।

"व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध" (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के सन्दर्भ में) शीर्षकान्वित इस शोध प्रबंध में व्यङ्ग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत रचनाओं में निहित मानवीय मूल्यबोध को शोध का विषय बनाया गया है।

वर्तमान में व्यङ्ग्यात्मक संस्कृत काव्य, कथा, तथा लेख आदि साहित्यिक चतुर्दिशाओं में महारथ रखने वाले अपनी सृजनशीलता के प्रकाशपुंज से समस्त संस्कृत साहित्य रूपी आकाश को जगमगाने वाले नायक जी अत्यन्त प्रतिभासंपन्न लेखक हैं। प्रासंगिक आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् में अत्यधिक लोकप्रिय होने का कारण, आप का सरल व्यक्तित्व और उत्कृष्ट लेखन ही है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे स्वयं विद्या देवी शारदा आप के मन–मन्दिर में निवास करती हों, इसी कारण आपने अनेक लोकप्रिय रचनाएं जैसे– **शबरी, गर्त्तः, दारिद्र्यशतकम्, उवाच कण्डुकल्याणः, कथासप्ततिः, स्वर्गादपि गरीयसी, स्वर्गपुरे** तथा अनेक लेख लिखे हैं। वर्तमान में भी कविवर नायकजी अपनी सशक्त लेखनी से संस्कृत साहित्य भण्डार को निरंतर समृद्ध करने में रत हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में न केवल कविवर नायकजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, अपितु उनकी साहित्यिक रचनाओं में समाहित मानवीय मूल्यों के विविध पक्षों यथा

सामाजिक मूल्यबोध, सांस्कृतिक मूल्यबोध, राजनैतिक मूल्यबोध एवं आर्थिक मूल्यबोध का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिस का संक्षिप्त शोध–सार निम्न प्रकार है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भूमिका एवं उपसंहार सहित सात अध्यायों में विभक्त है। भूमिका के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का स्वरूप एवं वर्गीकरण, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का प्रतिपाद्य एवं विशेषताएँ तथा संस्कृत कथा साहित्य की परिभाषा, उद्भव और विकास एवं भेद निरूपण किया गया है।

प्रथम अध्याय में व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के जीवन परिचय, शिक्षा और व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए उनके रचना संसार के कार्य क्षेत्र, गद्य साहित्य, पद्य साहित्य अन्य पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध अर्थ, परिभाषा व स्रोतों की चर्चा करते हुए व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध का विस्तृत अध्ययन करने के लिए निम्न बिन्दुओं की समीक्षा की गई है। यथा– सामाजिक समरसता, नारी चेतना, यौतुकप्रथा, दलितचेतना, श्रमिकचेतना, वर्णव्यवस्था, धर्माडम्बरता एवं कर्मप्रधानता।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक मानवीय मूल्यबोध को विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है, इस के अंतर्गत निम्न बिन्दुओं को समाहित किया गया है। यथा राष्ट्रीयता, परोपकार की भावना, सेवापरायणता, शिक्षा, संस्कृति की समन्वयवादिता, उच्छृंखलता तथा विविधता में एकता।

चतुर्थ अध्याय में राजनैतिक मानवीय मूल्यबोध का तात्पर्य और व्याख्या की गई है। व्यंग्य कवि डॉ. नायक के संस्कृत साहित्य में राजनैतिक मानवीय मूल्यबोध के विस्तृत अध्ययन हेतु निम्न बिन्दुओं का अध्ययन किया गया है। यथा– प्रजातान्त्रिकता, राजतान्त्रिकता, पाखण्डिता, भ्रष्टाचार तथा आतंकवाद।

पंचम अध्याय में डॉ. नायक के संस्कृत साहित्य में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत रखा गया है। यथा– कृषिप्रधानता, पुरुषार्थ की सिद्धि, अर्थोपार्जन में नारी की भूमिका, आर्थिक शिक्षा तथा श्रमिक की भूमिका।

उपसंहार के अन्तर्गत डॉ. नायक की रचनाओं का अध्ययन गत उपलब्धियों तथा निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट भाग के अन्तर्गत डॉ. नायक का साक्षात्कार प्रस्तुत किया गया है।

♦♦♦♦

CANDIDATE DECLARATION

I here by certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled **"व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के सन्दर्भ में)"** in partial fulfilment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of **Dr. Purnachandra Upadhyaya, Associate Professor, Department of Sanskrit, Government College, Bundi (Raj.)** and submitted to the University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution.

I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation off the above wil be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date : **Shashi Mathuria**

Place : Research Scholar

This is to certify that the above statement made by (Ms.) **Shashi Mathuria (Registration No. RS/473/18)** is correct to the best of my knowledge.

Date : **(Dr. Purnachandra Upadhyaya)**

Place : Research Supervisor

आभार–प्रसून

नीलाचलनिवासाय नित्याय परमात्मने।

बलभद्रसुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः।।

सर्वप्रथम मैं अपने शोधकार्य को परमपिता जगन्नाथ महाप्रभु के श्रीचरणों में समर्पित करती हूँ, जिन की असीम अनुकम्पा और परम प्रेरणा को शिरोधार्य कर यह शोध कार्य संभव हो सका।

मार्गदर्शक श्रद्धेय डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन के सहज तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार, प्रोत्साहन तथा समय–समय पर दिए गए सुझावों को क्रियान्वित करते हुए यह शोध कार्य पूर्ण किया जा सका। माननीय उपाध्याय जी विद्वान् होने के साथ–साथ बहुत ही सरलहृदय व्यक्तित्व के धनी हैं। आपने सदैव पुत्रीवत् स्नेह प्रदान करते हुए मेरी हर छोटी–बड़ी समस्या को बहुत ही गंभीरता से समाधान कर मेरा सहज मार्गदर्शन किया है, आपके आशीर्वाद के बिना यह शोधकार्य पूर्ण करना मेरे लिए स्वप्न में भी संभव नहीं था।

शोध कार्य के अंतर्गत जिन की विभिन्न प्रकार की कविताओं, कथाओं और गीतों का रसास्वादन करते समय अनेक बार हृदय करुणा से व्याकुल हुआ, कई बार चिन्तन की प्रवृत्ति जागृत हुई तथा अनेक स्थानों पर आप की हास्य–व्यंग्य प्रधान रचनाओं ने चित्त को प्रफुल्लित तथा आनन्द विभोर कर दिया। इतने अधिक अनुभव मेरे पास एकत्रित हुए, जिन्हें शब्दों में समेटा नहीं जा सकता, ऐसे महनीय कवि, लेखक, विचारक, चिंतक तथा अनुपम व्यंग्यकार परम श्रद्धेय डॉ. प्रमोद कुमार नायक जी का मैं हृदय से आभार प्रकट करना चाहती हूँ, आपने अपनी रचनाओं पर शोधकार्य करने का अवसर मुझे प्रदान किया।

मैं कोटा विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. नीलिमा सिंह एवं शोध निदेशालय के समस्त अधिकारियों व कर्मचारियों तथा राजकीय महाविद्यालय बूंदी के समस्त आचार्यों एवं कर्मचारियों के प्रति भी अपने अन्तस् से धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन के स्नेहिल तथा सहयोग पूर्ण व्यवहार ने मुझे सदैव शोध कार्य के प्रति उत्प्रेरित किया।

उक्त शोध कार्य को सफलता पूर्वक पूर्ण करवाने में मेरे प्रेरणास्रोत माता–पिता और परिवारजन को आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है।

मेरी तकनीकी सहयोगी शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा का आभार प्रकट करती हूँ। आपने श्रेष्ठ टङ्कण कार्य कर इस शोध कार्य को पूर्णता प्रदान की।

अंत में इस शोध कार्य में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोग देने वाले उन समस्त विषय विशेषज्ञों एवं सहयोगियों को भी धन्यवाद देती हूँ, जिन का नाम मैं यहाँ ले नहीं पाई हूँ किन्तु जिन्होंने मुझे शोध कार्य में अपेक्षित सहयोग तथा मार्गदर्शन प्रदान किया।

शोधार्थिनी

शशी मथुरिया

♦♦♦♦

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

शोध–सार i - ii

आभार प्रसून iii - iv

भूमिका v - xxv

(क) संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण

(ख) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का स्वरूप एवं वर्गीकरण

(ग) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का प्रतिपाद्य एवं विशेषताएँ

(घ) आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य

प्रथम अध्याय : व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व **1 – 34**

(क) जीवन परिचय

(ख) शिक्षा

(ग) व्यक्तित्व

(घ) कार्य क्षेत्र

(ङ) सम्मान व पुरस्कार

(च) रचना संसार

1. गद्यात्मक रचनाएँ
2. पद्यात्मक रचनाएँ
3. पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ

द्वितीय अध्याय : व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध **35 – 86**

(क) मानवीय मूल्यबोध की परिभाषा एवं स्रोत

(ख) सामाजिक समरसता

(ग) नारी चेतना

(घ) यौतुक प्रथा

(ङ) दलित चेतना

(च) श्रमिक चेतना

(छ) वर्ण व्यवस्था

(ज) धर्माडम्बर

(झ) कर्म प्रधानता

तृतीय अध्याय : व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक मानवीय मूल्यबोध 87 – 141

(क) राष्ट्रीय भावना

(ख) परोपकार की भावना

(ग) सेवा परायणता

(घ) शिक्षा

(ङ) संस्कृति की समन्वयवादिता

(च) उच्छृङ्खलता

(छ) विविधता में एकता

चतुर्थ अध्याय : व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में राजनीतिक मानवीय मूल्यबोध 142 – 186

(क) प्रजातान्त्रिकता

(ख) राजतान्त्रिकता

(ग) पाखण्डिता

(घ) भ्रष्टाचार

(ङ) आतङ्कवाद

पंचम अध्याय : व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध 187 – 225

(क) कृषि प्रधानता

(ख) पुरुषार्थ की सिद्धि

(ग) अर्थोपार्जन में नारी की भूमिका

(घ) आर्थिक शिक्षा

(ङ) श्रमिक की भूमिका

उपसंहार **226 – 240**

सारांश **241 – 253**

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका **254 – 257**

प्रकाशित शोध–पत्र

परिशिष्ट (व्यंग्यकारप्रमोदकुमारनायकेन सह साक्षात्कारः)

भूमिका

भूमिका

(क) संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण

संस्कृत साहित्य का महत्त्व

शब्द और अर्थ का मंजुल सामंजस्य ही साहित्य है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'सहितयोः भावः साहित्यम्' अर्थात् सहित शब्द तथा अर्थ का भाव साहित्य है। साहित्य शब्द का प्रयोग काव्य ग्रन्थों एवं अलंकार ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दिखाई पड़ता है। व्यापक अर्थ में साहित्य से अभिप्राय उन ग्रन्थों से है, जो किसी भाषा विशेष में निबद्ध किए गए हों। अंग्रेजी भाषा में साहित्य शब्द के लिए 'लिटरेचर' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

विश्व भर की संपूर्ण प्राचीन भाषाओं में संस्कृत का प्रथम एवं सर्वोच्च स्थान है। विश्व साहित्य की सर्वप्रथम पुस्तक ऋग्वेद इसी भाषा में लिखी गई है। संस्कृत भाषा का अध्ययन किए बिना भारतीय संस्कृति के रहस्य का उद्घाटन असंभव प्रतीत होता है। संस्कृत भाषा अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं की जननी है तथा वर्तमान में भी भारत की सभी भाषाएँ इसी वात्सल्यमयी जननी के स्तन्यामृत से पुष्टि पा रही हैं। पाश्चात्य विद्वान भी इस भाषा के समृद्ध एवं विपुल साहित्य को देखकर विस्मित रहते हैं। संस्कृत भाषा ने कई हज़ार वर्षों तक भारत देश को सांस्कृतिक तथा भावात्मक एकता में संजोए रखा है। इसी कारण भारतीय मनीषी इस भाषा को अमर भाषा या देववाणी के नाम से सम्मानित करते हैं।

अति प्राचीन होने पर भी इस भाषा की सृजनशक्ति कुण्ठित नहीं हुई, इसका धातुपाठ नित्य नये शब्दों को गढ़ने में समर्थ रहा है। संस्कृत भाषा का साहित्य अनेक अमूल्य ग्रंथरत्नों का सागर है। इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परंपरा अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घकाल तक रह पाई है। भारतीय संस्कृति और विचारधारा के इस भाषा के माध्यम से धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा मानविकी आदि समस्त प्रकार के विषयों की रचना हुई है।

संस्कृत साहित्य प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक धरोहर व विचारों का रुचिर दर्पण है। इसीलिए संस्कृत काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आनन्द की खोज करता प्रतीत होता है। संस्कृत साहित्य की महनीयता और विशालता विश्व–विश्रुत है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के छोर तक किसी न किसी रूप में संस्कृत का अध्ययन होता रहा है।

संस्कृत साहित्य की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले कई घटक विद्यमान हैं। सर्वप्रथम प्राचीनता की दृष्टि से इसका समकक्ष कोई नहीं है। हमारे यहाँ ऋग्वेद के रचनाकाल के विषय में

विद्वान् एकमत नहीं हैं, फिर भी कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना विक्रम से कम से कम छः हजार वर्ष पूर्व अवश्य हुई थी। वर्तमान में यही मत सर्वाधिक प्रामाणिक है। इसके अनुसार संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम ग्रन्थ का निर्माण आज से लगभग आठ हजार वर्ष पूर्व हुआ था। तब से साहित्य सृजन की जो अजस्र धारा प्रवाहित हुई वह वर्तमान में भी अविच्छिन्न निर्बाध गति से प्रवाहमान है। अन्य साहित्यों का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि वह अनुकूल परिस्थितियों में जन्म लेता हुआ कुछ समय तक गतिशील रहता है किन्तु विषम परिस्थितियों में वह धीमा पड़ जाता है किन्तु संस्कृत साहित्य में नैरन्तर्य देखा जाता है। अतः प्राचीनता की दृष्टि से यह बेजोड़ है।

मानव जीवन के लिए चार पुरुषार्थ कहे गए हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। संस्कृत साहित्य में इन सभी का विवेचन विस्तार तथा विचार के साथ किया गया है। आमजन की यह धारणा है कि संस्कृत साहित्य में केवल धर्मग्रन्थों की बहुलता है किन्तु यह धारणा मिथ्या प्रतीत होती है। इस सन्दर्भ में कौटिल्य द्वारा लिखा गया 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रंथ राजनीति शास्त्र का संपूर्ण परिचय प्रदान करता है। वात्स्यायन मुनि द्वारा रचित 'कामशास्त्र' में गृहस्थ जीवन के लिए उपादेय साधनों की सुंदरतम अभिव्यक्ति की गई है। इस विषय के ज्ञान पर ही मानव जीवन का सौख्य निर्भर है। इनके अतिरिक्त विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, स्थापत्य तथा पशु–पक्षी संबंधी लक्षण ग्रंथ संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। वास्तविकता तो यह है कि यहाँ प्रेयः शास्त्र तथा श्रेयः शास्त्र उभय शास्त्रों के अध्ययन की ओर विद्वानों की प्रवृत्ति रही है। अतः संस्कृत साहित्य सभी अंगों से परिपूर्ण है, सर्वांगीण है।

धार्मिक दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। भारतीय धर्म तथा दर्शन की विभिन्न शाखाएँ एवं नवीन मतों के यथार्थ ज्ञान के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक है। केवल भारतवासियों के लिए ही नहीं अपितु अन्य देशों के लिए भी संस्कृत साहित्य का अनुशीलन धार्मिक दृष्टि से उपादेय है।

भारतीय जन दूसरे देशों में भी अपने प्रभुत्व, अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रचार–प्रसार में सदा से ही उद्योगशील रहे हैं। उन्होंने प्रशान्त महासागर के दीपपुंजों में उपनिवेश स्थापित किए थे। कम्बोज में मनु की धार्मिक व्यवस्थानुसार राज्य का प्रबन्ध किया जाता था। मध्य एशिया के चीन आदि देशों पर भारतीय संस्कृति और बुद्ध धर्म की जो छाप है वह सर्वविदित है कोरिया की लिपि भी भारतीय लिपि पर आश्रित है तिब्बत भारतीय धर्म और साधना का क्षेत्र चिरकाल से रहा है। अतः सांस्कृतिक दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य विश्व में गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

दर्शनशास्त्र का वाङ्मय भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। वेद प्रामाण्य को मानने वाले आस्तिक और तदितर नास्तिक दर्शन के आचार्यों और मनीषियों ने प्रचुर मात्रा में दार्शनिक वाङ्मय का निर्माण किया है। पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक और न्याय इन छः प्रमुख

आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त पचास से अधिक आस्तिक दर्शनों के नाम तथा उनके वाङ्मय उपलब्ध हैं, जिनमें आत्मा, परमात्मा, जीवन, जगत्, पदार्थ मीमांसा तथा तत्त्वमीमांसा आदि के संदर्भ में अत्यंत प्रौढ़ विचार अभिव्यक्त हुए है। आस्तिकेतर दर्शनों में चार्वाक्, जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन आदि संस्कृत ग्रंथ बड़े ही प्रौढ़ और मौलिक हैं।

संस्कृत भाषा और साहित्य का राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। संस्कृत साहित्य की मूल चेतना भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में देखने की है। अनेक विषमताओं के होने पर भी जिन तत्त्वों ने देश को एकता के सूत्र में पिरोए रखा है, उनमें संस्कृत भाषा तथा इसके साहित्य का नाम प्रमुख है। पुराणों ने भारत के भूगोल को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि प्रत्येक नागरिक के मन में संपूर्ण देश के प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है वह अपनी क्षेत्रीय भावना को राष्ट्र के प्रति प्रेम तथा आदर्श के रूप में विस्तृत कर देता है। संस्कृत साहित्य ने प्रत्येक नागरिक को भारतीय होने का स्वाभिमान प्रदान किया है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आदि सुन्दर उक्तियों में मानवमात्र के प्रति आत्मीयता के भाव व्यक्त किए गए हैं।

विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य का अपना विशेष महत्त्व है। इस साहित्य में कालिदास जैसे कमनीय कविता लिखने वाले कवि हुए, भवभूति जैसे नाटककार हुए, बाणभट्ट जैसे गद्य लेखक हुए, जिन्होंने अपने सरस काव्य से त्रिलोक सुंदरी कादम्बरी की कमनीय कथा सुना–सुनाकर श्रोताओं को अपना भक्त बनाया, गीतिकाव्य के लेखक जयदेव ने अपनी कोमलकान्त पदावली के द्वारा सहृदयों के चित्त में मधुर रस की वर्षा की तथा श्रीहर्ष जैसे पण्डित कवि हुए जिन्होंने काव्य और दर्शन का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत किया। धर्म, संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, विज्ञान साहित्य के प्रमाणित स्रोत के रूप में संस्कृत साहित्य का महत्त्व वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठापित है।

संस्कृत शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– परिष्कृत, परिमार्जित अथवा संस्कारयुक्त। भाषा के अर्थ में संस्कृत का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि कृत रामायण में प्राप्त होता है। रामायण से पूर्व रचित साहित्य को वैदिक साहित्य की श्रेणी में रखा जाता है वाल्मीकि को आदिकवि तथा रामायण को लौकिक संस्कृत में आदिकाव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। अतः संपूर्ण संस्कृत साहित्य को वैदिक तथा लौकिक के भेद से दो भागों में विभक्त किया गया है।

संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण

आचार्य मैकडॉनल ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में संस्कृत वाङ्मय को प्रमुख रूप से दो युगों में विभाजित किया है। प्रथम वैदिक युग जिसमें संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् तथा सूत्रों के निर्माण के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। द्वितीय संस्कृत युग, जिसमें संस्कृत के लौकिक साहित्य के इतिहास की चर्चा की गई है। उक्त दोनों भाग दो भिन्न–भिन्न

युगों की विचारधारा के इतिहास से संबंध रखते हैं और क्रमिक परंपरा के रूप में परस्पर संबंध होते हुए भी स्वतंत्र रूप में अवस्थित हैं।

संस्कृत वैदिक साहित्य

संस्कृत काव्यों का बीजारोपण वेदों से माना जाता है, वैदिक साहित्य अर्थात् वह साहित्य जो वैदिक संस्कृति में लिखा गया। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद से लेकर संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक एवं उपनिषदों को ग्रहण किया गया है। वैदिक साहित्य की व्याख्या के रूप में या इनमें प्रतिपादित तत्त्वों के सहज बोध के लिए सूत्र साहित्य, वेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छंद एवं ज्योतिष इत्यादि रचे गए और इसी क्रम में संस्कृत साहित्य की लौकिक धारा का प्रवाह भी प्रस्फुटित होने लगा। वैदिक साहित्य मुख्यतया धर्म प्रधान साहित्य है। देवताओं को लक्ष्य कर यज्ञ–याग का विधान तथा उनकी कमनीय स्तुतियाँ इस साहित्य की विशेषताएँ हैं। वैदिक साहित्य में गद्य की गरिमा स्वीकृत की गई है। तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता से ही वैदिक गद्य आरम्भ होता है। ब्राह्मणों में गद्य ही का साम्राज्य है। प्राचीन उपनिषदों में भी उदात्त गद्य का प्रयोग मिलता है। गायत्री त्रिष्टुप् एवं जगती छंद का प्रचलन मिलता है। वैदिक काल में संस्कृत भाषा व्याकरण के नपे–तुले नियमों से जकड़ी हुई नहीं थी। वैदिक साहित्य में रूपक की प्रधानता है। प्रतीक रूप से अनेक अमूर्त भावनाओं की मूर्त कल्पना प्रस्तुत की गई है। वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध इन्द्रवृत्त युद्ध अकाल दानव के ऊपर वर्षा विजय का प्रतिनिधि है।

संस्कृत लौकिक साहित्य

लौकिक साहित्य का प्रसार प्रत्येक दिशा में दीख पड़ता है, मुख्यतया लोकवृत्त–प्रधान है। पुरुषार्थ के चारों अंगों में अर्थ–काम की ओर इसकी प्रवृत्ति विशेष दीख पड़ती है। उपनिषदों के प्रभाव से नैतिक भावना का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस युग में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उपासना पर अधिक महत्त्व दिया गया है। गद्य का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन शास्त्र ही रह जाता है। पुराणों में तथा रामायण महाभारत में 'श्लोक' की ही सत्ता विद्यमान है। उपजाति वंशस्थ और वसंततिलका छंद की प्रधानता है। पाणिनी की अष्टाध्यायी में लौकिक संस्कृत का भव्य विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया गया है। लौकिक साहित्य में अतिश्योक्ति दिखाई देती है। मानव जीवन से संबद्ध तथा उसे सुखद बनाने वाला शायद ही कोई विषय होगा जो इस साहित्य से अछूता बच गया है। पूर्वकाल में जहाँ पर नैसर्गिकता का बोलबाला था, वहाँ अब अलंकृति की अभिरूचि बढ़ने लगी।

संस्कृत भाषा में लौकिक साहित्य भाषा, भाव तथा विषय इन तीनों दृष्टियों में महत्त्वपूर्ण हैं। इस विशाल लौकिक साहित्य का ही एक भाग "काव्य साहित्य" है। प्रथम लौकिक साहित्य के

रूप में वाल्मीकिकृत रामायण एवं सर्वाधिक विशाल कवि रचना महाभारत को माना जाता है। यह दोनों अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ लौकिक साहित्य के आधारभूत ग्रंथ माने जाते हैं।

लोकोत्तरात्मक चमत्कारजनक कुछ काव्यों के उपरान्त अलंकारशास्त्रियों ने काव्य साहित्य निर्माण के कुछ नियम बनाए तथा काव्यों के लक्षण, अलंकार, रस, भेद तथा वृत्तियों के लक्षण आदि निर्धारित किए। विद्वानों के अनुसार काव्य साहित्य को प्रमुखतः दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है–

1. दृश्य काव्य
2. श्रव्य काव्य

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में काव्य का लक्षण करते हुए लिखा है।

काव्यं रसात्मकं चेद् शब्दार्थकलेवरम्।
भिद्यते खलु निर्मित्या रुचिरूपप्रभेदतः।।[1]

इसके पश्चात् प्राचीन शास्त्रीय परंपरा का अनुसरण करते हुए दृश्य एवं श्रव्य भेद से काव्य का निरूपण करते हुए लिखते हैं–

दृश्यश्रव्यप्रकाराभ्यामादौ काव्यं द्विधा मतम्।
रूपरूपकनाट्यानि दृश्यनामान्तराणि च।।[2]

दृश्य काव्य के दो भेद हैं– रूपक एवं उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं– नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी तथा प्रहसन ।

उपरूपक के अट्ठारह भेद हैं– नाटिका, भाणिका, गोष्ठी, दुर्मल्लिका, विलासिका, त्रोटक, सट्टक, काव्य, रासक, नाट्यरासक, संलापक, श्रीगदित, प्रेङ्खण, शिल्पक, हल्लीश, प्रकरणी, प्रस्थानक तथा उल्लाप्य।

प्राचीन विद्वानों ने श्रव्य काव्य के भी तीन प्रकार बताए हैं–

1. गद्य काव्य
2. पद्य काव्य
3. मिश्रित अथवा चम्पू काव्य

पद्यगद्यमयं श्रव्यं मिश्रं चेति त्रिधा स्थितम्।
पदैर्नियमितं पद्यं गद्यं यद्धि निगद्यते।।[3]

नियताक्षरमाख्यातं नाट्यशास्त्रकृता पुनः।
पद्यं गद्यं तथैवेदं घृष्टमनियताक्षरम्।।[4]

गद्य (कथा एवं आख्यायिका)

प्रबन्धात्मक गद्य को प्राचीन आचार्यों द्वारा कथा एवं आख्यायिका के रूप में विभाजित किया गया है तथा इसे 'प्रबन्धकल्पनाकथा' एवं 'आख्यायिका इतिवृत्ताश्रिता' के रूप में परिभाषित किया गया है।

पद्य (महाकाव्य, खंडकाव्य एवं मुक्तककाव्य)

पद्य काव्य के तीन भेद हैं– महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं मुक्तककाव्य। खण्डकाव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर इसे गीतिकाव्य, अन्योक्तिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, नीतिकाव्य, परप्रहेलिका काव्य, विमान–काव्य, यात्रा–काव्य, नर्म–काव्य, राम–काव्य, लहरी–काव्य, दूत–काव्य, संदेश–काव्य आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जा सकता है। पद्य काव्य को पुनः चार भागों में विभक्त किया जा सकता है– मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक।

काव्यों, नाटकों, आख्यानों एवं कथानकों के रूप में पद्य हमारे सम्मुख आया और लौकिक साहित्य के रूप में जाना गया। प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकाव्य रचना अपने उत्कर्षकाल में जितनी ओजस्विनी रही, मध्यकाल में वह अपने स्वरूप में पूर्ववत् प्रखर नहीं रह पाई। यद्यपि महाकाव्यों का लेखन सर्वथा व्यावहृत नहीं हुआ तथापि एक अतिशायिनी ओजस्विता का अभाव बना रहा। प्रायः रसहीन एवं प्रभावहीन वर्णनों को प्रश्रय मिला।

संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण

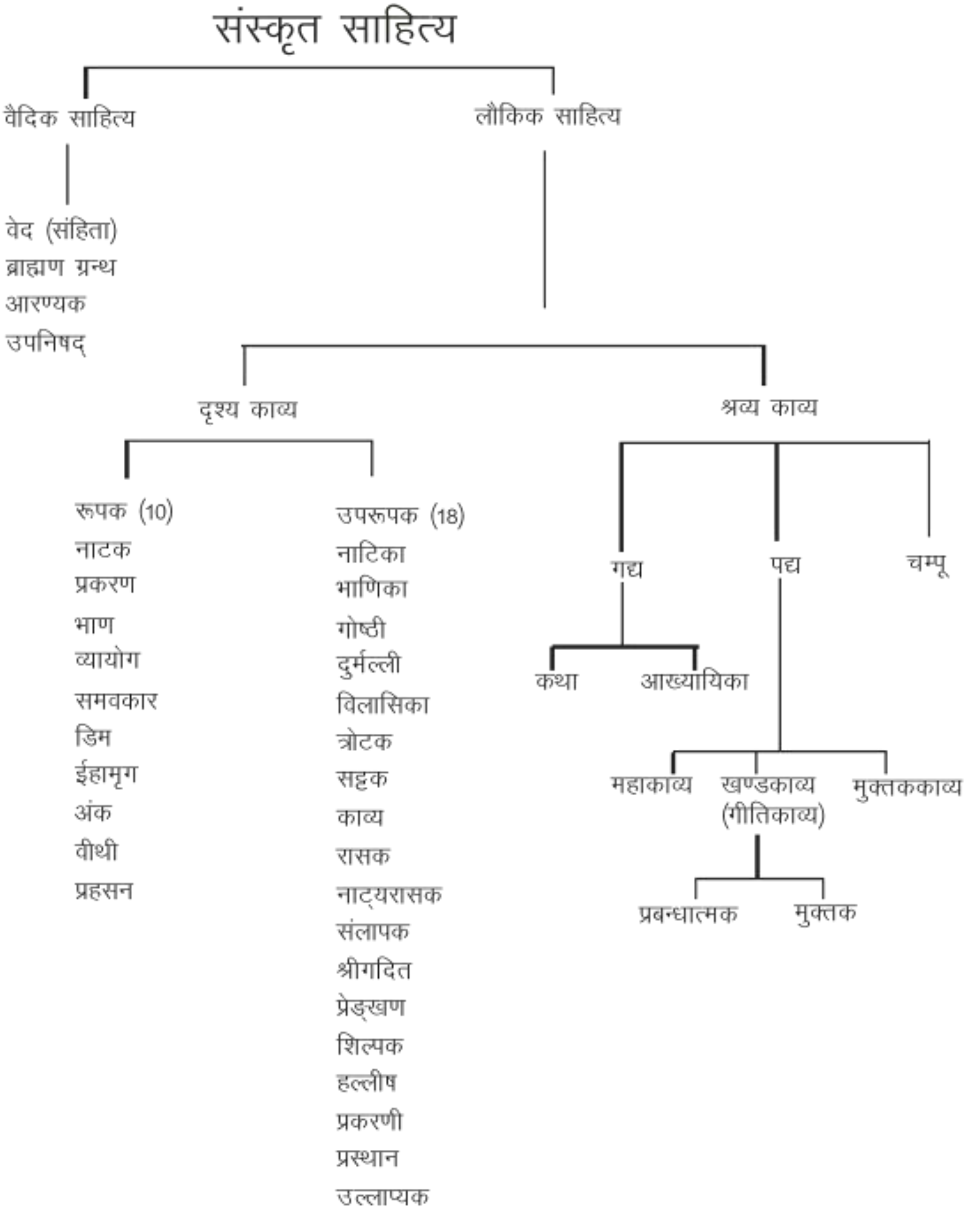

संस्कृत साहित्य का आधुनिक काल

डॉ. देवेन्द्र कुमार उपाध्याय सम्पादित (फरवरी–2016) त्रैमासिक पुस्तक ''प्रज्ञा प्रबोधिनी'' में लेखिका निधि पाण्डे ने अपने लेख ''आधुनिक संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ'' में लिखा है कि यदि हम संस्कृत साहित्य का अवलोकन करते हैं तो अट्ठारहवीं शताब्दी के बाद कुछ नवीन प्रवृत्तियों का जन्म स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। जिसे आलोचकों ने संस्कृत साहित्य का ''आधुनिक काल'' संज्ञा से विभूषित किया है।

आधुनिक काल के समय सीमांकन के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किये हैं। प्रो. कर्णकर ने अपने मराठी ग्रन्थ ''अर्वाचीन संस्कृत साहित्य'' में अर्वाचीन काल का आरंभ 1750 ई. से माना है। डॉ. हीरा लाल शास्त्री ने 1784 ई. को संस्कृत का नवजागरण के प्रसंग में महत्त्वपूर्ण कहा है।

(ख) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का स्वरूप एवं वर्गीकरण

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का स्वरूप

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्कृत साहित्य के समग्र विकास को चार चरणों में विभाजित किया है।

1. उद्भव काल

प्रागैतिहासिक काल से लेकर पहली सहस्राब्दी विक्रमपूर्व अथवा ईसापूर्व के आरंभ होने तक प्रसृत है। यह काल संस्कृत साहित्य के कल्पवृक्ष के बीजन्यास और अंकुरण का काल है। इसी काल में मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया, वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई तथा उपनिषदों की चिंतन परंपराएँ विकसित हुईं। इसी अवधिकाल में गाथाओं तथा आख्यानों के रूप में लोकसाहित्य की समृद्ध विरासत भी संचित होती रही।

2. स्थापना काल

यह काल पहली सहस्राब्दी विक्रमपूर्व के एक सहस्र वर्षों का है। इस कालावधि में संस्कृत भाषा का साहित्य विश्व के महान साहित्य के रूप में उद्भाषित हुआ। रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्य इसी समय अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हुए। उपनिषदों की रचना का उपक्रम भी इस सहस्राब्दी के पहले हो चुका था, पर इसी समय मुख्य उपनिषद् अपने वर्तमान अस्तित्त्व में आए। जैन, बौद्ध, चार्वाक तथा अन्य षड्दर्शनों का चिंतन की इसी सहस्राब्दी में परिपक्वता को प्राप्त हुआ, यद्यपि इन सभी दर्शनों की परंपराएँ और भी प्राचीन हैं। भास तथा कालिदास जैसे कालजयी साहित्यकारों के उदय की साक्षी यह सहस्राब्दी है, जिनसे संस्कृत का ललित वाङ्मय प्रतिष्ठित है।

3. समृद्धि काल

विक्रम अथवा ईसा के काल से 1200 ई. तक काल समृद्धिकाल कहलाता है। इस समय चिंतन परंपराओं का विस्तार हुआ एवं विज्ञान की विशेष उन्नति हुई। भारतीय कला तथा शिल्प इस समय अपने चरमोत्कर्ष पर था। ज्योतिष, गणित, खगोलविद्या, रसायन, आयुर्वेद तथा दर्शन प्रस्थानों में नये चिंतन और प्रयोग हुए। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, वसुबंधु, जयंत भट्ट, मंडन मिश्र, वाचस्पति मिश्र, शंकराचार्य, उदयनाचार्य जैसे महान् दार्शनिक कवियों पर ज्ञान–विज्ञान की इस उन्नति का प्रभाव पड़ा। इसी समयावधि में बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् तथा नैषधीयचरितम्) तथा कल्हण की राजतरंगिणी की रचना हुई। ऐतिहासिक महाकाव्य, रागकाव्य, शास्त्रकाव्य आदि नवीन काव्यविधाओं का सूत्रपात भी इसी काल में हुआ। कल्हण तथा जयदेव ने साहित्य में नये युग का प्रवर्तन किया।

4. विस्तार काल

यह काल 1200 ईस्वी सन् से लेकर आज तक का है। इस काल में नव्य भारतीय भाषाओं का उदय हुआ। संस्कृत साहित्य लोक साहित्य के सम्पर्क में आया। व्याख्याओं तथा टीका पद्धतियों में नूतन प्रविधियों का विकास हुआ। नव्य व्याकरण एवम् नव्यन्याय का उदय हुआ। इस काल में मम्मट, रूय्यक, मंख, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ, विश्वेश्वर पाण्डेय, रेवा प्रसाद द्विवेदी, गोविंदचंद्र पाण्डेय आदि विचारक हुए। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में पुनर्जागरण, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन तथा पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क से संस्कृत साहित्य में रचना के नये क्षितिज सामने आए।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में रचनाओं के विषय का स्वभाव बदल गया है। कवि के लिए परंपरा से चले आ रहे विषय पुराने पड़ गए। विज्ञान के विविध आविष्कारों और समाज की चुनौतियों को रचना का विषय बनाया जाने लगा। पाखण्ड, व्यभिचार, घूसखोरी, हत्या तथा बलात्कार आदि सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध रचनाकारों ने आवाज़ उठाना शुरु कर दिया। फलतः साहित्य की विविध विधाओं में ये विषय तथा विसंगतियाँ उभरकर सामने आने लगीं।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण

जब भी संस्कृत को एक भाषा के रूप में स्मरण किया जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे गंगा की पहचान केवल एक नदी के रूप में ही की जा रही है। गीर्वाणी, देवीवाक्, सुरभारती तथा देववाणी आदि नामों से हम संस्कृत भाषा को प्रतिष्ठित करते हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य से आज के अर्वाचीन संस्कृत साहित्य तक की यात्रा में हमने इसे भारत की समकालीन कथाओं के साहित्य के साथ सम्मानित किया है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम आधुनिक काल

(उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी) में निर्मित अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के वर्गीकरण का अवलोकन करें।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का कथन है कि **"विश्व और देश में बदलती राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों के बोध के साथ समग्र राष्ट्र के एकात्म के प्रति दृष्टि कम से कम एक व्यावर्तक है, जो काल और विषयवस्तु की दृष्टि से आधुनिक साहित्य का उपक्रम कराता है।"**[5]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत का आधुनिक काल 1850 ई. से स्वीकृत करते हैं।

प्रो. श्रीधर भास्कर वर्णेकर अपने मराठी ग्रन्थ ''अर्वाचीन संस्कृत साहित्य'' से संस्कृत साहित्य का आरंभ मानते हैं किन्तु आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय जी ने अपने एक पत्र के माध्यम से वर्णेकर जी के इस विचार से असहमति प्रकट करते हुए आधुनिक काल का आरंभ 1750 ई. से माना है, जब नागेश्वर भट्ट का काशीवास हुआ। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने एक अन्य पत्र (3/6/91) में लिखित आधुनिक संस्कृत साहित्य का कालखण्ड 1850 ई. से लेकर 1990 ई. तक होना चाहिए, ऐसा भी सुझाव दिया था।

आधुनिक मानव विकास की यात्रा जटिल और गतिशील प्रक्रिया है। यदि हम आचार्य बलदेव के सुझाव को निश्चित रेखा मान भी लें तो 1990 से लेकर आज तक के साहित्य का क्या होगा....?? उसे किस काल अवधि में रखा जाएगा। इसलिए आधुनिकता और आधुनिक काल केवल स्थिति और धारणा ही नहीं है, निरंतर होते चलने की वृत्ति और वर्तमान का बोध भी है।

संस्कृत साहित्य के आधुनिक काल को डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने ''देववाणी सुवासः'' की भूमिका में–

1. पुनर्जागरण काल (1784 से 1884 ई.)
2. स्थापत्य काल (1885 से 1950 ई.)
3. समृद्धि काल (1950 ई. से अब तक) तीन भागों में विभाजित किया है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने आधुनिक संस्कृत साहित्य के काल विभाजन के विवाद से बचते हुए युगांतकारी रचनाकारों, जिन्होंने संस्कृत साहित्य में लेखन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है, रचना युगों को आधार बनाकर युगों को विमर्श का विषय बनाया जिसमें संस्कृत साहित्य के आधुनिक काल को मुख्यतः तीन युगों में विभाजित किया।

1.	राशिवडेकर युग	1890 ई. से 1930 ई. तक
2.	भट्ट युग	1930 ई. से 1960 ई. तक
3.	राघवन युग	1960 ई. से 1980 ई. तक

सन् 1984 ई. में नई दिल्ली में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। साहित्य अकादमी के माध्यम से समकालीन संस्कृत रचनाकारों के मौलिक ग्रन्थ पुरस्कृत होने लगे। बाद में समस्त

राज्यों में संस्कृत अकादमियों की स्थापना प्रारंभ हुई, कई संस्कृत विश्वविद्यालय, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ आदि स्थापित हुए। अखिल भारतीय और राज्य स्तरीय कवि सम्मेलनों, आकाशवाणी केन्द्रों तथा बाद में दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा भी समकालीन संस्कृत साहित्य को प्रश्रय मिलने लगा।

(ग) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का प्रतिपाद्य एवं उसकी विशेषताएँ

समाज के निरंतर बदलावों से अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की शैली और लक्षणों में भी आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं यथा रसागत, पात्र तथा भाषाशैली आदि। तकनीकी (सर्गादि) नाम, श्लोक संख्या (परिणाम) वस्तुविन्यास (इतिवृत्तात्मक) आदि से संबंधित परिवर्तन हुए तथापि भारतीय काव्यलोचन में रस, ध्वनि, रीति, अलंकार आदि के साथ–साथ वक्रोक्ति का महत्त्व भी प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है।

स्वतंत्रता आन्दोलन तथा परवर्ती परिवर्तन में भारतीय जनमानस की चिन्तन धारा के प्रवाह को नूतन दिशा दी, जिसके परिणामस्वरूप स्वच्छन्द दिशाओं का उन्मूलन तथा परंपराओं का टूटना प्रारंभ हुआ। नवीन आस्थाओं का जन्म हुआ। युगीन परिवर्तन को देखते हुए आधुनिक संस्कृत रचनाकारों ने भी अपनी लेखनी को नई दिशा दी। बीसवीं शताब्दी में लिखा जा रहा संस्कृत साहित्य देश और संपूर्ण विश्व में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि विभिन्न स्तरों पर हो रहे परिवर्तनों तथा परिस्थितियों का साक्षी रहा है। इसमें जीवन्तता का स्पन्दन मिलता है क्योंकि इस साहित्य में उन्हीं मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति दी गई है, जिनको साहित्यकार ने अनुभूति में ढाल दिया है, जिन्हें ऊपर से ओढ़ा नहीं गया है। परंपरागत, अतिप्राकृत तत्त्व अब उसके ह्रदय को आन्दोलित नहीं कर पाते अपितु वैश्विक चिन्तन, जीवन का यथार्थ चित्रण, सामाजिक विसंगति, राजनैतिक चेतना, नारी अस्मिता, आधुनिक चिन्तन और वैज्ञानिक जीवनदृष्टि परक सन्दर्भ ही उसके कथ्य के आधार बनते हैं।

आधुनिक संस्कृत साहित्य ने अपनी रचनाधारा संभावनाओं एवं प्रवृत्तियों के द्वारा अनेक आयामों का स्पर्श किया है। उसके सृजन की यात्रा में नैरन्तर्य देखा जा सकता है। अपनी विभिन्न विधाओं के माध्यम से उसने अपने नवलेखन का शंखनाद किया है। रचनाकारों की कई पीढ़ियाँ इसे सम्पन्न बनाने में सक्रिय हैं। इनमें मथुरानाथ शास्त्री आदि रचनाकार जहाँ अपनी प्राचीन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं टी. राघवन, बच्चूलाल अवस्थी, रामकरण शर्मा, जगन्नाथ पाठक, पुष्पा दीक्षित, राजेन्द्र मिश्र, राधा वल्लभ त्रिपाठी, शिव कुमार मिश्र तथा देवर्षि कलानाथ शास्त्री आदि अपनी नवीन शैली एवं प्रयोगशीलता से भावाभिव्यक्ति कर रहे हैं। केशवचन्द्रदास, हर्षदेव माधव, बनमाली विश्वाल, रवीन्द्र पण्डा, प्रमोद कुमार नायक, भागीरथी नन्द, रमाकान्त पाण्डेय, नारायण दाश, धर्मेन्द्र कुमार सिंहदेव, भारत भूषण, प्रवीण पाण्ड्या, कौशल तिवारी एवं अन्य अनेक

नवोदित रचनाकार अपनी सर्जना द्वारा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विरासत को विकसित करने का सङ्कल्प ले रहे हैं। आज संस्कृत भाषा का रचनाकार संकुचित दृष्टिकोण को छोड़कर व्यापक सोच लिए हुए है। अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य से अपने भण्डार को समृद्ध करने में भी उसे कोई परहेज़ नहीं है। अब वह केवल देवी–देवताओं की कथाएँ लिखकर अमर होना नहीं चाहता अपितु समाज की समस्याओं का सहभागी है। राष्ट्रनायक, समाजसेवक, समकालीन ज्वलंत समस्याएँ उनकी लेखनी के केन्द्रबिन्दु हैं।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्यकारों के लेखन में समाज, राजनीति और पर्यावरण में हुए परिवर्तन को लेकर उनकी उन्मुखता दृष्टिगत होती है। आधुनिक काल में समाज और पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में भी दिखाई देना स्वाभाविक ही है।

आधुनिक संस्कृत रचनाकारों की रचनाएँ समसामयिक क्रिया–कलापों से प्रभावित होती हैं। इन क्रिया–कलापों का यहाँ विमर्श किया जा रहा है, जिनका गहरा प्रभाव संस्कृत लेखनी पर देखा जा सकता है। यथा– राष्ट्रीय चेतना, अस्पृश्यता–निवारण, भ्रष्टाचार, आतङ्कवाद, मानवीय मूल्यबोध, हास्यकाव्य, अन्तर्राष्ट्रीय चेतनापरक काव्य, बालसाहित्य, गीत–गज़लाधारितकाव्य, यात्रा–वृत्तान्त तथा भाषा–जाति एवं धार्मिक रूढ़ियों को आधार बनाकर संस्कृत रचना संसार को पुष्पित तथा पल्लवित किया जा रहा है।

संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं में उक्त बिन्दुओं का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों की लेखनी में नवीन विषयों को लिया जा रहा है।

(घ) आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य

(i) कथा शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में जब मुद्रण की सुविधा उपलब्ध हुई तो संस्कृत भाषा के अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन संभव हुआ और इन पत्र–पत्रिकाओं में कई विधाओं का जन्म हुआ, उनमें कथा का प्रमुख स्थान है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में संस्कृत चन्द्रिका नामक पत्रिका को ही कथा विधा के उदय का श्रेय जाता है। संस्कृत चन्द्रिका के तत्कालीन सम्पादक अप्पाशास्त्री राशिवडेकर ने अत्यधिक मात्रा में कथाओं का प्रकाशन कर इस विधा को संवर्धित किया। साथ ही अन्य पत्रिकाओं में भी कथाएँ एवं कथासंग्रह प्रकाशित होने लगे।

कथा शब्द 'कथ्' धातु से अङ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। 'कथ्' धातु का अर्थ है– वाक्य–प्रबन्ध अर्थात् वाक्यों के प्रबन्धात्मक विन्यास को ही कथा कहा जाता है।

'कथा' शब्द की उपलब्धता के विषय में चर्चा करने पर ज्ञात होता है कि यह शब्द संहिताओं में भी विपुलता से प्राप्त होता है, किन्तु वहाँ पर यह शब्द आख्यान के पर्यायवाची रूप में न आकर कथम् अव्यय के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वहाँ इस शब्द की व्युत्पत्ति किम् शब्द से थाल् प्रत्यय करके मानी गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कथा शब्द का प्रयोग मिलता है। उपनिषद् ग्रन्थों में भी प्रायः कथा शब्द उपलब्ध हो जाता है किन्तु स्पष्ट रूप से वह 'आख्यान' अर्थ का संकेत नहीं देता। यास्क द्वारा विरचित निरूक्त में कथा शब्द चार अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु वहाँ भी आख्यान अर्थ में नहीं है। आचार्य सायण के मतानुसार आरण्यकों में प्रयुक्त कथा शब्द आख्यान के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में ऐतरेय आरण्यक में ही कथा शब्द का प्रयोग आख्यान अर्थ में हुआ है।

हलायुधकोषकार ने 'कथा' शब्द के चार अर्थ प्रस्तुत किए हैं यथा– प्रबन्ध कल्पना स्वयं रचना, वार्ता तथा विवरण। इनके उदाहरण इस प्रकार है– मनुस्मृति में 'कथा' शब्द का प्रयोग स्वयं रचना अर्थ में, रामायण में विवरण अर्थ, कालिदासकृत रघुवंश महाकाव्य में वार्ता अर्थ में, शिशुपालवध एवं नैषधीयचरित महाकाव्य में प्रसंग, वार्ता अर्थ में तथा सोमदेव कृत कथासरित्सागर में 'कथा' शब्द का प्रयोग 'गोष्ठीवचन' के अर्थ में हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन साहित्य में 'कथा' शब्द का प्रयोग उन्हीं अर्थों में किया गया है जिनका विवेचन हलायुधकोशन्तर्गत किया गया है।

कथा की परिभाषा

छठी शताब्दी के प्रारंभ में जब सुबन्धु, बाणभट्ट तथा दण्डी जैसे सर्वश्रेष्ठ कथाकारों की रचनाओं ने संपूर्ण कथा साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की तभी से कथासाहित्य का प्रामाणिक तथा स्पष्ट स्वरूप अस्तित्व में आया। इन्हीं कथाग्रन्थों को आधार मानकर कथा के लक्षण निरूपित किए गए, जो इस प्रकार है–

(1) अग्निपुराणकार के अनुसार–

श्लोकैर्वंशं तु संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति।
मुख्यार्थस्यावतराय भवेद्यत्र कथान्तरम्।।
परिच्छेदो न यत्रस्यान्न स्याद्वालम्भकः क्वचित्।
सा कथा।।[6]

कथा के आरंभ में कुछ श्लोकों के माध्यम से जहाँ संक्षेप में अपने वंश का वर्णन किया जाता है। मुख्यार्थ के अवतरण के लिए अन्य अवान्तर कथाओं का आश्रय लिया जाात है। जहाँ

परिच्छेदों का अभाव रहता है तथा कभी–कभी लम्भकों में जिसे विभाजित किया जाता है, वह कथा है।

(2) आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में कथा का लक्षण इस प्रकार दिया है–

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्,
क्वचिदत्रभवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापरवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।।[7]

अर्थात् कथा में कथावस्तु सरस तथा गद्य शैली में विनिर्मित होती है। इसमें कहीं आर्या तो कहीं वक्त्र–अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है। आरंभ में पद्यों द्वारा नमस्कार, खलादियों का चरित्र–चित्रण होता है।

(3) **धीरशान्तनायकः गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा**[8]

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार कथा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसका नायक धीरशान्त होता है। गद्य अथवा पद्य शैली द्वारा सभी भाषाओं में कथा की रचना की जा सकती है।

(4) प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के मतानुसार–

जीवनस्यैकदेशनिरूपणपरमाख्यानं कथा।[9]

अर्थात् जीवन के एक भाग को निरूपित करने वाला आख्यान कथा है।

(5) **उपन्यासस्य चैकांशः चारूगद्यसमन्वितः।**
प्रायशः कल्पितं वृत्तं समाश्रित्यप्रवर्तते।।
स्थाने काले क्रियायां च यत्रैक्यं तथ्यगर्भितम्।
प्रेरणादायि सोद्देश्यं यस्या लघुकथा च सा।।[10]

रास बिहारी द्विवेदी का कथन है कि लघुकथा सुन्दर गद्य से युक्त उपन्यास का ही एक अंश है। इसकी कथावस्तु प्रायः कल्पित होती है और स्थान, काल तथा क्रिया का तथ्यगर्भित ऐक्य होता है। यह प्रेरणादायी तथा सोद्देश्य होती है।

(6) अभिराज राजेन्द्र मिश्र के कथनानुसार –

कथा तत्र भवेद्रम्या सरसा कल्पनाश्रिता।
दिव्याऽदिव्येतिवृत्तांशा विविधानुभवैर्युता।।
आदौ तत्र नमस्कारः खलादिचरितम् तथा।
कथाकर्तुरभिप्रायोऽखिलं पद्यमयं भवेत्।।

तत्र क्वचिद् भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापरवक्त्रके।

क्वचिच्चाप्यात्मसंस्पर्शः प्रतिभाशिल्पमण्डितः।।[11]

(7) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का कथन है–

परिणामयुक्ता व्यक्तिघटना वर्णना हि कथा।[12]

अर्थात् किसी व्यक्ति अथवा घटना के उस वर्णन को कथा कहते हैं, जो परिणाम युक्त हो।

(8) कहानी वह कथा है, जो मात्र एक घण्टे में पढ़ी जा सके।[13] **एच.जी.वेल्स**

(9) लेखक एडगर एलिन पो के अनुसार –

"A short story is narratvle short enough to be read in a single sitting written to make an impression on the reader, encluding all that does not forward that impression complete and final in itself."[14]

सभी प्राचीन, अर्वाचीन तथा पाश्चात्य विद्वानों ने कथा की भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी हैं फिर भी कुछ प्रमुख तत्त्वों को कथा के आवश्यक अंगों के रूप में स्वीकार किया है यथा– घटना, चरित्र, देश, काल, संवेदना तथा भावादि।

(ii) कथा के भेद एवं प्रभेद

कथा को मूलतः दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

i. प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य के भेद

संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास नामक ग्रन्थ में प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने प्राचीन कथा साहित्य को लोककथा, नीतिकथा, पशुकथा एवं मुग्धकथा के नाम से चार भागों में विभाजित किया है। लोककथाएँ विशुद्ध रूप से मनोरंजन प्रधान होती है तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रचलन में रहती हैं। इनमें पशुपात्र भी होते हैं। पशुकथाओं में पशुओं को प्रतीकात्मक रूप में मानव चरित्र का प्रतिनिधि बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। अंग्रेजी भाषा में FABLE पशुकथाओं कहा जाता है। नैतिक विचार अथवा संदेशों का प्रस्तुतीकरण नीतिकथाओं के माध्यम से किया जाता है। भोले–भाले लोगों की कथा को मुग्धकथा कहा जाता है जो अपने सीधेपन के कारण लोक में उपहास के पात्र बन जाते हैं। सोमदेव ने अपने ग्रन्थ कथासरित्सागर में ही सर्वप्रथम मुग्धकथा संज्ञा का प्रयोग किया था।

संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास नामक अपने ग्रन्थ में डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने कथा साहित्य को चार भागों में विभाजित किया है–

(अ) अद्भुत कथा (FAIRY TALES)

(ब) लोककथा (MARCHEN)

(स) कल्पित कथा तथा (MYTHS)

(द) पशुकथा (FABLES)

व्यवहारिक दृष्टि से डॉ. द्विवेदी ने कथा के दो ही भेद स्वीकार किए हैं–

(अ) नीतिकथा एवं

(ब) लोककथा

नीतिकथा में उपदेशात्मक पशुकथाओं का समावेश होता है तथा लोककथा में अद्भुत एवं कल्पित कथा का।

डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि ने भी कथा साहित्य के नीतिकथा एवं लोककथा ये दो भेद ही स्वीकार किए हैं। लोककथाओं के अन्तर्गत गुणाढ्यकृत बृहत्कथा, क्षेमेन्द्र विरचित बृहत्कथामंजरी सोमदेवरचित कथासरित्सागर, बेतालपंचविंशतिः, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकसप्तति आदि का परिगणन किया जाता है। विष्णु शर्मा कृत पंचतन्त्र, नारायण पण्डित रचित हितोपदेश तथा आर्यशूर कृत जातकमाला आदि नीतिकथाओं की श्रेणी में आती है।

प्राचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा भी कथा भेदों का निरूपण इस प्रकार किया गया है–

धनंजय ने दशरूपक में इतिवृत्त के आधार पर तीन भेद किए हैं–

(अ) ऐतिहासिक कथा

(ब) काल्पनिक कथा

(स) मिश्रित कथा

आचार्य आनन्दवर्धन ने कथा के तीन भेद माने हैं–

(अ) परिकथा – इसमें वर्णन वैचित्र्य की प्रधानता होती है।

(ब) सकल कथा – इसमें नायक के संपूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला जाता है।

(स) खण्डकथा – इसमें नायक के जीवन की किसी एक विशेष घटना का चित्रण किया जाता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन ग्रन्थ में कथा के 11 भेद किए हैं–

(i)	खण्डकथा	(ii)	परिकथा
(iii)	आख्यानक	(iv)	उपाख्यान
(v)	प्रवह्लिका	(vi)	मणिकुल्या
(vii)	वृहत्कथा	(viii)	सकलकथा
(ix)	उपकथा	(x)	क्षुद्रकथा
(xi)	निदर्शन		

अग्निपुराण में कथा के पाँच भेद किए गए हैं–

(i)	आख्यायिका	(iv)	परिकथा
(ii)	कथा	(v)	कथानिका
(iii)	खण्डकथा		

2. आधुनिक संस्कृत साहित्य में कथा के भेद

परिवर्तन संसार का नियम है यही कारण है कि आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य कथानक तथा शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से प्राचीन साहित्य से भिन्न है। आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य के रचना क्षेत्र में नवीन विधाओं तथा शैलियों का सूत्रपात हुआ है। नित नई सर्जनाएँ कथा साहित्य को पल्लवित तथा परिवर्धित कर रही है। आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) आकार की दृष्टि से

(ii) विषयवस्तु की दृष्टि से

कथाओं को आकार के आधार पर आधुनिक काव्यशास्त्री, समीक्षक तथा लेखक अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने निम्न तीन भागों में विभक्त किया है–

(i) दीर्घकथा (10 से अधिक पृष्ठात्मक)

(ii) कथानिका (5 से 10 पृष्ठात्मक)

(iii) लघुकथा (2 से 5 पृष्ठात्मक)

इन भेदों के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वान अतिलघुकथा या टुप् कथा (1 से कम पृष्ठात्मक), पुट् कथा (1 पृष्ठात्मक) भेदों को भी स्वीकार करते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व विषयवस्तु के आधार पर कथाकारों ने कथा के दो ही भेद माने हैं– (i) ऐतिहासिक कथा (ii) सामाजिक कथा

समय परिवर्तन के साथ ही सामाजिक कथाओं में जो तत्त्व प्रमुखतया उद्भासित हुआ उसे उसी नाम से जाना जाने लगा। यथा– हास्य प्रधान होने पर हास्य कथा, चित्रप्रधान होने पर चित्रकथा इत्यादि।

समकालीन संस्कृत कथाओं को विषयवस्तु की दृष्टि से निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(i)	पौराणिक कथा	(ix)	प्रणयपरक कथा
(ii)	ऐतिहासिक कथा	(x)	मनोवैज्ञानिक कथा
(iii)	आंचलिक कथा	(xi)	चित्रकथा
(iv)	लोक कथा	(xii)	स्पर्श कथा
(v)	सामाजिक कथा	(xiii)	प्रतीकात्मक कथा
(vi)	ललित कथा	(xiv)	अनूदित कथा
(vii)	हास्य व व्यंग्य कथा	(xv)	विविध विषय कथा
(viii)	उपदेशात्मक कथा		

(iii) संस्कृत कथा साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

कथा (आख्यान, कहानी) मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। आदि मानव शनैः शनैः विकास के पथ पर अग्रसर हुआ तथा अवकाश के दौरान सामाजिकों के समक्ष उसने किसी घटना विशेष का ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया होगा कि श्रोतागण चमत्कृत तथा आनन्दित हो उठे, संभवतः तभी से कथा का जन्म हुआ होगा। कथा एक ऐसा माध्यम है जिससे प्रत्येक आयु वर्ग चाहे बालक हो, युवा हो अथवा वृद्ध हों, सभी श्रोताओं के मन में कथापूर्व कौतुहल तथा उत्सुकता उत्पन्न कर कथा के अंत तक आते—आते सभी जिज्ञासाओं का शमन भी कर दिया जाता है। यह संपूर्ण प्रक्रिया मनोरंजनात्मक तरीके से पूर्ण होती है तथा इस प्रक्रिया में समय का भी सदुपयोग हो जाता है। इन्हीं सब कारणों के फलस्वरूप ही काव्य के समस्त भेदों में कथा ही सर्वाधिक समादृत एवं संवर्धित विधा है। शायद ही ऐसा कोई मनुष्य हो जिसने अपने बाल्यकाल में अपनी दादी अथवा नानी से कहानियाँ नहीं सुनी हो अथवा उनके मन पर पढ़ी तथा सुनी गई कहानियों की छाप न छूटी हो?

यूँ तो कथा साहित्य विश्व की संपूर्ण भाषाओं में विपुल मात्रा में उपलब्ध होता है, किन्तु भारतीय कथा साहित्य का योगदान अतुलनीय है। भारत देश को कथा साहित्य की उद्‌गम भूमि कहना भी अनुचित नहीं है। भारत में कथाएँ मनुष्य को कौतुमयी प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण के लिए भी प्रयुक्त की जाती थीं। प्रारंभ में भारत से विदेशों में कथाओं का परिभ्रमण यात्रियों एवं व्यापारियों के माध्यम से हुआ, किन्तु बाद में विभिन्न भाषाओं में किए गए अनुवाद के द्वारा इनका प्रचार प्रसार हुआ।

जिस प्रकार विश्वपुस्तकालय की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद की रचना ईसा से भी कई हजार वर्ष पूर्व हो चुकी थी, उसी प्रकार कथा साहित्य भी किसी न किसी रूप में अपना रूप ले रहा था। उसका यह स्वरूप पूर्व में तो वाचिक ही था। वाचिक परंपरा के अंतर्गत कथा का वाचन करने वाले रसिक थे जो विशेष अवसरों पर ही कथा–कथन करते थे। ऐसे संकेत भी प्राप्त होते हैं कि अश्वमेघ यज्ञ में पारिप्लव आख्यान कहे जाते थे। ये कथावाचक वैदिककाल से ही आख्यानों, उपाख्यानों को जन–समुदाय के समक्ष गाकर अथवा बाँचकर कथा रूपी अमूल्य निधि के रक्षण में अपना योगदान देते थे। संवाद–सूक्तों के रूप में ऋग्वेद में अनेक ऐसे आख्यान प्राप्त होते हैं, जो लिखित रूप में है। इन संवाद सूक्तों में एकाधिक पात्रों का संवाद कथात्मक रूप में विद्यमान है, यथा–यम–यमी संवाद, सरमा–पणि संवाद, विश्वामित्र–नदी संवाद आदि। इनके अतिरिक्त भी कथात्मक तत्त्व वाले सूक्त विद्यमान है।

चतुर्विध संहिताओं में जिन कथाओं का संकेत अथवा संक्षिप्त वर्णन हमें देखने को मिलता है उनका विस्तार से वर्णन शौनक ऋषि के बृहद्‌देवता में उपलब्ध होता है। यास्क ने अपने ग्रंथ निरूक्त में, आचार्य सायण ने अपने वेदभाष्यों में तथा कात्यायन सर्वानुक्रमणी की व्याख्या वेदार्थ दीपिका में षड्‌गुरु शिष्य ने इन कथाओं के रूप तथा आधार को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। द्याद्विवेद द्वारा रचित नीतिमंजरी नामक ग्रन्थ में वैदिक आख्यानों को नीतिकथाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृत में कथा परंपरा का आरंभ वेदों से ही हो जाता है। उपनिषद् और पुराण उसकी अगली कड़ी है। उपनिषदों में विभिन्न कथाएँ प्राप्त होती है, जिनमें पशु–पक्षियों को भी आधार बनाकर कथासाहित्य की रचना की गई है, यथा– छान्दोग्योपनिषद् में उपलब्ध आख्यान। यहाँ प्रस्तुत कथाएँ तत्त्व की दृष्टि से अधिक विकसित हैं। उदाहरण स्वरूप अष्टादशपुराण साहित्य में विपुल मात्रा में कथाएँ उपलब्ध होती हैं, जो प्रायः कल्पना तथा अतिश्योक्ति से परिपूर्ण हैं।

लौकिक संस्कृत के अंतर्गत आर्षमहाकाव्य परंपरा में रामायण में अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं तथा महाभारत की मुख्य कथा शान्तनु–वंशज पाण्डवों तथा कौरवों के संबंधों तथा युद्ध की है, पर मुख्य कथा के साथ इतने उपाख्यान जुड़े हुए हैं कि इसे उपाख्यानों का महाकोश भी कहा जा सकता है। इसमें पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) का वर्णन किया गया है। इसे भारतीय इतिहास का जाज्वल्यमान दीपक कहा जाता है।

जातक कथाओं के रूप में भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपने पूर्वजन्म की कथाएँ सुनायी थीं। जातक कथाओं की भाषा पालि हैं, जिनकी संख्या लगभग 500 है। तथागत बुद्ध के जीवन की ये कथाएँ वस्तुतः बुद्ध के उपदेशों से संबद्ध है। जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बियों ने

अपने–अपने धर्म व दर्शन के प्रचार–प्रसार हेतु कथासाहित्य को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। जैन धर्म में भी कथा साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ है। हरिषेणबृहत्कथाकोष में एक–एक जैन सिद्धान्त का प्रतिपादन अलग–अलग कथाओं के माध्यम से किया गया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन वस्तुतः तर्कसंगत प्रतीत होता है– **"वैदिक, जैन तथा बौद्ध – ये तीनों ही कथा–कहानियों के धनी हैं, जिनका उद्देश्य केवल धार्मिक तथ्यों का विवरण देना न होकर व्यावहारिक उपदेश देना भी अन्यतम तात्पर्यों में से है।"**[15]

कहा जा सकता है कि कथा साहित्य की समृद्ध परंपरा भारत देश में पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी थी और अपनी शैली, रोचकता, प्रभावोत्पादकता एवं उपादेयता के कारण यह संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हो गई। ग्रीस देश की विख्यात ईसब की कहानियाँ तथा अरब की मनोरंजक कथाएँ अरेबियननाइट्स पर भारतीय कथाओं का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है।

प्राचीन कथा साहित्य दो वर्गों में विभक्त किया गया है– नीतिकथा और लोककथा। नीतिकथा में तन्त्राख्यायिका, पंचतंत्र एवं हितोपदेश आदि को सम्मिलित किया जाता है। जिनमें मानवेतर पात्र और जन्तुकथाओं का विकास हुआ और द्वितीय में प्रमुखतः बृहत्कथा और उसके संस्करण, बेतालपंचविंशतिका, शुकसप्तति, सिंहासनद्वात्रिंशिका, उपमितिभव–प्रपंचकथा, मातृचेटकृत अवदानशतक और दिव्यावदान आदि है। ये सभी कथाग्रन्थ रचना नैपुण्य, मनोरंजकता, औत्सुक्य, कल्पना, उक्तिवैचित्र्य, चमत्कृति और काव्यात्मकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ये नीतिवचन प्रायः पद्यबद्ध, व्यावहारिक ज्ञान के पोषक तथा सरल भाषा से युक्त हैं।

अतः संस्कृत कथा साहित्य कई युगों तथा परिस्थितियों का साक्षी रहता हुआ निरंतर अभिवृद्धि को प्राप्त होता रहा है। इसमें चमत्कारिता, कल्पनामयता और काव्यजीवित स्वरूप रस की प्रधानता रही। जीवन के आंतरिक पक्ष की अपेक्षा बाह्य पक्ष पर विशेष बल दिया गया। राजपरिवेश की प्रबलता रही तथा अन्य सभी पक्ष गौण रहे। सम्प्रति पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से भी संस्कृत कथाओं की श्रीवृद्धि हो रही है। भारतीय कथाओं ने विश्वकथासाहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

♦♦♦♦

सन्दर्भ

1. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.सं.–4 / 1
2. अभिराजयशोभूष्णम्, पृ.सं.–4 / 19
3. अभिराजयशोभूष्णम्, पृ.सं.–4 / 51
4. अभिराजयशोभूष्णम्, पृ.सं.–4 / 53
5. नवोन्मेष राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, पृ.सं.–118
6. अग्निपुराण, अध्याय / पृ.सं.–336
7. साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका–332, पृ.सं.–610
8. काव्यानुशासनम्, अध्याय–8, पृ.सं.–405–406
9. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 3 / 1 / 12, पृ.सं.–336
10. दूर्वा पत्रिका में प्रकाशित, 2005 द्वितीयांक, पृ.सं.–94
11. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका 98,99–100, पृ.सं.–231
12. साहित्यानुशासनम्, पृ.सं.–793
13. आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं भट्टमथुरानाथ शास्त्री, डॉ. सुनीता शर्मा, पृ.सं.–104
14. The quest for literature by J.T. Shepley, P-299
15. संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ.सं.–431

प्रथम अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

कविताकामिनी सर्वान् नालिङ्गति

सर्वेषां पुरतः स्वस्याः सौन्दर्यं

नैव प्रदर्शयति सा।

कविता तु क्रान्तदर्शिनः कवेः

सुकुमारी अपरूपा अनूढा किशोरी

यस्याः आविर्भावाय

कविः तपोनिमग्नः अनन्तकालाय

वाल्मीकिसमाधौ।

प्रथम अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।[1]

वाग्देवता के अवतारस्वरूप आचार्य मम्मट का यह कथन कवि की महिमा को स्पष्ट करता है। संपूर्ण वाङ्मय में काव्य को सर्वाधिक आदर प्राप्त है क्योंकि काव्य शीघ्र ही अलौकिक आनंद की प्राप्ति के लिए प्रयोजनीय होता है। कान्ता के समान मधुर वाणी से यह सहृदय सामाजिक या श्रोता के अन्तःकरण को प्रसन्नचित्त कर देता है। दुष्ट व्यक्ति भी शिष्टाचारी बन जाता है तथा दुर्जन व्यक्ति साधुता अथवा सज्जनता को प्राप्त कर लेता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज की उक्ति भी यहां प्रासंगिक है–**रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवदिति।**[2] काव्य की इस प्रकार की शक्ति को विद्वज्जन जानते हैं। अतः कवि को प्रजापति पद से अलंकृत किया जाता है। इसलिए कहा भी गया है–

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[3]

काव्य महत्त्व के सिद्ध होने पर तथा कवि के महिमामण्डित होने पर अनेक कवि ऐसे हुए हैं, जिन्होंने काव्यमार्ग का अत्यधिक पोषण किया है अर्थात् अपनी लेखनी से परिपुष्ट किया है। महाकवि भास, कालिदास आदि के समय से लेकर आधुनिक काल तक अपरिमित कवि इस धरा पर आविर्भूत हुए हैं, जिन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतियों से काव्य जगत् को सुसमृद्ध किया है। वस्तुतः आर्य संस्कृति के विजयध्वज भारतवर्ष की इस पवित्र भूमि पर प्रजापति सम असंख्य आधुनिक कवि पदार्पण कर अपनी सारस्वत साधना से संस्कृत वाङ्मय के कोषागार को परिपुष्ट करने में सतत प्रयासरत देखे जा सकते हैं, उनकी महाकाव्य, कथा, आख्यायिका, नाटक, चम्पू, खण्डकाव्य आदि अनेक विधाओं की मौलिक रचनाएं समसामयिक घटनाओं से संश्लिष्ट होकर लोकचेतनोद्बोधन के साथ वर्तमान समाज के लिए साक्षात् पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाने में समर्थ हैं। प्राचीन ग्रन्थों की समीक्षा भी इनकी कृतियों में स्पष्ट परिलक्षित हैं।

इस प्रकार वर्तमान समय में अनेक कवि संस्कृत साहित्य के कलेवर को अलंकृत व सुसमृद्ध करने में दत्तचित्त हैं यह कथन असत्य नहीं है अपितु सर्वथा सत्य है। इस सन्दर्भ में भारत भूमि पर पदार्पित राजदेव मिश्र, रेवा प्रसाद द्विवेदी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पुष्पा दीक्षित, राधावल्लभ त्रिपाठी, इच्छाराम द्विवेदी, हर्षदेव माधव, प्रभुनाथ द्विवेदी, रमाकान्त शुक्ल आदि मूर्धन्य प्रौढ़ तथा सरोज कौशल, रमाकान्त पाण्डेय, राजकुमार मिश्र, रवीन्द्र पाण्ड्या, कौशल तिवारी आदि तरुण काव्यकार स्मरणीय हैं। इस शृंखला में ओडिशा प्रदेश के गणेश्वररथ, यति राजाचार्य, श्रीनिवास रथ, वैकुण्ठ बिहारी नन्द, केशवचन्द्र दाश, दिगम्बर महापात्र, प्रफुल्ल कुमार मिश्र, रवीन्द्र कुमार पण्डा, बनमाली बिश्वाल, गोपबन्धु मिश्र, भागीरथी नन्द, सुकान्त कुमार सेनापति, पूर्णचन्द्र उपाध्याय, नारायण दाश, धर्मेन्द्र कुमार सिंहदेव, भारत भूषण रथ आदि अनेक समसामयिक अर्वाचीन संस्कृत रचनाकार आधुनिक संस्कृत साहित्य की अजस्र धारा को अपनी रचनाओं से गौरवान्वित करने में निरन्तर प्रयत्नशील हैं, उनमें विद्वान् युवा कवि प्रमोद कुमार नायक अन्यतम हैं। आप श्रेष्ठ कथाकार तथा उड़िया पत्रिकाओं के बहुचर्चित व्यङ्ग्य स्तम्भकार के रूप में ख्यातिप्राप्त हैं। आपकी रचनाएँ सहृदय सामाजिक के हृदय को आह्लादित करने के साथ लोकजागरण का कार्य सम्पादित करने में अद्वितीय हैं। संस्कृतकाव्यसाहित्य में आपका स्थान सुप्रतिष्ठित है।

(क) जीवन परिचय

नवोन्मेष प्रतिभा रूपी सम्पत्ति के धनी डॉ. प्रमोद कुमार नायक का जन्म ओडिशा प्रान्त के पुरी मण्डल के गोप तहसील के अन्तर्गत गणेश्वरपुर नामक स्थान पर 27 अप्रेल 1965 को एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम श्री रघुनाथ नायक तथा माता का नाम श्रीमती अन्नपूर्णा देवी है।

(ख) शिक्षा

डॉ. प्रमोद कुमार नायक ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा गणेश्वरपुर उच्च प्राथमिक विद्यालय, गणेश्वरपुर से एवं माध्यमिक शिक्षा मध्य अंग्रेजी विद्यालय तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा निगमानन्द उच्च अंग्रेजी विद्यालय, गोप, पुरी से प्राप्त की। इन्होंने संपूर्ण संस्कृत शिक्षा श्रीसदाशिव केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, पुरी से प्राप्त की है। नव्य व्याकरणाचार्य में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने के कारण इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ है। व्याकरण विषय में ही इन्होंने विद्यावारिधि (पीएच.डी.) की उपाधि प्राप्त की है।

(ग) व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक परिवेश, विभिन्न क्रियाकलाप, आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों, घटनाओं, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक आयामों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। डॉ. प्रमोद कुमार नायक जी की प्रतिभा का प्रस्फुटन व पल्लवन कल–कल निनादिनी सुरतरंगिणी के समान अनेक दिशाओं से हुआ है। आज समाज परिवर्तन के भीषण दौर से गुज़र रहा है, जहाँ विभिन्न समस्याएँ समाज की प्रगति में बाधा उत्पन्न कर रही हैं। डॉ. नायक ने समाज के विभिन्न सूक्ष्म रूपों का अवलोकन कर उन्हें अपनी रचनाओं में सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से व्यंग्यात्मक सुंदर रूप प्रदान किया है तथा समाज के वास्तविक स्वरूप को उजागर किया है। क्योंकि साहित्य का प्रमुख कार्य है लोक जागरण।

अर्वाचीनाचार्य राधावल्लभ के अनुसार लोकचैतन्यात्मक यह जागरण मनुष्यमात्र का प्राणाधायक तत्त्व है। लोकचैतन्य के अभाव में तो शास्त्र, धर्म, समस्त पौराणिकवृत्त की भी निरर्थकता है। जैसा कि उनकी उक्ति में–

शास्त्रस्याध्ययनं वृथाऽधिकतरं धर्मस्य चर्चा वृथा
वैकल्यन्तु ता कथापि सकला पौराणिकी शाश्वती।
नो ध्याता जनता जनस्य हृदये नारायणः संस्थितः
नो ज्ञाता यदि नो कृतोऽस्ति जनतोद्बोधाय यत्नो नो वा।।[4]

इस दृष्टि से यदि हम देखें तो नायक जी पूर्ण रूप से सफल प्रतीत होते हैं क्योंकि इनकी रचनाओं में केवल विभिन्न समस्याओं का चित्रण ही नहीं है अपितु समाधान के उपाय भी सम्मिलित हैं। अपनी अनुपम कृतियों के माध्यम से आपने अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को विशिष्ट पहचान दी है।

(घ) कार्यक्षेत्र

इनका वर्तमान कार्यक्षेत्र दामोदर संस्कृत महाविद्यालय, पुरुणाबजार, भद्रक (ओडिशा) है। इस पारंपरिक संस्था में आपने दिनांक 1/10/1988 से 2002 तक व्याकरण विभाग के अध्यापक पद पर कार्य किया तथा सन् 2002 से वर्तमान समय तक प्राचार्य पद को अलंकृत कर रहे हैं।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. नायक का योगदान अपूर्व है। आपकी व्यङ्ग्य रचनाएं विविध सांसारिक प्रपंच के कारण दुःख तथा श्रम से पीड़ित मनुष्यों के चित्त को आनंद प्रदान कर

उनकी पीड़ाओं को दूर करने में सर्वथा प्रयत्नशील दिखाई पडती हैं। आचार्य भरतमुनि ने अपनी अद्वितीय कृति नाट्यशास्त्र में कहा भी है–

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।[5]

समाज में प्रचलित कुसंस्कारों की कठोर समालोचना के साथ हास्य रस की अमृत धारा की प्राप्ति कराना ही डॉ. नायक का साहित्य वैभव है। पूर्व में प्रियवाक्, लोकभाषा तथा सुश्री आदि पत्रिकाओं में इनके अनेक व्यङ्ग्य लेख प्रकाशित हो चुके हैं। वस्तुतः प्रमोद कुमार नायक ही प्रथमतया आधुनिक संस्कृत साहित्य में व्यङ्ग्य धारा के पथ प्रदर्शक हैं। आप स्वयं कवि होने के साथ–साथ कवित्व विषय पर अपने विचारों को कुछ यूँ रखते हैं–

आकाशस्तु आकाशः
समुद्रस्तु समुद्रः
कविरेव कविः।
तस्य पुनः परिचयः?
योग्यतायाः प्रश्नः?
कर्मक्षेत्रसीमा?
उत्तरन्तु केवलमनन्तम्।
अनन्तस्य पुत्रः कविः
अनन्तस्य सफलकृषकः
दिगन्तपादपस्तस्य
विश्वरूपप्रशंसागायकः।
रूपैः गुणैः विविधविभवैः
प्रपूरितं कविनवविश्वम्
स्वतन्त्रं सुप्रतिष्ठितम्।
कविरेव कवेः परिचयः
प्रजापतिः आगामिलोकस्य
चित्रगुप्तः विगतदिनस्य
सर्वद्रष्टा अखिलकार्यस्य
कामधेनुः संसृष्टिसत्रस्य।
वरदोऽसौ मुक्तिनिचयस्य।

कविमुखवंशीस्वनं
उन्मादीकरोति सर्वान्
वासमुक्तान् गोपीभावान्
जीवनकदम्बतले
मधुरमिलने
प्रीतियमुनापुलिने
साधनायाः परमसोपाने।[6]

कविवर का मानना है आकाश, समुद्र और कवि अनंत हैं। कवि का परिचय कवि ही है। आगामी लोक का प्रजापति, विगतदिन का चित्रगुप्त, अखिल कार्य का सर्वद्रष्टा, संसृष्टिसत्र का कामधेनु मुक्ति का वरदाता। कवि की कविता सभी को उन्मादित करती है। अतः यह सर्वत्र श्रेष्ठ व्यङ्ग्यसाहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। व्यंग्य माध्यम से समाज में बढ़े हुए अत्याचार का तथा नेतृवर्ग के कुसंस्कारों के रहस्य को उजागर किया है। शासन के विरुद्ध संग्राम की प्रेरणा दी है, जिससे समाज दुर्नीति से मुक्त हो जाएगा और भ्रष्ट चरित्र का भी पुनर्निर्माण हो सकेगा।

(ङ) सम्मान एवं पुरस्कार

सहज व्यक्तित्व के धनी डॉ. प्रमोद कुमार नायक अपनी सारस्वत साधना के कारण निम्नांकित सम्मानों से सम्मानित हुये हैं–

1. श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी द्वारा 'युवकविसम्मानः' से सम्मानित।
2. भद्रकसाहित्यपरिषत्संवर्धनासम्मानः
3. पूर्णिमासाहित्यासारसंवर्धनासम्मानः
4. पूर्वतनविधायकमूरलीधरजेनास्मृतिसम्मानः
5. शतवार्षिकीसमारोहसम्मानः (डुंगुरा उच्च विद्यालय, डुंगुरा, वालेश्वर, ओडिशा)
6. निखिलोत्कलसंस्कृतमहामण्डलसम्मानः
7. लोकभाषाप्रचारसमितिसम्मानः

(च) रचना संसार

डॉ. प्रमोद कुमार नायक की 2016 तक प्रकाशित कृतियों में चार गद्य काव्य और तीन पद्य काव्य उपलब्ध हैं। जिन का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

गद्य काव्य :–

1. **उवाच कण्डुकल्याणः**
2. **कथासप्ततिः**
3. **स्वर्गादपि गरीयसी**
4. **स्वर्गपुरे**

पद्यकाव्य :–

1. **शबरी**
2. **गर्त्तः**
3. **दारिद्र्यशतकम्**

शबरी तथा गर्त्तः ये दोनों व्यंग्यात्मक कविताओं के संग्रहात्मककाव्य हैं। दारिद्र्यशतकम् एक लघु काव्य है। यहाँ पर दरिद्रजनों के दुःख का कवि ने बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।

(1) गद्यात्मक रचनाएँ

गद्यात्मक रचनाओं में उवाच कण्डु कल्याण, कथासप्तति तथा स्वर्गादपि गरीयसी ये तीनों व्यङ्ग्य कथा संग्रह हैं और स्वर्गपुरे एक व्यङ्ग्यात्मक उपन्यास है।

1. उवाच कण्डुकल्याणः

उवाच कण्डुकल्याण हास्य कथाओं का संग्रह है। यहाँ प्रकाशित सभी कथाएँ वर्तमान समाज की समस्याओं को प्रकट करती हैं। संस्कृत **वाङ्मय** में ऐसी हास्य रस से भरी हुई कथाएँ मिलना विरल है। संस्कृत वाङ्मय के नवीन रचनाकारों ने हास्य कथाओं की रचना के सम्बन्ध में कथाकार प्रमोद नायक जैसा प्रयास नहीं किया है। अतः जब अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का नाम लिया जाता है तो वहाँ श्री प्रमोद कुमार नायक का यह प्रयास संस्कृत साहित्य जगत् में सर्वप्रथम है। यह संग्रह समकालिक हास्य व्यंग्य कथा रचना के क्षेत्र मे एक सफल कृति है। वस्तुतः यह संग्रह हास्य व्यङ्ग्य के क्षेत्र में जो अभाव है उसकी पूर्ति करता है। अलंकारशास्त्र के प्रतिपादन में दस प्रकार के रूपकों में 'प्रहसन' नामक रूपक की सार्थकता को प्रतिपादित करते हुए हास्य रस के माध्यम से समाज के कुसंस्कार तथा उसके समाधान के उपायों को प्रदर्शित करने हेतु 'उवाच कण्डुकल्याणः' (हास्यकथा संग्रह) का प्रणयन किया गया है। 'उवाच कण्डुकल्याणः' यह नामकरण ही संगृहीत विषयवस्तु को द्योतित करने में समर्थ है। इस ग्रंथ में 29 कथाएँ संगृहीत हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

प्रथम कथा **'शिक्षकसङ्ग्रामसमितिः'** में वर्तमान समय में व्याप्त रोज़गार की समस्या को उजागर कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि नौकरी पाना वह भी सरकारी महकमे में, बहुत ही दुरुह कार्य है। युवा पीढ़ी के समक्ष आज बेरोज़गारी बहुत बड़ी समस्या है। ऐसे में शिक्षक जलातङ्क ने स्वांग रचकर तथा अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु सभी को मूर्ख बनाकर अपनी कार्य सिद्धि की है तथा कथा में हास्य व्यङ्ग्य की स्थिति उत्पन्न हुई है।

'केलिकदम्बस्य ईस्पातशिल्पम्' कथा में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आम जनता की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया गया है। पदारुढ़ व्यक्ति राजकोष से धन लेकर अत्यधिक धन का व्यय करता हुआ एक देश से दूसरे देश भ्रमण करता है और आनन्दमग्न रहता है। सरकारी खर्चे पर विदेशों में घूमकर सुखद अनुभूति करता है जबकि निरीह भोली–भाली जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी संभव नहीं हो पाती है।

'क्रन्दति अनुनासिकः' कथा में एक ऐसे चरित्र (मिश्र महोदय) का चित्रण है जो अपने घर के अन्दर भिन्न स्वरूप वाला है तथा समाज में स्वयं को स्वतंत्रता सेनानी, जनसेवक, समाज सुधारक, दहेज–विरोधी एवं आधुनिक देश के निर्माता के रूप में प्रस्तुत करता है। इस कथा में प्राचीन कुरीति दहेज प्रथा जो वर्तमान में भी उच्च जीवन स्तर का प्रतीक बन गई है, पर व्यङ्ग्य है।

इसी क्रम में अन्य कथा है **'कादम्बरीनिरोधिनी समितिः'**। मद्यपान आज उच्च जीवन स्तर का प्रतीक बन चुका है। इस व्यसन से समाज का कोई भी वर्ग अछूता नहीं रहा है अपितु देवलोक में भी यही क्रम बना हुआ है अतः देवलोक की स्त्रियाँ भी मृत्युलोक की स्त्रियों की दुर्दशा को नारद जी के मुख से सुनकर चिन्तित हैं। अतः हास्य के माध्यम से शासकवर्ग तथा मद्य व्यवासायियों के अखण्ड संबंध को उजागर कर इस कथा के अन्त में एक उपसमिति के गठन का विचार प्रकट किया किया गया है।

अहमपि नेता, विशिष्टनेता, कर्मी, मन्त्रिणः दक्षिणहस्तः इत्याद्युक्त्वा यदा बलपूर्वकं द्वारे प्रविशति तदानीं द्वारपालस्य दण्डाघातेन भूमौ पतति।[7]

'अहो राजधानी' कथा में राजनीति पर व्यङ्ग्य है। कार्यकर्त्ताओं की दुरवस्था का चित्रण है। प्रस्तुत कथा में महानगरीय जीवन शैली तथा तदगत आपराधिक वृत्ति का चित्रण है। वर्तमान युग को दिखावे का युग बताया गया है।

'हासयोगाणकार्यक्रमः' कथा में भी भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य है। चुनाव में विजय प्राप्त करने के लिए राजनेता किस सीमा तक जा सकते हैं तथा अपने क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति हेतु किस प्रकार जनता का शोषण करते हैं इन सभी का वर्णन इस कथा में किया गया है।

'कवितापाठोत्सवः' में कवियों के कवितापाठ के आयोजन क्रम का वर्णन है, जिसमें प्रतिभाहीन कवि अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। अंत में कलह प्रारंभ हो जाता है तथा आरक्षियान की ध्वनि सुनकर सभी पलायन कर जाते हैं।

'प्रगतिपथे' यह कथा भी राजनीति पर कटाक्ष है। इस कथा में स्पष्ट किया गया है कि राजनेता अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर विकास की योजनाओं को क्रियान्वित नहीं होने देते ताकि प्रजा सदैव उनके वचनों का अनुसरण करती रहे और वे पीढ़ी दर पीढ़ी शासन करते रहें।

तृतीयनयनवह्निना मन्त्रिगतवुद्धेः सर्वनाशं विधास्यामि इति कथयन् तदेव नयनमुन्मोचयितुं चेष्टते स्म। परन्तु सर्वाः चेष्टाः विफलीभूता। तृतीयनयन्तु रोगेण आक्रान्तं भवति।[8]

'तृतीयनयनम्' कथा भी राजनीति पर केन्द्रित व्यंग्यपूर्ण कथा है। इसमें यह अभिव्यक्त किया गया है कि निर्वाचन से पूर्व प्रार्थी तथा उसके दल के सदस्य विभिन्न माध्यमों से मतदाताओं को आकर्षित करते हैं तथा विजय प्राप्ति हेतु भगवान शिव को भी लालच देते है। विजय के पश्चाद् अपने द्वारा किये जाने वाले कार्यों की उद्‌घोषणा को विस्मृत कर देते हैं और स्वयं महादेव भी अपने तृतीय नेत्र को खोलकर उनका नाश करने में असमर्थ हो जाते हैं।

परम पवित्र प्रेम तथा मित्रता का पर्व होली वर्तमान में यन्त्रणा का उत्सव हो गया है। राधारमण दुरावस्था को प्राप्त हो चुके हैं। इसी तथ्य को आधार बनाकर **'श्रीकृष्णस्य दुर्गतिः'** कथा की रचना की गई है। इस कथा में होली के अवसर पर प्रयुक्त कृत्रिम रंग व उनसे होने वाले दुष्प्रभावों का, मदिरापान का तथा संगीत के नाम पर अश्राव्य गीतों तथा डिस्को के चलन का वर्णन है।

'उवाच कण्डुकल्याणः' कथा आधुनिक जीवनशैली तथा पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण पर व्यंग्य है।

जलपात्रम्, वहुपुस्तकपूर्णस्यूतं, छत्रम् इत्यादिकं सर्वं धृत्वा पुत्रः अयमारम्भः द्विकुब्जविशिष्टस्य उष्ट्रस्य इव परिदृश्यते।[9] **'वाए डाडि वाए'** कथा में अंग्रेजी माध्यम विद्‌यालयों में व्याप्त पाश्चात्य संस्कृति का चित्रण है। ऐसे विद्यालयों में अपनी संतान को पढ़ाना प्रत्येक माता–पिता का स्वप्न बन चुका है। निम्न आर्थिक स्थिति वाले परिवारों की दयनीय अवस्था को भी इस कथा में स्थान दिया गया है।

'प्रौढशिक्षाकेन्द्रम्' कथा में वर्तमान व्यवस्थाओं पर व्यंग्य है। कर्मचारीगण अपना कार्य निष्ठा तथा पूर्ण ईमानदारी से नहीं करते हैं केवल मासिक वृत्ति ग्रहणार्थ ही उनके दर्शन सुलभ होते हैं। इस वास्तविक स्थिति की पुष्टि की गई है। यही कारण है कि सरकारी योजनाओं का लाभ सभी को नहीं मिल पाता है।

'उपाधिः' कथा में स्पष्ट किया गया है कि उपाधि प्राप्ति हेतु–वज्रधर यादव अपने ही घर में चोरी करता है क्योंकि वह चर्चित होना चाहता है। वर्तमान समय में उपाधि के बिना जीवनयापन कठिन कार्य है क्योंकि जिसके पास उपाधि नहीं है उसके पास कुछ भी नहीं।

श्रीजगन्नाथ की रथयात्रा को देखने के लिए देवगुरु बृहस्पति को जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा उनका वर्णन **'दुर्दशा देवगुरोः'** कथा में किया गया है। धर्म के नाम पर व्याप्त पाखण्ड का वर्णन प्रस्तुत कथा का केन्द्रीय भाव है। इस मृत्युलोक में जब देवगुरु बृहस्पति की ऐसी दयनीय अवस्था है तो सामान्य मनुष्य का तो कहना ही क्या?

वर्तमान युग में नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान भाग ले रही है। राजनीति में रत पत्नी के व्याकुल पति का करुण क्रन्दन **'नेत्रीरुपेण संस्थिता'** कथा में किया गया है। **यदि एषा विजयिनी भवेत्, तर्हि अवश्यं मम मस्तकम् आरुह्य गमनागमनं करिष्यति। किमपि तु न भूत्वा वहिः प्रदेशे प्रबलपराक्रमी वसन्तः ग्रहे वासन्ती।**[10]

'अधिवेशनम्' कथा में सरकारी तंत्र की विसंगतियों का चित्रण है। श्री जगन्नाथ भी मौन तथा चिन्तित दिखाई दे रहे हैं।

'वजेट्' कथा राजनीति में व्याप्त पाखण्ड तथा भ्रष्टाचार की द्योतक है। संसद भवन में वित्तमन्त्री द्वारा आगामी वर्ष का बजट प्रस्तुत करते हैं, जो पूर्णरूपेण स्वार्थ से भरा हुआ है। येन–केन प्रकारेण तुच्छ स्वार्थभावना की प्रबलता इस कथा में दृष्टिगोचर होती है।

पत्नी स्वाधीनता, पर्यावरण–सुरक्षा तथा अस्त्रशस्त्र निर्माण निरोध नियम को कथानक बनाकर लिखी गई कथा है 'ऽङ्कि प्रस्तावः'।

'कीलकानन्दः' कथा में धूर्त कीलकानन्द के जीवन के विभिन्न प्रसंग हैं। अपनी बाल्यावस्था, युवावस्था तथा जीवन के तृतीय चरण में वह सभी को मूर्ख बनाकर अपनी कार्यसिद्धि करता है। **असौ वराकः कीलकमिश्रः जीवत्काले यादृशं कीलकं दत्तवान्, मृतेऽपि तादृशं कीलकं प्रदाय गच्छति।**[11]

'अथ च कृषकः' कथा राजनैतिक व्यवस्था पर व्यंग्य है। दो राज्यों की परस्पर शत्रुता में आम जनता की व्यथा–वेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस कथा का वर्ण्य विषय है।

वर्तमान समय में सरकार का अत्यधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय स्वरूप गठबंधन को आधार बनाकर **'मिलितमन्त्रिमण्डलम्'** कथा की रचना हुई है विभाग आवण्टन के समय होने वाली दलगत राजनीति को उजागर किया गया है।

पराधीन देश की यथार्थता का वर्णन 'नाटकम्' कथा में किया गया है।

स्वार्थ और भ्रष्टाचार से खेल भी नहीं बच पाया है। यहाँ भी आगे बढ़ने का आधार योग्यता नहीं अपितु भाई–भतीजावाद है। इसी केन्द्रीय भाव के इर्द–गिर्द घूमती **'प्रतियोगिता'** नाम की कथा है। **प्रतियोगितायाः लक्ष्यं नहि पुरस्कारप्राप्तिः। अपितु वनेषु मैत्रीभावप्रतिष्ठा। अस्माकं वनं सर्वदा तत्रैव मतिं ददाति। अतः पुरस्काराणाम् अप्राप्तिविषये वयं नितरामेव दुःखरहिताः।**[12] अयोग्य प्रतिभागी जब संतोषजनक प्रदर्शन नहीं करते हैं, तो अध्यक्ष महोदय प्रतियोगिता को मैत्रीभाव प्रतिष्ठा का सूचक सिद्ध कर देते हैं।

'लोकलीला' कथा में धर्म की आड़ लेकर स्वार्थ सिद्धि में लगे संन्यासी का वर्णन है। जिसके आश्रम में अन्यायोपार्जित धन, बहुपत्नी प्रथा, नशाखोरी तथा व्यभिचार का बोलबाला है। अपने इस आडम्बर को वह लोकहितार्थ बताता है।

वर्तमान युग में नवीकरण के नाम पर एक महिला जो पूरे घर की धुरी है, वही घर में क्लेश तथा अशान्ति का कारण बन जाती है। परंपरागत संस्कारों से भूल चुकी आज की युवा पीढ़ी ऐसी अंधी दौड़ में भाग रही है, जिसके दुष्परिणाम समाज व देश के लिए घातक हैं। इन्हीं भावनाओं का अभिव्यक्तीकरण **'पुनर्नवीकरणम्'** कथा में किया गया है।

'पशुपालननीतिः' कथा में भ्रष्टाचार, घूसखोरी तथा स्वार्थसिद्धि की पराकाष्ठा दिखाई देती है। पशूओं पर किया जाने वाला व्यय अधिक दिखाया जाता है और समीक्षक द्वारा पूछताछ किए जाने पर असत्य कह दिया जाता है अथवा लालच देकर उन्हें भी अपने साथ मिलाने का प्रयास किया जाता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी ऐसे उदाहरण हमें देखने को मिल जाते हैं कि प्रशासन द्वारा जो धनराशि विकासकार्यों हेतु निर्धारित की जाती है वह आमजन तक पहुँच ही नहीं पाती यही कारण है कि निर्धनता बढ़ती जाती है।

'साक्षात्कारः' में व्यंग्य माध्यम से देश की विभिन्न समस्याओं की ओर कथाकार नायक जी ने हम सभी का ध्यान आकृष्ट किया है यथाः– राजनेता मात्र भाषण देने में कुशल होते हैं उनकी योजनाएँ कार्यरूप में परिणित नहीं होती है, मृत्युलोक में मनुष्यता दुर्लभ हो गई है, परप्रवंचना

मनुष्यों का धर्म बन गया है, श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं के स्थान पर चलचित्रों तथा अभिनेताओं के विषय में रुचि बढ़ गई है, खाद्यपदार्थों में मिलावट की प्रवृत्ति बढ़ी है, शिक्षा में ट्यूशन पद्धति का प्रचलन बढ़ा है, सभी देश परस्पर परमाणुबम निर्माण में जुटे हैं जिससे सृष्टि को खतरा है तथा आज का मनुष्य अन्य के मस्तक पर अपना चरण स्थापित कर येन केन प्रकारेण आगे बढ़ना चाहता है।

'वनभाषा' कथा में आदिभाषा के अस्तित्व पर मँडराते हुए खतरे को दर्शाया गया है यह केवल स्वल्प लोगों की भाषा अथवा पुस्तक भाषा के रूप में मृतवत् है। देश में सभी प्रान्त अथवा प्रदेश के आधार पर अपनी भाषा को आधिकारिक भाषा बनाने की होड़ में हैं तथा इसके लिए मात्र विरोध एवं आमरण अनशन किए जा रहे हैं। कई दल, जातियाँ एवं धर्म के लोग अपने तुच्छ स्वार्थ की पूर्ति में लगे हुए हैं आदिभाषा के भविष्य के विषय में कोई चिंतन नहीं कर रहा है, इन्हीं आपसी विवादों के चलते गौरभाषा को वन भाषा (प्रतीक रूप में) अर्थात् आधिकारिक भाषा बना दिया गया है।

2. कथासप्ततिः

आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य में श्री प्रमोद कुमार नायक का योगदान अतीव महत्वपूर्ण है। इन के द्वारा विरचित कथाग्रन्थों में से 'कथासप्ततिः' अन्यतम है। नायक महोदय ने समाज के विभिन्न रूपों का अपनी कथाओं में व्यंग्य के माध्यम से सुन्दर चित्रण किया है। समाज की निम्नमुखी धारा को सूचित करने वाली इन घटनाओं ने नायक जी के चेतन मन को आंदोलित किया है। प्रस्तुत कथासंग्रह में कथाकार ने सामाजिक जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। 70 की संख्या में लघुकथाएँ इस ग्रन्थ को अभिमण्डित करती हैं, जिन का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

अस्पृश्यता भारतवर्ष की महाव्याधि है। हम सभी ईश्वर की सन्तान हैं, फिर भी परस्पर अस्पृश्यता का भाव देखा जाता है। ईश्वर के अभिशाप से अस्पृश्यता उत्पन्न होती है, यह वचन अन्धविश्वास को बढ़ाने वाला है। इन्हीं भावों को **'अस्पृश्यः'** कथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ मिल–जुलकर रहना और समस्त मानव जाति से प्रेम करना ही भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है जबकि छुआ–छूत या अस्पृश्यता संपूर्ण मानव जाति के लिए एक कलंक है, फिर भी संसार के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह राजनीतिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक हो या सामाजिक सर्वत्र अस्पृश्यता के दर्शन किए जा सकते हैं।

'अस्पृश्य' अर्थात् जो छूने योग्य न हो। समभाव की शिक्षा देने वाली भारतीय संस्कृति में क्या कोई प्राणी ऐसा भी है, जिसे स्पर्श के योग्य नहीं माना जाता, जिसके साथ उठा–बैठा नहीं जा सकता। प्राचीनकाल में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी किन्तु आज जातिवाद भयानक रूप ले चुका है। इसका यथार्थ चित्रण हमें निम्नांकित गद्य खण्ड में देखने को मिलता है–

अहम् अस्पृश्यः। सः अपि अस्पृश्यः। परन्तु मदपेक्षया सः जात्या हीनः। अतः सः अधिकः अस्पृश्यः अस्ति। येन तन्निकटे मम भोजनं सर्वथा असम्भवम् एव।[13]

प्रस्तुत कथा में स्पष्ट किया गया है कि अस्पृश्यता एक सामाजिक व्याधि है। यदि कोई व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र इस बीमारी से ग्रस्त है तो वहाँ शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। विकास के विषय में तो विचार भी असंभव प्रतीत होता है।

सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख मानवीय मूल्य मानवता है, जो सर्वोपरि है।

आधुनिक समय में मानवीय संबंधों का क्या मूल्य रह गया है, **'भ्रातृप्रेम'** नामक कथा में इसी तथ्य को उजागर किया गया है। कथाकार ने व्यंग्य के माध्यम से आदर्श भ्रातृप्रेम का प्रसंग उद्धृत किया है। माता–पिता की मृत्यु के बाद अग्रज नवघन अपने कनिष्ठ भ्राता का प्रेमपूर्वक पालन पोषण करता है। अवशिष्ट कृषिक्षेत्र विक्रय कर तथा दूसरों के घर में परिश्रम करके उसने अपने भाई को विद्यालय तथा महाविद्यालय में पढ़ाया, नवघन को विश्वास था कि जब श्यामसुंदर योग्य होगा तो उसका सहयोग करेगा। नवघन की आर्थिक स्थिति कमज़ोर होती गई तथा श्यामसुंदर शहर में विवाह कर अपने परिवार में व्यस्त हो गया। अत्यधिक कष्ट के कारण नवघन ने अपने प्राण त्याग दिए तथा श्यामसुंदर ने पूर्ण आडंबर के साथ शोक तथा अन्त्येष्टि क्रिया को संपन्न कर आदर्श प्रस्तुत किया।

'नेता' इस कथा में वर्तमान राजनीति पर करारा व्यंग्य है। किस प्रकार विद्यालय में तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र, जिसे दुराचरण के कारण महाविद्यालय से बहिष्कृत किया गया था वह अनुचित उपायों के प्रयोग से राज्य का शिक्षा मन्त्री बन गया तथा सदैव विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला, सदाचारी रामेश्वर प्रशासनिक परीक्षा उत्तीर्ण कर शिक्षा सचिव के पद पर आसीन होकर शिक्षामंत्री गोवर्धन के आदेश की पालना में नतमस्तक है।

प्रभुतासंपन्न तथा उच्चपदासीन जन घोर आपराधिक कृत्य करके भी धन के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं और दुर्बल आर्थिक स्थिति वाले तथा परिस्थितिवश अनुचित व्यवहार करने वाले

कमज़ोर मनुष्य को राष्ट्र का कलंक सिद्ध कर वन्दिशाला में भेज दिया जाता है। इस प्रकार **'चौरः'** नामक कथा में भ्रष्टाचार तथा समाज में फैली अव्यवस्थाओं पर व्यंग्य है।

'निरपेक्षः' कथा वर्तमान समय में व्याप्त रोज़गार की समस्या को उजागर करती है। एक पद पर नियुक्ति हेतु कई गुना अभ्यर्थी प्रयास करते हैं। नेता, मन्त्री, समाजसेवी तथा अन्य उच्चपदाधिकारी अपने पद का दुरुपयोग घूसखोरी को बढ़ावा देने में करते हैं तथा जिस किसी प्रकार से स्वार्थसिद्धि करते हैं, जबकि वास्तविक योग्यता रखने वाला सदैव निम्न पायदान पर रहता है।

महिला सशक्तीकरण के दावे करने वाले समाज के ठेकेदार ही आज महिला की लाज को तार–तार कर रहे हैं दिन के उजाले में उच्च आदर्शों की बात करते हैं और रात के अँधेरे में मानवता को शर्मसार करते हैं। इतना होने पर भी महिला पर दोषारोपण किया जाता है, उसे गाँव से बहिष्कृत कर दिया जाता है। वह विचार करती है–**'न्यायस्य मार्गः सत्ये निहितः अथवा धने। तथैव सतीत्वस्य का भवति संज्ञा?"**[14] यही **'रूपाजीवा'** नामक कथा का सार है।

मानवीय मूल्य वे आदर्श हैं, जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। इस कथा में अस्पृश्य देवदत्त का वर्णन है, जिसे ग्रामवासियों द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया। उसी देवदत्त ने समय आने पर ग्रामप्रधान के प्राणों की रक्षा की। परोपकार, सेवा तथा परहित में उसने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया तथा इस अविस्मरणीय बलिदान ने ग्रामजनों का ह्रदय परिवर्तित कर दिया। अतः **'परिवर्त्तनम्'** कथा के नाम को सार्थक कर दिया।

'राजपुत्रः' नामक कथा में राजा चन्द्रवर्मा की दया भावना तथा प्रजावत्सलता का वर्णन है। साथ ही युवराज द्वारा की गई वृद्धसेवा का भी चित्रण है। प्रजा पर स्नेह रखना, उनके कष्ट दूर करना, सभी को सन्तुष्ट करके शासन चलाना ही राजधर्म है। यही इस कथा का केन्द्रीय भाव है।

भारतीय संस्कृति त्याग, सेवाभाव, बलिदान, प्रेम, दया एवं सहिष्णुता के भावों से ओत–प्रोत है, किन्तु आज का युग तकनीकि प्रधान है। समय के साथ मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है। नेतागण दूरदर्शन पर आना चाहते हैं, छायाचित्र खिंचवाते हैं तथा नाम कमाना चाहते हैं, परन्तु उनका ह्रदय भावशून्य हो चुका है। ऐसे नेता धनलोलुप तथा स्वार्थी हैं। **'सेवा'** नामक कथा में ऐसे ही जनसेवकों पर व्यंग्य प्रहार किया गया है।

'क्रीडाप्रेम' नामक कथा वर्तमान समय में प्रचलित अतिशय क्रिकेट प्रेम का वर्णन करती है। एक चिकित्सक जिसे समाज में भगवान का दर्ज़ा प्राप्त है। रुग्ण तथा ज़रुरतमन्दों की सेवा करना

जिसका परम कर्त्तव्य है जिससे समाज तथा राष्ट्र सदैव सहयोग की अपेक्षा करता है, ऐसा चिकित्सक यदि अपने क्रिकेट प्रेम के चलते कर्त्तव्यविमुख होकर मानव जीवन की ही अवहेलना करने लगे तो मानवता के लिए संकट गहराने लगेगा।

'कविः' इस कहानी में कथाकार ने कविकर्म को स्पष्ट किया है। कविवर नायक कहते हैं कि कवि का कार्य स्तुतिगान करना नहीं है, अपितु वस्तुस्थिति का यथावत् वर्णन कर लोकजागरण करना है। ऐसे ही भावों की अभिव्यक्ति कविवर नायक ने 'शबरी' काव्य संग्रह में भी की है–

कविरद्य मग्नः सखि!
नारी कुच–जानु–कटि–सौन्दर्यवर्णने
अथ असत्यं छादयितुं
कविरद्य संयोजयति दुर्बोध्यकविताजालम्
यतते वा परिलब्धुं महार्घ पुरस्कारं।[15]

राजा यशोधन के स्तुतिविषयक काव्यों की रचना करके अन्य कविजन जहाँ प्रचुर धन संपदा तथा उपाधियाँ प्राप्त करते हैं, वहीं ब्रह्मदत्त नामक प्रतिभासंपन्न कवि अपने सिद्धान्तों तथा आदर्शों के साथ जीवनभर संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। साथ ही इस कथा में धन की महिमा का भी बखान किया गया है।

'ग्राममुख्यः' नामक कथा में रामदुर्ग तथा वरदुर्ग के बीच परस्पर हिंसा तथा द्वेषभावना का वर्णन है, किन्तु जब ग्राममुख्य की षोडशवर्षीया कन्या का अपहरण कर लिया जाता है, तो सभी नियमों तथा निर्णयों की परिधि का उल्लंघन कर ग्रामुख्य पाषाणप्रतिमा को लौटाकर अपना दोष स्वीकार कर अपनी पुत्री को घर ले आता है।

असहाय जनों की सहायता करना, भूखों को भोजन कराना तथा सभी प्राणियों में समानता के भाव रखना ही वास्तविक अर्थों में सच्ची ईश्वरीय सेवा है। **'जयन्ती'** नामक कथा में मठाधीश द्वारा आश्रम में प्रकाश, प्रसाद, प्रवचन, अतिथि–सत्कार तथा साज–सज्जा का तो विशेष ध्यान रखा जाता है किन्तु अत्यन्त दीन–हीन जन भिक्षुक का तिरस्कार किया जाता है। अंत में एक–दरिद्र परिवार के सदस्यों द्वारा भिक्षुक का यथोचित सम्मान किया जाता है, जो सबसे बड़े धर्म मानवता का परिचायक है।

'अभावः' नामक कहानी में पाठकों का ध्यानाकर्षण इस समस्या की ओर किया गया है कि आज के समय में साहित्य का सृजन तो उच्च कोटि का हो रहा है, किन्तु सहृदय पाठकों का अभाव होने से साहित्य का अथवा भाषा का पतन हो रहा है। पत्र–पत्रिकाओं को खरीदने में क्रेता

किसी भी प्रकार की रुचि को प्रदर्शित नहीं करते हैं जबकि साहित्य की उन्नति के लिए तथा इतिहास को जानने के लिए पढ़ने की जिज्ञासा को बढ़ाना होगा।

'आदर्शचिकित्सकः' नामक कथा में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि मानव मात्र की सेवा करना ही एक चिकित्सक का परम कर्त्तव्य होता है, किन्तु वह अपने कर्त्तव्यों से पराङ्मुखी होकर लोभी, स्वार्थी तथा भ्रष्टाचारी बन जाता है, सेवा जैसे पवित्र कर्म को कलङ्कित कर वह चिकित्सक व्यवसायी बन जाता है तथा आदर्श चिकित्सक के रूप में पुरस्कृत भी होता है। अतः इस कहानी में न सिर्फ चिकित्सकों की धनलोलुपता का चित्रण है अपितु शासन तथा न्याय व्यवस्था पर भी कटाक्ष है।

'ममता' कहानी में दो वृक्ष हैं– आम्रवृक्ष तथा तालवृक्ष। आम्रवृक्ष की शीतल छाया में लोग विश्राम पाते हैं, बाल गोपाल खेलते हैं, पक्षीगण अपना निवास बनाते हैं तथा फल आने पर फलों का रसास्वादन करते हैं। बालक शाखाओं पर चढ़कर अनेक बार उन्हें भग्न भी कर देते हैं, जबकि तालवृक्ष के समीप कोई नहीं जाता। वह आम्रवृक्ष का उपहास करता है किन्तु **मातृत्वस्य गरीयसी स्वर्गीया शक्तिः कथम् आनन्दयति अन्तःप्रदेशम्। येन चन्दनायते सकलं कषणम्।**[16] कहकर आम्रवृक्ष ममत्व के कारण अतिशयानन्द की अनुभूति में मग्न रहता है।

श्रेष्ठकथाओं की इस श्रृंखला में अन्य कथा है **'भागशेषः'** जिसमें वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या को कवि ने अपनी लेखनी का आधार बनाया है। भारतीय संस्कृति में माता–पिता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है तथा उनकी सेवा करना प्रत्येक संतान का मूल कर्त्तव्य माना गया है। प्राचीन काल से ही इस प्रकार के संस्कार तथा नैतिक मूल्यों का ज्ञान देने के पश्चात् भी आज की युवा–पीढ़ी अपने वृद्ध माता–पिता की संपत्ति का तो परस्पर बँटवारा कर लेती है और माता–पिता के प्रति अपने उत्तरदायित्व की अवमानना करते हुए उन्हें वृद्धाश्रम छोड़ आती है।

'पाण्डित्यम्' कहानी स्पष्ट करती है कि केवल वेद–शास्त्रों का अध्ययन करना ही पर्याप्त नहीं है। जीवन में व्यावहारिक ज्ञान महत्त्वपूर्ण होता है। शिक्षा सदैव चरित्र का उन्नयन कर मनुष्य को सदाचारी, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से परिपुष्ट करती है। किन्तु धार्मिक ग्रंथ, वैदिक ज्ञान तथा किसी महापुरुष के जीवनचरित्र का अध्ययन किए बिना भी व्यक्ति अपने संस्कारों तथा गुणों से भी श्रेष्ठ हो सकता है।

'उपहारः' कथा में स्पष्ट किया गया है कि– वर्तमान समाज में विशेष दिवसों तथा उत्सवों पर विभिन्न प्रकार के उपहार देने का प्रचलन है। आयोजक भी उसी व्यक्ति को अधिक सम्मान देता है जो बहुमूल्य उपहार प्रदान करता है, उसी का आदर होता है परन्तु उपहार देने में असमर्थ

दरिद्र व्यक्ति को आदर प्राप्त नहीं होता है। उस दरिद्र व्यक्ति का परिवार के साथ संपर्क अस्पृश्य होता है। उस उत्सव में उसे कोई भी नहीं पूछता है अथवा न ही कोई उससे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करता है। इस कथा में आयोजित युवोत्सव में वह किसी भी प्रकार का योगदान देने में असमर्थ है अतः वह केवल दूर से ही देखता रहता है। आयोजित उत्सव को वह केवल अनुभव करता है, भोज्य पदार्थों को देख सकता है, किन्तु दरिद्र होने के कारण वह वहाँ जाने में समर्थ नहीं होता है।

अथ च विना उपहारं कथं सः गमिष्यति नववधूदर्शनाय। एतेषु उपहारप्रदानकारिषु तस्य वा किं स्थानम्? किं वा गौरवम्? उपहारप्रदानशक्तिः केवलमिदानीं धनाढ्यानाम्। उपहाररहितस्य कृते को वा पृच्छति उत्सवे।[17]

उत्सव–समारोह में उपहार लेना अथवा देना अपनी प्रतिष्ठा का सूचक बन गया है। हर किसी में होड़–सी लगी है, यह सब एक व्यापार बन गया है। ऐसे में धनहीन जन का तो मरण ही है। उसकी संवेदनाएँ तथा उसकी शुभकामनाओं का ऐसे आडम्बर युक्त समाज में कोई मूल्य नहीं है। प्रस्तुत कथा के माध्यम से कथाकार ने इस आर्थिक सामाजिक विसङ्ति का पटाक्षेप करने का प्रयास किया है।

'आदर्श' कथा में बताया गया है कि हमारे समाज में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, हिंसा तथा अनैतिक कार्य करने वाले उच्चपद, प्रतिष्ठा तथा पुरस्कार पाते हैं तथा सदैव सत्य अहिंसा, परोपकार तथा नीति के मार्ग का अनुसरण करने वाले जीवन भर संघर्ष करते हैं तथा हिंसा का शिकार बनते हैं। यही हमारे सुसभ्य समाज की विडम्बना है।

एक पत्नी का अपने पति के चिकित्सार्थ किडनी बेचने की घटना का वर्णन करने वाली **'प्रेम'** नाम की कथा आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति है। इस कथा में निर्धन परिवार की जर्जर आर्थिक स्थिति का वर्णन है, जिसके चलते रुग्ण पति आगामी जन्म में पुनः मिलन की आकांक्षा से आत्महत्या कर अपनी इहलीला समाप्त कर लेता है। इस कथा में अलौकिक प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई गई है।

अस्मादृशानां दरिद्राणां एतावता धनेन प्रयोजनं नास्ति। धनिनस्तु अर्थाकाङ्क्षिणः भवन्ति।[18] दरिद्रजन को धन से क्या प्रयोजन अर्थ के आकांक्षी तो धनवान होते है। **'धनार्थी'** नाम वाली इस कथा में एक बार पुनः अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित तथा धन के लोभी चिकित्सक का चरित्र चित्रण किया गया है तथा धनहीन राम यादव की परहितकातरता का वर्णन है। साथ ही इस कहानी में इस विषय पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है कि पुत्र के प्रति पिता का प्रेम सभी पुत्रों में समान होता है चाहे वह कोई समृद्ध तथा प्रतिष्ठित पिता हो अथवा राम यादव के समान निर्धन तथा सामान्य पिता।

प्रस्तुत कथा **'मुक्तिदाता'** में धार्मिक मूल्यों का वर्णन किया गया है। इस कथा में पक्षियों को बंधन में रखना पाप कर्म बताया गया है तथा मानव जीवन में हरिभक्ति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संन्यासियों का कार्य लोगों को उत्तम कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित करना है, जनकल्याण की कामना करना है किन्तु आधुनिक समय में साधु–संत भी पाखण्ड तथा आडंबर युक्त जीवनशैली अपनाते हैं तथा भोगवादी संस्कृति का अवगाहन करते हैं।

'अधिकारः' कथा वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है। चुनाव में किस प्रकार अतिशय धन का व्यय किया जाता है? किस प्रकार देश में वोट की राजनीति हावी हो चुकी है? देश की स्वतंत्रता प्राप्ति में अनगिनत लोगों ने बलिदान दिया था। महात्मा गांधी ने रामराज्य की परिकल्पना की थी। ऐसे महनीय देश भारत में आज राजनैतिक स्तर पर स्वार्थ, भ्रष्टाचार तथा अराजकता फैल गई है। देश के बड़े–बड़े नेता अपने तुच्छ लाभ की सिद्धि के लिए इसे परिवर्तन का नाम देते हैं।

'अशुभपुत्रः' नामक कथा में विमाता का पुत्र प्रेम प्रदर्शित किया गया है। प्रथम पत्नी की मृत्यु का कारण पुत्र देवप्रिय को मानकर पिता जितेन्द्र ने पुत्र को अशुभ समझकर उसका मुखदर्शन नहीं किया तथा चिकित्सालय में ही उसका परित्याग कर दिया। चिकित्सालय की सेविका द्वारा उसका पालन–पोषण किया गया। युवावस्था में विमाता शुचिस्मिता ने उसे अपनाकर वात्सल्य तथा ममता का आदर्श प्रस्तुत किया, जिसके समक्ष पिता जितेन्द्र पाइकराम भी नतमस्तक हो गए।

धर्म के नाम पर जप, तप, पूजा तथा अर्चना तो की जाती है किन्तु मानवीय धर्म की अवहेलना की जाती है अर्थात् रोगी, निर्धन तथा अभावग्रस्त की सहायता नहीं की जाती है, जबकि मुमूर्षु जन की सेवा ही वास्तविक रूप में सच्ची माधवसेवा है। यही **'माधवसेवा'** कथा का सार तत्त्व है।

प्रस्तुत कथा **'गुरुः'** में वर्तमान समय के भयंकर दैत्य भ्रष्टाचार का वर्णन किया है। इस दानव ने गुरु–शिष्य के परम पवित्र संबंध को भी तार–तार कर दिया है। साथ ही यह कहानी सरकारी कार्यालयों में व्याप्त घूसखोरी का भी भंडाभोड़ करती है तथा इस बात की पुष्टि करती है कि प्रत्येक कार्य के लिए रिश्वत ही एक मात्र सफल साधन है।

एक हास्याभिनेता के वास्तविक जीवन के कटु रहस्य का उद्घाटन करने वाली यह कथा हमें बताती है कि हास्य अभिनेता का कार्य सभी को प्रसन्नता प्रदान करना है, उसके अभिनय को देखकर दर्शक अपने दुःख भूल जाते हैं किन्तु वह कलाकार स्वयं पारिवारिक तथा आर्थिक संकटों

से जूझता हुआ सदैव इसी विचार में मग्न रहता है कि या तो उसके दुःख समाप्त हो जायें या फिर जीवन। **'हास्याभिनेता'** नामक कथा कलाकारों की वास्तविक स्थिति का सजीव चित्रण करती है।

'उपादानम्' कथा राजनीति पर करारा व्यंग्य है, जिसमें एक दल दूसरे दल की पराजय के लिए प्रयत्नशील रहता है। निर्वाचन में विजय प्राप्त करने के लिए राजनैतिक दल के नेता किसी भी अनुचित तथा अनैतिक उपाय को अपनाने में भी संकोच नहीं करते हैं। यहाँ तक कि महिलाओं के लिए भी अभद्र टीका–टिप्पणी कर उसे चुनावी जामा पहनाकर अपने लाभ के लिए प्रयोग करते हैं।

'महाकविः' नामक कथा में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि वर्तमान में प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न उपाधियाँ तथा पुरस्कार देने का चलन है। यह पुरस्कार गुणवत्ता तथा योग्यता के आधार पर नहीं अपितु अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए दिए जाते हैं। इस कथा में अर्थ की महत्ता पर बल दिया गया है साथ ही इस बात के भी संकेत इस कहानी में मिलते हैं कि आज के युग में सहृदय पाठकों की कमी है।

कविवर नायक ने अपने साहित्य में सदैव कविकर्म को उद्भासित किया है। साहित्य रचना को साधना के रूप में वर्णित किया है साथ ही इस चिंतन को भी स्वर प्रदान किया है कि आधुनिक समय में सहृदय पाठकों का अभाव दिखाई देता है। इन्हीं भावनाओं का प्रस्फुरण प्रस्तुत रचना **'साधना'** में किया गया है–**'साहित्यसाधना धनिकानां पादतले न भवति अथ च साहित्यिकः स्वाभिमानी भवेत् इति तस्य परमः विश्वासः। पाठकानाम् अभिमतं खलु साहित्यिकस्य श्रेष्ठः पुरस्कारः इति।'**[19] साहित्य सदैव साधना की अपेक्षा करता है साधना के बिना साहित्य कभी भी पुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता।

एक शिक्षक जो राष्ट्र का निर्माता है तथा समाज को विकास के पथ पर अग्रसर करता है। वह समाज में यथोचित सम्मान तथा प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं करता। वर्तमान समाज में केवल डॉक्टर, इंजीनियर तथा पूँजीपतियों को ही उच्च स्थान प्राप्त है, जबकि इन सभी की आधारशिला एक शिक्षक ही है। **'परिचयः'** नामक कथा में शिक्षकों की इसी निम्नावस्था का भावपूर्ण चित्रण किया गया है।

'अन्तिमसुयोगः' कथा में विधवा स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। जिसके लिए उदरपूर्ति भी सुलभ नहीं है। अतः वह सेविका का कार्य करती है। किन्तु निर्धन को तो स्वप्न देखने का भी अधिकार नहीं है। गृहस्वामी विधवा रूपश्री के पुत्र को भी सेवक बनाना चाहता है।

जिस पुत्र की उन्नति के लिए रूपश्री ने सेविकावृत्ति अपनायी थी अब उसे अपना स्वप्न टूटता हुआ दिखाई देता है तथा अपना श्रम फलहीन दिखाई देता है। इस पर भी गृहस्वामी की बात न मानने पर उसे कारागर का भय दिखाया जाता है।

मानवीय मूल्यों की परिचायक **'संकल्पः'** नाम की कथा में प्रकृति का सौन्दर्यीकरण किया गया है। हम दिन–रात शान्ति तथा समानता के मन्त्र जपते हैं। विश्वकल्याण की बात करते हैं किन्तु एक राज्य का दूसरे से तथा एक देश का दूसरे देश से परस्पर शत्रुता का व्यवहार है। पक्षी भावना की अपेक्षा मनुष्य भावना नगण्य है। क्योंकि सभी नियम–कानून तथा सीमाएँ मनुष्यों के लिए हैं पशु–पक्षी स्वतंत्र हैं। वे देश काल की सीमा से परे हैं वे हिंसा, द्वेष, क्रोध तथा ईर्ष्या के भावों से शून्य परमानंद में रहने वाले हैं।

'स्वप्नः' कथा में छात्रों के सुनहरे भविष्य के स्वप्न हैं। वे शिक्षा प्राप्त कर आई.ए.एस., चिकित्सक तथा इंजीनियर बनकर समाज में मान–सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं क्योंकि इन पदों में अधिकार भावना है, अत्यधिक धनार्जन है, शक्ति है तथा सरकार द्वारा प्रदत्त विशिष्ट सुविधाएँ हैं। कोई भी शिक्षक बनकर देशसेवा करना नहीं चाहता। इस कथा में पुनः एक बार नायक महोदय ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि अर्थपरायण संस्कृति में शिक्षकों का स्थान दिनोंदिन गौण होता जा रहा है, जो उनकी इस कहानी की अन्तिम पंक्ति में भी दृष्टिगत होता है– **क्षमतालालसया गुरोः आसनम् अनुदिनं लघुतां प्रति गच्छति।**[20]

'जननी' अपने नाम को चरितार्थ करती हुई इस कथा में विधवा स्त्री देवीदत्ता द्वारा अत्यधिक कष्ट सहकर अपने पुत्र के लालन–पालन का वर्णन है। जो प्रेम, सहनशीलता, करुणा, ममता तथा त्याग की मूर्तिस्वरूपा है। अपने पुत्र जो धन प्राप्त होने पर विवाह के पश्चात् अपने परिवार में ही सिमट कर रह जाता है। अपनी माता के प्रति दायित्वों का निर्वहन नहीं करता। वह माँ प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पुनः अपने पुत्र के हितार्थ अपने शरीर का अंग भी दान करने से पीछे नहीं हटती है। वर्तमान समय में भी वृद्ध माता–पिता को परिवार में उचित स्थान तथा सम्मान नहीं मिलता तथा उनकी संतान उन्हें वृद्धाश्रम छोड़ आती है। इसी समसामयिक मुद्दे को कथाकार ने अपनी रचना का आधार बनाया है।

'प्रभावः' नाम की कहानी में स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य जिस प्रकार के लोगों के साथ संगति करता है, उसका आचरण भी वैसा ही हो जाता है। दुष्ट व्यक्तियों का संग सदाचारी को भी अनुचित कर्म में आसक्ति रखने वाला बना देता है, जबकि सज्जनों के संसर्ग से व्यक्ति में सही–गलत की समझ विकसित होती है और वह बुराईयों का त्याग कर जीवन में सत्य के पथ पर अग्रसर होता है।

साहित्य का सृजन प्रेरणा के अभाव में संभव नहीं है। **'प्रेरणादायिनी'** कथा में इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। प्रतिवेशिनी शशिरेखा काव्यरसानुरागी, भवदेव को सदैव कविता लिखने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है, जबकि भवदेव की पत्नी सदैव उसे लेखन कार्य से रोकना चाहती है। उसे धिक्कारती है। एक महोत्सव में जहाँ भवदेव को सम्मानित किया जाता है वहाँ उसकी पत्नी शुभदर्शिनी की प्रेरणादायिनी के रूप में प्रशंसा की जाती है जिसने अत्यधिक कष्ट सहन कर भवदेव को काव्य साधना में प्रेरित किया।

मित्रता धर्म निभाने के लिए भगवान कृष्ण ने मित्र सुदामा पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था किन्तु आज मित्रता का अर्थ परिवर्तित हो चुका है। **'सखा'** नामक कथा में दरिद्र श्री दाम सहायतार्थ अपने बचपन के मित्र केशव के निकट जाता है, जो वर्तमान में राज्य मंत्री के पद पर आसीन है। श्री दाम उदरपूर्ति हेतु सरकार द्वारा प्रदत्त ऋण की व्यवस्था के लिए जब अपने मित्र से कहता है तो वह इस प्रस्ताव को नकार कर कहता है कि निर्वाचन के समय तुम कहाँ थे? तुमने कोई प्रचार भी नहीं किया। ऋण व्यवस्था तो केवल दल के सदस्यों के लिए ही है। अतः मित्रता भी स्वार्थाश्रित रह गई है।

'परित्यक्ता' कथा में आज के समय की सर्वाधिक प्रचलित समस्या पर चिंतन किया गया है और वह है वृद्ध माता–पिता के प्रति सन्तान का उत्तरदायित्व। आज के युवा अपनी संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य सभ्यता की अंधी दौड़ में मूल्यों की अवहेलना करते दिखाई पड़ रहे हैं क्योंकि भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है माता–पिता की सेवा। किन्तु वृद्ध माता–पिता को भार समझ कर आज की संतान उन्हें वृद्धाश्रम भेजकर अपने कर्त्तव्यों से मुक्त होना चाहती है। वे धन–संपत्ति का तो बँटवारा कर लेते हैं किन्तु अपने माता–पिता की ज़िम्मेदारी उठाना नहीं चाहते।

शिक्षा छात्रों में व्यवहारगत परिवर्तन करती है। आचरण का परिशोधन कर उन्हें देश का चरित्रवान तथा सुयोग्य नागरिक बनाती है। कहा भी गया है– 'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात् विद्या विनम्रता प्रदान करती है किन्तु यदि विद्या प्राप्त करके भी छात्रों में क्रोध, दम्भ, ईर्ष्या, हिंसा, स्वार्थ तथा उन्माद की भावना का अन्त न हो, वे परस्पर शत्रुता का व्यवहार ही करें तो ऐसी विद्या ग्रहण करने का क्या लाभ? गुरु विश्वम्भर के इसी चिंतन को **'शिक्षा'** नामक कथा में वर्णित किया है।

सत्य सर्वदा तीनों लोकों के कल्याण के लिए होता, किन्तु यदि असत्य से किसी का हित होता है तो ऐसा असत्य भी सत्य से महान् होता है। **'सत्यव्रतः'** नाम की कथा में परोपकार की पवित्र भावना के दर्शन होते हैं।

चिकित्साकेन्द्र आजकल प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र बन गए हैं, जहाँ पर चिकित्सा के नाम पर तथा परीक्षण के नाम पर धन को लूटा जाता यहाँ तक कि रोगियों के अंगों–प्रत्यंगों का भी करोबार किया जाता है। चिकित्सक सरकारी अस्पतालों का प्रयोग अपने निजी अस्पताल में रोगियों की संख्या बढ़ाने के लिए करते हैं। दरिद्र रोगी की दुरवस्था का तो कहना ही क्या? ऐसे स्वार्थी तथा धनलोलुप चिकित्सकों की कहानी है **'दरिद्रचिकित्साकेन्द्रम्'**।

'वानर–मकर–कथा' में पत्नी द्वारा प्रताड़ित मकर का अविवाहित वानर को एकाकी रहने का सुझाव दिया गया है। इस कथा में मकर अपनी पत्नी द्वारा किए जा रहे दुर्व्यवहार के विषय में वानर को बताता है।

'स्वाधीनतादिवसः' नामक कथा में वर्तमान शासन व्यवस्था पर तीक्ष्ण व्यंग्य है। इस कथा के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार दिनोंदिन अपनी जड़े फैला रहा है। पदारुढ़ अधिकारी अपने–अपने स्तर पर अपनी स्वार्थसिद्धि में रत हैं। जनकल्याण हेतु चलाई जा रही योजनाओं का लाभ आमजन को नहीं मिल पाता अपितु सहायता राशि का स्वल्प भाग ही विकास के कार्यों पर खर्च किया जाता है तथा आकलन पुस्तिका में गलत जानकारी लिख दी जाती है।

'ग्रामस्य पुत्रः' कथा ग्राम्य जीवन का वर्णन करती है। गाँव के लोग सरलहृदय तथा परदुःखकातर होते हैं। साथ ही इस कथा में चकाचौंध तथा भागमभाग से भरे शहरी जीवन का भी वर्णन है। कथानायक अमरेश के माध्यम से कथाकार ने चिंतन को इस रूप में अभिव्यक्त किया है कि उच्च जीवन स्तर, सुख–सुविधाएँ तथा आकर्षक वेतन के लोभ में न केवल ग्रामीण युवक शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, अपितु हमारे देश की प्रतिभा अन्यदेशों में गमन कर रही है। भौतिकवादी संस्कृति ने युवा पीढ़ी को संस्कारों, आदर्शों तथा मूल्यों से विहीन बना दिया है।

'सदुपयोगः' कथा हमें शिक्षा देती है कि प्रकृति ने हमें स्वच्छ प्राणवायु, फल–फूल, औषधियाँ, दुर्लभ वृक्ष, पशु–पक्षी, महत्त्वपूर्ण धातुएँ तथा रत्न प्रदान किए हैं, जिनका हमारे पारिस्थितिकी–तंत्र को सुचारू रूप से चलाने में अमूल्य योगदान है। किन्तु आज का शिक्षित युवा अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए पशूओं के सींग–दंत तथा चर्म को विदेश भेजने का व्यापार कर रहा है, वृक्षों की अन्धाधुंध कटाई कर रहा है तथा भूमि का अत्यधिक दोहन कर पर्यावरण को क्षति पहुँचा रहा है, जो वास्तव में प्राकृतिक आपदाओं को निमंत्रण ही है।

'चित्रकारः' कथा समाज का वास्तविक वर्णन है। इस कथा में बताया गया है कि वर्तमान युग में प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं रह गया है। वह किसी कोने में पड़ी दम तोड़ रही है। धनी

तथा उच्च पदस्थ नेतागण अपनी शक्ति के दुरुपयोग से अपनी संतान की सामान्य कृति को भी पुरस्कृत कर देते हैं तथा कला का ज्ञाता न होने पर भी वे सभापति पद पर आरुढ़ हो जाते हैं। यही हमारे समाज की विडम्बना है।

अपनी कथाओं में कविवर नायक जी ने नारी के विभिन्न स्वरूपों का सुंदर चित्रांकन किया है। उन्होंने कहीं नारी के अलौकिक पति प्रेम को दर्शाया, तो कहीं उसे पर पुरुषगामिनी बताया, कहीं विमाता बनकर वह पुत्र से प्रेम करती हुई दिखाई देती है, तो कहीं परकीया नायिका बन जाती है और कहीं प्रतिवेशिनी बनकर वह कविता लेखन की प्रेरणा बन जाती है। **'मातृत्वम्'** कथा में सरिता नामक नायिका जो विवाह के सात वर्ष व्यतीत होने पर भी संतान मुख दर्शन हेतु व्याकुल है, वह अपने पति मनोज के अधिक धनार्जन हेतु विदेश जाने पर गांव के ही अन्य युवक कामेश में आसक्त हो जाती है।

'परकीया' कथा कर्यालय में कार्य करने वाले रतिकान्त तथा शशिकला के गुप्त प्रणय की कथा है। पूर्व में विवाहित भी दोनों गुप्त रूप से मिलते–जुलते हैं तथा बाद में रतिकान्त अपनी रुग्ण पत्नी तथा बच्चों का त्याग कर तथा शशिकला भी अपने पति को छोड़कर परस्पर मण्डल विवाह पंजीकरण कार्यालय में विवाह कर लेते हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह को एक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। इस बंधन में दो व्यक्ति कई जन्मों तक बंध जाते हैं, किन्तु पाश्चात्य संस्कृति का ही यह दुष्प्रभाव है कि हमारे देश में चरित्रहीनता, विवाहविच्छेद तथा लिविंग टुगेदर के भी उदाहरण देखने को मिल जाते हैं, चूंकि शशिकला परकीया है अतः रतिकान्त से विवाह के पाँच वर्ष बाद वह पुनः अन्य पुरुषगामिनी बन जाती है।

'असम्भवः' कहानी एक लिपिक मानस के मनोभावों को व्यक्त कर समाज का यथार्थ चित्रण करती है। मानस एक ईमानदार लिपिक है जो अपने वेतन से सुख–सुविधाओं की सामग्री जुटाने में असमर्थ है। अतः अपनी पत्नी द्वारा उसे प्रताड़ित किया जाता है उत्कोच लेने हेतु उकसाया जाता है तथा ससुर भी उसे उपदेश देते हुए कहते हैं कि– **परधनमेव गृहस्य परिवर्धने परमं सहायकम्।**[21] इस कथा में सरकारी महकमें में उत्कोच की महत्ता पर व्यंग्य है।

आज के युग में कुलीनता के मायने बदल चुके हैं। स्वयं को समृद्ध तथा प्रतिष्ठित दिखाने की होड़ आज की पीढ़ी पर हावी हो चुकी है, जिसके लिए वे अपनी परंपराओं, संस्कारों तथा मूल्यों की अवमानना करने लगे हैं। जो न केवल समाज अपितु राष्ट्र के अस्तित्व के लिए भी खतरा है। पिता तथा पुत्र के संबंधों को तार–तार करने वाली कहानी **'आभिजात्यम्'** में आडंबर युक्त जीवनशैली पर कड़ा प्रहार किया गया है।

'उपदेशः' नामक कथा शासन के कटु सत्य का उद्घाटन करती है। आमजन तक पहुँचने वाली सहायता सामग्री को प्रभुता संपन्न वर्ग अपनी दुर्नीतियों से पहुँचने ही नहीं देता। राजतंत्र में राजा के मुख्य उपदेष्टा राजा को अनुचित तर्क देकर भ्रमित कर देते हैं। उनके उपदेश प्रजा के हित के लिए न होकर स्वार्थी राजनीति के लिए होते हैं। देश को पतन के मार्ग पर अग्रसर करने वाले उपदेशक 'परमजनसेवक' की उपाधि से शोभा पाते हैं।

प्रकृति से सरल, दयालु तथा परोपकारी साधु को एक लोभी व्यक्ति द्वारा छलने की कथा का नाम है **'साधुः'** इस कथा में बहुभाषी, लोभी तथा अवसरवादी जन ने अपनी वाक्पटुता से निर्दोष साधु को अपराधी सिद्ध कर उसे राजा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। आज समाज में भी इस प्रकार के उदाहरण यत्र–तत्र देखने को मिल जाते हैं, जहाँ निर्भीक अपराधी स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करते हैं तथा निरपराधी सरल जन को यातनाएँ देकर प्रताड़ित किया जाता है।

'अक्षमः' कथा में स्पष्ट किया गया है कि जीवन तथा मृत्यु ईश्वर के अधीन है। किसी भी प्राणी को जीवनदान देने में या किसी भी क्षुद्र जीव को मृत्युलोक पहुँचा देने का सामर्थ्य हम में नहीं है। सैंकड़ों आपदाओं से भी व्यक्ति जीवित बच सकता है और कुशा के अग्रभाग से भी व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। समय बड़ा बलवान है और यही शाश्वत सत्य भी है।

'चित्रम्' कथा भी आमजन के मनोभावों का तथा उनकी समस्याओं का वर्णन करती है साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि प्रजाहित में अधिकारियों तथा नेताओं द्वारा किया गया स्वल्प कार्य मात्र छायाचित्र खिंचवाने तथा दूरदर्शन पर प्रसिद्धि पाने अथवा उससे किसी प्रकार का लाभ कमाने के उद्देश्य से ही किया जाता है। निरीह जनता तो सदैव ही निर्धनता, अभाव, पीड़ा तथा शोषणके पाटों के बीच पिसते–पिसते दम तोड़ देती है।

दो परिवारों के मध्य परस्पर वैरभाव के चलते प्रेम का बलिदान तथा नायक विजय का कुसंग में पड़ जाना, मद्यपान करना तथा गणिकागृहगमन करना। इन्हीं भावों को उजागर करने के साथ ही **'उत्तराधिकारः'** कथा गणिकावृत्ति में लिप्त महिलाओं की अन्तर्व्यथा का यथार्थ वर्णन करती है। अपनी इच्छा के विरुद्ध महिलाओं को जीविकोपार्जन हेतु इस दलदल में अपनी ही माता द्वारा धकेला जाता है। यह वृत्ति उन्हें उत्तराधिकार रूप में प्राप्त होती है। कभी–कभी अपने सम्मान की रक्षार्थ वे अपने प्राणों का ही उत्सर्ग कर देती है।

'नीलवर्णः शृगालः' कथा में चतुर तथा वाक्पटु शृगाल का वर्णन है, जिसने पाखण्ड तथा आडम्बर से संपूर्ण शृगाल समुदाय को नष्ट कर दिया तथा शृगाल इसका कारण जानने में भी

असमर्थ रहे। इसी प्रकार समाज में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो वास्तविकता को छिपाकर कृत्रिम भाव दिखाकर स्वार्थसिद्धि में रत रहते हैं।

प्राचीनकाल में विवाह कुल तथा गोत्रादि का निरीक्षण करके परिवार की अनुमति से किया जाता था। किन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से अन्तर्जातीय तथा स्वेच्छया विवाह का प्रचलन बढ़ा है। **'बधूः'** नामक कथा में न सिर्फ विवाह के वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है, बल्कि आधुनिकवेशधारिणी वधू के चारित्रिक तथा नैतिक गुणों की भी व्याख्या की गई है।

'राजनापितः' कथा वर्तमान शासन व्यवस्था पर कटाक्ष है। पर्वतीय प्रदेशों में जीवनयापन करने वाले लोग निर्धनता, उन्नत कृषि के अभाव, चिकित्सा के अभाव तथा भोजनादि मूलभूत आवश्यकताओं की कमी से जूझते रहते हैं। विकास तथा सुविधाएँ वहाँ न्यूनतम प्रतीत होती हैं। आदिवासियों के विकासकार्यों में समुचित धनराशि का व्यय नहीं किया जाता, अपितु जाँचकर्त्ता जब आते हैं तो अधिकारीगण इस प्रकार का प्रपंच रच देते हैं, जिससे वे सत्यतक पहुँच ही नहीं पाते हैं। क्योंकि ऐसे दुर्गम प्रदेशों में रहने वाले लोग सरल होते हैं तथा भाषा की समस्या भी एक बड़ी चुनौती होती है, जिससे वे अपना पक्ष रख ही नहीं पाते हैं।

संन्यास अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिए ग्रामीण युवक गोपाल अपने कृषिक्षेत्र को, माता–पिता को तथा सुखद ग्रामीण परिवेश का परित्याग कर मायाग्रस्त आश्रम में प्रविष्ट हुआ। जहाँ गेरुए वस्त्र धारण कर तथा मालातिलक आदि का स्वांग भरकर आश्रम में अर्थसंग्रह तथा भोगवाद की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाता था। आश्रम के अध्यक्ष अपने शिष्यों को परधनहरण की शिक्षा देते थे तथा नशीले द्रव्यों की धनी भक्तों के लिए व्यवस्था करने को कहते थे। **'माया'** नामक इस कथा के अंत में कथाकार यह संदेश देते हैं कि ऐसे भोग–विलास के केन्द्रों पर जाकर मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है, अपितु यह तो पतन का गर्त्त है। अतः सायं प्रभु पूजा का मार्ग ही श्रेयस्कर है।

'पापिनी' कथा में ममत्व का चरम प्रदर्शित किया गया है। एक दरिद्र महिला विमला जिसका पति आजीविका हेतु अन्य नगर गया तथा वहाँ से अभी तक नहीं लौटा है। दो दिनों से वह स्त्री तथा उसका पुत्र क्षुधा से व्याकुल हैं। अपने पुत्र के पुनः–पुनः खाद्य की याचना करने पर वह पीड़ित माता अपनी ममता से मजबूर होकर परिस्थितिवश ग्रामदेवी के निकट जाकर प्रसाद लाकर अपने पुत्र को खिलाती है तथा अवशिष्ट अन्न को स्वयं भी खाती है। उसके इस अपराध को पाप सिद्ध कर ग्रामसभा के पुरोहित द्वारा दण्ड स्वरूप उसे पांच वर्षों तक अपने घर में सेवा का कार्य दिया जाता है, जिसे पापकर्म से मुक्ति का मार्ग बताया जाता है।

'ग्रामसभा' नामक कथा राजनीति के वास्तविक रहस्य का उद्‌घाटन करती है। इस कथा में राजवल्लभ नामक श्रेष्ठ खिलाड़ी के माध्यम से यह बताया गया है कि अपनी प्रतिभा के बल पर अपने गाँव का ही नहीं अपितु संपूर्ण देश को गौरवान्वित करने वाले खिलाड़ी, स्वतंत्रतासंग्रामी, भूतपर्वू सैनिक, समाजसेवक अथवा कलाकारों को जब सरकार से सहयोग की आवश्यकता होती है, तो प्रशासन से उन्हें किसी भी प्रकार की वित्तीय सहायता नहीं मिलती है। समय के साथ उनके कार्य भी धूमिल हो जाते हैं।

'दारिद्र्यहरणाय' कथा वर्तमान शासन व्यवस्था पर कुठाराघात है। देश से दरिद्रता दूर करने के लिए जिन समितियों का गठन किया जाता है। वे सरकारी मद पर अपने परिवारजनों सहित विदेश भ्रमण का लाभ लेते हैं। निरीह प्रजा की स्थिति दिनों दिन निकृष्ट होती जाती है। आयोग अथवा समिति द्वारा दिए गए सुझाव भी दरिद्रता उन्मूलन हेतु नहीं होते, अपितु उनकी निर्धनता का उपहास करने वाले प्रतीत होते हैं। इतना होने पर भी समिति के सदस्यों को अत्यधिक धन प्रदान कर पुरस्कृत तथा सम्मानित किया जाता है।

जिस पुजारी को देवालय का कार्यभार तथा मुकुट की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया था उसी ने महादेव के मुकुट की चोरी की। इस पापकर्म को करने के बाद उसकी अन्तरात्मा को ईश्वर का भय सताता रहा। उसका हृदय सदैव अशान्त रहने लगा। अपने पुत्र को बस दिलाने की आकांक्षा के चलते पुजारी को अपने प्राण गँवाने पड़े। **'महादेवस्य मुकुटम्'** नामक कथा हमें शिक्षा देती है कि मनुष्य के द्वारा किये गए अच्छे तथा बुरे कार्यों का परिणाम ईश्वर आवश्यक रूप से प्रदान करते हैं।

वर्तमान समय में भी जातिवाद किस प्रकार समाज पर हावी है। इसका मार्मिक चित्रण करने वाली कथा का नाम है **'हरिकीर्त्तनम्'**। यादव गृह में हरिकीर्तन का आयोजन होता है तथा सर्वत्र इस आयोजन की एवं यादव परिवार की हरिभक्ति की प्रशंसा होती है। संवेदनाओं एवं भावनाओं को मूल्यहीन कर इस कथा में मानवता को ही छला जाता है। हरिकीर्तन में गोभील जो अस्पृश्य हरिजन है उसे भी निमंत्रित किया जाता है। वह अपने क्षुधातुर चार पुत्रों के साथ प्रसाद सेवन की प्रतीक्षा में एक वृक्ष के नीचे संपूर्ण रात्रि ही व्यतीत कर देता है। कथाकार ने इस कथा के माध्यम से अत्यन्त संवेदनशील विषय अस्पृश्यता तथा जातिप्रथा के विषय में चिंतन के स्वर मुखरित किए हैं।

'आदर्शशिक्षकः' कथा में वर्तमान शिक्षण प्रणाली पर व्यंग्य है। वर्तमान समय में शिक्षक अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन को छोड़कर शिक्षाधिकारियों की चापलूसी करते हैं। छात्रों को परीक्षा में अनुचित साधनों के प्रयोग की प्रेरणा देते हैं। गृहपाठ्यदान (tution) पद्धति को प्रोत्साहन

देते हैं। उत्कोचग्रहण करने की शिक्षा को छात्रों के लिए उपयोगी बताते हैं तथा पाँच गाँवों में एक ही शिक्षक की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं क्योंकि सभी शिक्षक नगर में ही रहना चाहते हैं गाँवों में जाना नहीं चाहते। प्रस्तुत कहानी में साक्षात्कार के माध्यम से व्यंग्य रूप में एक शिक्षक को उसके कर्त्तव्यों का भान कराया गया है।

'अद्य' नामक कथा राजा चित्रभानु की पुत्री मन्दाकिनी तथा शतरूप राज्य के युवराज चन्द्रकान्त के प्रेमविवाह की कहानी है। इस कहानी में पर्वतयुद्ध कौशल शिक्षा को ग्रहण करते समय युवराज चन्द्रकान्त अश्व से गिर जाते हैं इस तीव्राघात से वे संज्ञाशून्य हो जाते हैं। उनकी यह अवस्था देखकर राजकन्या व्याकुल हो जाती है क्योंकि सभी उपाय निष्फल प्रतीत होते हैं। अंत में कोई योगिनी राजपुर आकर चंद्रकान्त को स्वस्थ करने के बदले यह शर्त रखती है कि स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर लेने के बाद वह चंद्रकांत से विवाह करेगी और चंद्रकांत को उसी योगिनी के साथ जाना होगा अन्यथा उसकी विद्या निष्फल हो जाएगी। इस प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा में ही इस कथा का अंत हो जाता है। यहाँ पत्नी विमर्श को दिखाया गया है एक ओर तो पति का जीवन है दूसरी ओर जीवनभर का वियोग।

'पत्रम्' कथा में अपने ससुराल में दहेज के लिए प्रताड़ित की जाती हुई वधू का अपनी माता के लिए सबसे छिपकर पत्र लिखने तथा उसमें अपनी मानसिक व्यथा को प्रकट करने का वर्णन है। घर में उसकी स्थिति एक साधारण सेविका की तरह है। प्रतिक्षण अवशिष्ट यौतुक राशि के लिए उसकी भर्त्सना की जाती है। न केवल मानसिक रूप से अपितु शारीरिक रूप से भी उसे प्रताड़ित किया जाता है। न तो उसे अपनी माता के घर भेजा जाता है और न ही वह अपनी पीड़ा को अपने पितृगृह से आए किसी व्यक्ति से कह सकती है। वह अपनी माता के घर में व्यतीत किए गए अपने बचपन के दिनों को भी स्मरण करती है और एक पत्र में सभी मनोभावों को वर्णित कर पत्र के ऊपर संकेत लेखन में केवल माता लिख देती है। यूँ तो दहेज एक सामाजिक अभिशाप है लेकिन आज भी यह विकराल दानव हमारे समाज में मल्लिका जैसी कितनी ही महिलाओं को अपना ग्रास बना रहा है।

कथासप्ततिः कथासंग्रह की अन्तिम कथा है **'ऊँ शान्तिः'**। इस कथा में परोपकारी तथा पर दुःखकातर शेषदेव का वर्णन है, जिसकी पुत्री अविवाहित है, पुत्र बेरोज़गार है, पत्नी अस्वस्थ है तथा आर्थिक स्थिति कमज़ोर है फिर भी वह भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना को अपने हृदय में स्थापित कर, अपने निजी हित के विषय में न सोचकर **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** अर्थात् सभी के कल्याण की मंगलकामना का उद्‌घोष करता है।

3. स्वर्गादपि गरीयसी

'स्वर्गादपि गरीयसी' कवि नायक द्वारा रचित एक कथासंग्रहात्मक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में **बहुपतिका संवादः, साक्षात्कारः, स्वर्गादपि गरीयसी, आमन्त्रणम्, निमित्तमात्रम्, परीक्षा, आदिभाषाप्रसङ्गः** तथा **सेवकः** आदि कथाएँ निबद्ध हैं। इस कथासंग्रह में कहीं वर्तमानकालीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण है तो कहीं समाधान तथा उपाय वर्णित हैं।

ग्रन्थकार की शैली व्यङ्ग्यपरक है। इन कथाओं में चित्रित पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। **बहुपतिका संवाद** कथा में मृत वानरमुख बहुपतियों से यम का कथन वर्णित है।

कवि ने महानगरीय जीवनशैली के प्रति आक्षेप किया है। यहाँ यम–सावित्री की कथा का भी उदाहरण दिया गया है। **स्वर्गादपि गरीयसी** इस कथा में भारतवासियों के विदेशमोह को प्रदर्शित करने के पश्चात् स्वदेश प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। **आमन्त्रणम्** इस कथा में विवाह के अवसर पर दिए जाने वाले उपहार प्रसंग पर कवि ने कटाक्ष किया है। इस में कवि ने आधुनिक समाज में प्रचलित विवाह आदि उत्सवों में उपहार देने की बाध्यता का वर्णन किया है। जन्म से ही उपहार प्रदान व ग्रहण करने की परंपरा का प्रदर्शन किया गया है।

निमित्तमात्रम् इस कथा में यह स्पष्ट किया गया है कि आज भी मठाधीश धर्म के नाम पर आडम्बर करने वाले अपनी झूठी बातों से लोगों को कैसे धोखा देते हैं। इस में ग्रामीण परिवेश तथा धार्मिक प्रसङ्ग में अंधविश्वास आदि कथाओं का चित्रण किया गया है।

आदिभाषाप्रसङ्गः नामक कथा में कवि ने संस्कृत विद्वानों के संस्कृत प्रेम को तथा अंग्रेजी भाषा के मोह को प्रकाशित किया है। **सेवकः** नामक कथा में वर्तमान समय में व्याप्त सेवकों के भ्रष्टाचार, लोभ तथा स्वार्थ आदि भावना को उपस्थित किया गया है। **साक्षात्कारः** कथा समाज व्यवस्था के लिए संस्कार प्रदान करने वाली है। भ्रष्टाचार के भाव को लोगों में प्रदर्शित करके कैसे सेवाक्षेत्र में परीक्षक घूस लेते हैं यह उदाहरण देकर इसे बदलने का आह्वान कवि ने इस कथा में किया है।

इस प्रकार निमित्त मात्र कथा को छोड़कर सभी कथाओं में कवि ने नगरीय जीवन शैली पर कटाक्ष किया है। उसके लिए जागरुक होने का आह्वान किया है।

4. स्वर्गपुरे

'स्वर्गपुरे' नामक व्यङ्ग्य उपन्यास की रचना करके नायक जी ने संस्कृत उपन्यास जगत् में एक अद्वितीय भिन्न धारा का बीज रोपित किया। इस उपन्यास के कथानक की पृष्ठभूमि इस

प्रकार है, जहाँ सर्वत्र कलुषित समाज के कलङ्कित रूप का उद्घाटन करके स्वस्थ तथा स्वच्छ समाज के गठन की चेष्टा की गई है।

इस लोक का कोई वंचक तथा रसिक पुरुष किसी प्रकार से यदि स्वर्गपुरी जाने में समर्थ होता है तो वह वहां पर अपने स्वभाव के अनुकूल कुटिल साम्राज्य का विस्तार करता है। इस स्वाभाविक चित्रण को व्यङ्ग्यकार डॉ. नायक महोदय ने अपने उपन्यास में विविध प्रसंगों में उपस्थापित किया है। उनमें कुछ प्रमुख विषय हैं जैसे– **यात्रा, गोपालग्रामे, स्वर्गरमणी, श्रमिकस्य गृहे, दुर्गतसेवायां वनांचले, वनस्य उन्नतिः, शिक्षालये गुरुरूपेण, चिकित्साक्षेत्रे, शिल्पागारे भिक्षुकनेता, आपणे, क्रीडाग्रामे, कुक्कुरव्यवसाये, साहित्यसम्मेलने पत्रालये तथा यक्षपुरे।**

पूर्वोक्त प्रसंगों की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। कथानायक (स्वयं कथाकार) स्वर्गपुर में भ्रमण करता हुआ किसी स्थान पर एक समूह को देखकर वहाँ जाता है और विचार करता है कि अवश्य ही यहां किसी विशिष्ट देव का कोई विशेष उत्सव चल रहा है। किन्तु पास में जाकर देखता है कि यह प्रसङ्ग एक साहित्य सम्मेलन का है। यदि मृत्युलोक में इस प्रकार के कवि सम्मेलन आयोजित होता तो लेखक वहाँ नहीं जाता क्योंकि साहित्य के विषय में उसकी ऐसी धारणा थी कि साहित्य रचना कर्मकुण्ठित मनुष्यों का मूल्यहीन प्रयास है। 'स्वर्गपुरे' नामक कथाग्रन्थ में कथाकार वनमाली विश्वाल जी की कथा उट्टङ्कित है तथा जो अर्वाचीन संस्कृत साहित्य जगत् में एक ख्यातनाम शिल्पी हैं।

(2) पद्यात्मक रचनाएँ

1. गर्त्तः

'गर्त्त' नामक काव्यसंग्रह में कवि के द्वारा आधुनिक समाज में विभिन्न समस्याओं के गर्त से सामाजिकों को बाहर निकालने की कामना से पद्यों की रचना की गयी है। अतः समाज के स्वभाव तथा विसङ्गतियों का इस काव्य–संग्रह में कटुता से वर्णन किया गया है।

मनुष्य विवश है। जैसी उसकी आशा है वैसे ही उसकी अत्यधिक अभिलाषाएँ भी मर्यादाहीन हैं। किन्तु सामने मार्ग कुटिल है। चिन्तन जटिल है। उसमें घूमना ही उसके जीवन का सारांश बन गया है। स्वप्न भङ्ग की कामना से वह महास्वप्न में डूब जाता है।

इस कविता संग्रह में सर्वत्र कवि का स्वतंत्र चिन्तन है। इस कविता संग्रह में निम्नलिखित कविताएँ संघटित हैं। यथा – (1) धूमकेतुः (2) निद्रां याहि सुते! मम (3) तव कृते (4) पुरस्कारः (5) पुत्तलिका (6) कथं लिखिष्यति (7) प्रलयस्य स्वरः, (8) शाश्वती समाः (9) जिजीविषा (10) महत्त्वस्य धारा, (11) उपदेशः, (12) विवशः, (13) अथ च, (14) शून्यस्थानम्, (15) प्रतीक्षालयः, (16)

युगकेलिः, (17) ईश्वरः, (18) अवोध्यस्य रूपम्, (19) मरणबाला, (20) पदचिह्नम्, (21) प्रयोजनं कथम्, (22) गर्तः, (23) प्रतीक्षा, (24) परिचयः, (25) कविः, (26) झ×झा, (27) एकदा, (28) शिला, (29) श्रेष्ठजीवः, (30) लघुपदचतुष्टयम्, (31) प्रतिबिम्बम्, (32) विपर्ययः, (33) वृद्धः, (34) सभ्यता, (35) विमाता, (36) नारी, (37) आकाशः, (38) दर्पणः, (39) कृषकः, (40) गुरुकुलम्, (41) दायभागः, (45) सम्प्रदायः, (46) भूतपूर्वः, (47) अपमिश्रणम्, (48) तृतीयपुरुषः, (49) बैरागी, (50) अन्धकारः, (51) चातकः, (52) मनः, (53) कविता इत्यादि। वस्तुतः यह ग्रन्थ समाज में सुख को स्थापित करने का एक सकारात्मक प्रयत्न है।

2. शबरी

'शबरी' पद्य काव्य संग्रह है। ये लघुकविताएँ अपने भीतर समकालीन समाज को समेटे हुए हैं। सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में नायक जी की कविताओं में लोक की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। इस काव्य संग्रह में निम्नलिखित कविताओं का संयोजन है– (1) तपस्या (2) स्वाधीनता (3) मातः (4) नवोढा (5) विद्या (6) देवशिशुः (7) दृष्टिः (8) यन्त्रणा (9) अहं क्लान्तः (10) जयन्ती (11) कविः (12) स्मृतिः (13) पृथ्वी एषा (14) शबरी (15) मधुमयम् (16) वामनः (17) मृत्युकविता (18) गुरुः (19) सिंहासनम् (20) मन्दिरं निर्माति राजा (21) परमविश्वरूपम् (22) कंचुकी (23) विद्या (24) निर्जनता (25) विश्वसुन्दरी (26) पूजा (27) छागः (28) द्वा सुपर्णा (29) मेघः (30) भ्रूणः।

जिनमें भारतीय संस्कृति के विविधपक्ष, मानवीय मूल्य, संवेदनाएँ, शिक्षा, स्त्री–विमर्श, पुरुषार्थ–चतुष्टय की सिद्धि, राष्ट्रीय चेतना, पर्यावरणचेतना तथा अर्थव्यवस्था के यथार्थ स्वरूप को उकेरा गया है। विद्या को महिमामण्डित करते हुए कविवर नायक कहते हैं–

अन्धे तमसि जीवने ज्योतीरूपा विद्या
नाशयति अज्ञानान्धकारं
दर्शयति परमकल्याणमार्गम्
असमानतायां गायति
समतायाः महामन्त्रम्
ईशावास्यं विश्वं
त्यागपूर्वक भोगस्य रमणीयां कथां।[22]

मानव के अधिकारों की सुरक्षा कुंजी है विश्वबन्धुत्व की भावना, करुणा, प्रेम और भ्रातृत्व। इन्हीं मानवीय गुणों से अधिक सभ्य मानव विकसित होगा तथा राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। कविवर नायक जी का कथन है–

प्रक्षेपास्त्रमपेक्ष्यते एकदेशे

अपरदेशाय

अनुदिनं विवर्द्धते

सीमायाः विवादः

को वा देशः व्ययीकरोति राजस्वम्

अन्यदेशे सन्त्रासवादाय

रक्तपाताय अथ देश विभाजनाय

वद रे प्रेयसि!

कथमहं वाचयामि

विश्वमिदमेकनीडमस्ति इति।[23]

पर्यावरण चेतना रचनात्मक तथा लोक–कल्याणकारी सोच का ही परिणाम है। संपूर्ण सृष्टि के अस्तित्व को कायम रखने में पर्यावरण की महती भूमिका है क्योंकि पर्यावरण के प्रदूषित होने पर सभी प्राणियों का जीवन संकटग्रस्त हो जाएगा। अतः सामाजिक, प्राकृतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार के पर्यावरण को सुरक्षित रखना हमारा नैतिक कर्त्तव्य एवं धर्म है–

शबरी अद्य दुःखजर्ज्जरिता

मुहुर्मुहुः तदेव चिन्तयति

केन उपहारेण सा स्वागतं करिष्यति,

कं वा पदार्थं पुरस्कृत्य सा अपेक्ष्यमाणा स्यात्

अनन्तकालाय अस्मिन् जराव्याकुलिते कुटीरे।

जनाः किन्तु तथापि तां बोधयन्ति

श्रीरामः आगमिष्यति

विश्वार्त्तिहरणाय जीवकल्याणाय

अस्मिन् मार्गे।[24]

खिन्न शबरी आज चिन्तामग्न है किस उपहार से वह श्रीराम का स्वागत करेगी। संपूर्ण वन प्रदेश शून्य है जो वृक्ष पहले पूजे जाते थे, वे स्वार्थी नगरवासियों द्वारा उखाड़े गए हैं अथवा काटे गए हैं। शबरी ने विचार किया कि वह मधुर जल से ही प्रभु राम के चित्त को संतुष्ट कर देगी चरण प्रक्षालन करेगी किन्तु कूप तथा नदियाँ भी प्रदूषित हो चुकी हैं। जलचर भी निर्भय होकर क्रीड़ा नहीं कर रहे हैं। पथिक भी इन स्रोतों का जल अब नहीं पीते हैं। कर्मकाण्ड करने वाले ऋषि–मुनि भी इस जल में स्नान नहीं कर रहे हैं।

शबरी काव्य संग्रह में बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी कविवर नायक ने विभिन्न समसामयिक विषयों की ओर पाठकों का ध्यानाकृष्ट किया है। कोई भी विषय उनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा है। प्रस्तुत काव्य में परम्परा तथा आधुनिकता का मणिकांचन संयोग परिलक्षित होता है।

3. दारिद्र्यशतकम्

कवि नायक का तृतीय पद्य काव्य दारिद्र्यशतकम् है। इस काव्य में कवि प्राचीन काल के मानव के निष्पापरूप की तथा वर्तमान समय में पापरूप की तुलना करते हुए कुमानवों को उपदेश देता है। इस काव्य में 100 की संख्या में लघुकविताएँ प्रकाशित की गई हैं। प्रस्तुत काव्य में कहीं पर भी भावों, विचारों, शब्दों, छन्दों अथवा अलंकारों की दरिद्रता दिखाई नहीं देती है। जिस प्रकार क्षुधातुर व्यक्ति का दूसरा नाम दरिद्र है, उसी प्रकार यह कर्मण्य का अन्यतम हस्ताक्षर तथा लोक का सफल प्रतिनिधि है। किन्तु यह दरिद्र युद्धभूमि में रक्तपताका धारण करके रक्तबीज के सेनानी के समान अवतरित नहीं होता है। अपितु यह अपने परिवार के दुःख, कष्ट तथा सैंकड़ों लांछन दूर करने में प्रयत्नशील होता है, पूर्वजन्म के संपूर्ण दुष्कर्म नष्ट करने के लिए प्रयास करता है। यहाँ मार्क्सवाद नहीं अपितु कर्मवाद है। 'चरैवेति..........चरैवेति' दर्शन है, इस काव्य में सर्वप्रथम कवि ने जठराग्नि में विशुद्ध दरिद्रता की सत्यता प्रतिपादित कर अन्यजनों के मिथ्या आचरण को प्रमाणित किया है।

मिथ्या सर्वे अवताराः, स्वामि–बाबागणः
जगन्मिथ्या, ब्रह्ममिथ्या, मिथ्या अवताराः,
मिथ्या शास्त्रं, मिथ्या प्रभुगृहं,
मिथ्या प्रवचनं, सखि! मिथ्या प्रभुवाणी
मिथ्या भक्तिरात्मसमर्पणम्............।
क्षुधार्तस्य क्षुधां हर्तुं
दुःखिजनमुखे हासरेखां
स्फोटयितुं योऽस्ति असमर्थः।
स मे प्रभुः कथं वा भवेत्,
कथं तस्मिन् नतजानुः
भविष्यति अयं दीनो हीनः।
दरिद्रस्य कोऽपि नास्ति,
नास्ति प्रिया, परिजनः, आत्मीयः, सोदरो,
नास्ति भाग्यं, नास्ति भगवान्,
तस्य कृते स तु एक एव,

पिबति आत्मनो रक्तं, चर्वति आत्मानो मांसं
वहति निजकराभ्यां निजं मृतं देहम्।।[25]

वस्तुतः राजपोषित प्राचीन संस्कृत साहित्य में मार्क्सवाद का प्रभाव है अथवा नहीं यह कहना कष्टकारक है। किन्तु वैदिक, प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत कवि लौकिक संवेदनाओं से नितान्त परिचित हैं। अतः दारिद्र्यशतकम् काव्य की उदाहरणस्वरूप दी गई इस कविता से कवि के करुणा से आर्द्र हृदय का अनुमान लगाया जा सकता है। अतः कवि नायक का 'दारिद्र्यशतकम्' काव्य जीवन की वास्तविक अनुभूति है यह कथन सर्वथा उपयुक्त ही है।

(3) पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ

डॉ. प्रमोद कुमार नायक की विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की सूची–

(क) ''सुश्री'' संस्कृत पत्रिका में प्रकाशित रम्य कथाएं। संपादक– डॉ. विवेकानन्द साहु। प्रकाशक– वागीश्वरी संस्कृत महाविद्यालय, शाली कोठा, जलेश्वर, बालेश्वर, ओडिशा।

प्रकाशित रचना		**अंक**
1. खलुकोलाहलः	(रम्यकथा)	प्रथम संख्या
2. शुभागमनम्	(रम्यकथा)	तृतीय संख्या
3. तीर्थाटनम्	(रम्यकथा)	चतुर्थ संख्या
4. प्रत्यावर्त्तनम्	(रम्यकथा)	पंचम संख्या
5. अलोडा वार्त्ता	(रम्यकथा)	षष्ठ संख्या
6. माता आगच्छति	(रम्यकथा)	सप्तम संख्या
7. आदिभाषासम्मेलनम्	(रम्यकथा)	अष्टम संख्या
8. शोधप्रबन्धः	(रम्यकथा)	नवम संख्या
9. व्रतचारिणी सा	(रम्यकथा)	एकादश संख्या
10. प्राक् शिक्षाशास्त्रीपरीक्षानिमित्तम्	(रम्यकथा)	द्वादश संख्या
11. प्रियानुप्रसादनव्रतकथा	(रम्यकथा)	चतुर्दश संख्या
12. पत्रप्राप्तिपथे	(रम्यकथा)	अष्टादश संख्या

(ख) संस्कृत प्रतिभा (त्रैमासिकी पत्रिका) में प्रकाशित रचनाएं । प्रकाशक– साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली–110001

प्रकाशित रचना **अंक/उन्मेष**

(i) संघं शरणं गच्छामि (कविता) 54 उन्मेष, (Jan-March-2015)

(ii) कदा भविष्यति प्राचीरच्छेदः(कविता) 54 उन्मेष, (Jan-March-2015)

(iii) को दरिद्रः (कविता) 54 उन्मेष, (Jan-March-2015)

(iv) अपराह्ने प्रत्यावर्तितः (कविता) 54 उन्मेष, (Jan-March-2015)

(v) दरिद्रयज्ञः(कविता) 54 उन्मेष, (Jan-March-2015)

(vi) सुखं हि मिलिते तन्त्रे, (व्यंग्य कथा) 61 उन्मेष, (Octo-Dec. 2016)

(ग) कथासरित् (षाण्मासिकी पत्रिका) में प्रकाशित रचनाएं । प्रकाशक– कथाभारती, 57, वसन्त विहार, झूंसी, इलाहाबाद–211019

प्रकाशित कथा/उपन्यास	**अंक/तरंगः**
(i) स्वर्गपुरी (धारावाहिक व्यंग्य उपन्यास)	अंक–4, अक्टूबर 2005 से मार्च 2006
(ii) स्वर्गपुरी (धारावाहिक व्यंग्य उपन्यास)	अंक–6, अक्टूबर 2007 से मार्च 2008
(iii) स्वर्गपुरी (धारावाहिक व्यंग्य उपन्यास)	अंक–07, अप्रेल2008 से सितम्बर 2008
(iv) पुरस्कारे सदा मतिः	अंक– 225, अक्टूबर 2015 से मार्च 2016
(v) चातुर्यं कीर्तिकारकम्,(व्यंग्य कथा),	अंक–23, अप्रेल 2016 से सेप्टेम्बर 2016
(vi) वृक्षमूले हरिः शेते अंक–24 (व्यंग्य कथा)	अंक–24,अक्टूबर 2016 से मार्च 2017
(vii) भिक्षायां चैव चैव च (व्यंग्य कथा)	अक्टूबर 2016 से मार्च 2017

(घ) पद्यबन्धा (षाण्मासिकी कविता पत्रिका) में प्रकाशित रचनाएँ। प्रकाशक–

वीणापाणि संस्कृत समिति, भोपाल, म.प्र.।

प्रकाशित रचना **अंक/स्पन्द**

(i) दारिद्र्यम् (कविता), 2–3 स्पन्दः, अक्टूबर 2012 से अप्रेल 2013

(ii) दारिद्र्यलक्ष्मीः(कविता), 4–5 स्पन्दः, अक्टूबर 2013 से अप्रेल 2014

♦♦♦♦

सन्दर्भ

1. काव्यप्रकाश, 1/1
2. साहित्यदर्पण प्रथमपरिच्छेदः, पृ.सं 4
3. ध्वन्यालोकः तृतीय उद्योतः, पृ.सं.–55
4. लह.दश.–ज.ल. 4
5. ना.शा. 1.114
6. गर्त्तः – कविः, पृ.सं.–35
7. उवाच कण्डुकल्याणः – अहो राजधानी, पृ.सं.–18
8. उवाच कण्डुकल्याणः – तृतीयनयनम्, पृ.सं.–27
9. उवाच कण्डुकल्याणः – वाए डाडि–वाए, पृ.सं.–37
10. उवाच कण्डुकल्याणः – नेत्रीरूपेण संस्थिता, पृ.सं.–48
11. उवाच कण्डुकल्याणः – कीलकानन्दः, पृ.सं.–62
12. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रतियोगिता, पृ.सं.–72
13. कथासप्ततिः – अस्पृश्यः, पृ.सं.–72
14. कथासप्ततिः – रूपाजीवा, पृ.सं.–4
15. शबरी–कविः, पृ.सं.–23
16. कथासप्ततिः – ममता, पृ.सं.–10
17. कथासप्ततिः – उपहारः, पृ.सं.–12
18. कथासप्ततिः – धनार्थी, पृ.सं.–13
19. कथासप्ततिः – साधना, पृ.सं.–20
20. कथासप्ततिः – स्वप्नः, पृ.सं.–22
21. कथासप्ततिः – असम्भवः, पृ.सं.–33
22. शबरी – विद्या, पृ.सं.–60
23. शबरी – मधुमयम्, पृ.सं.–33
24. शबरी – शबरी, पृ.सं.–31
25. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–67

द्वितीय अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध

एका जातिः, मनुष्यस्य जातिः।

एका सृष्टिरीश्वरस्य सृष्टिः

एको धर्मो मानवीयधर्मः,

एकं शास्त्रमीश्वस्य वाक्यम्,

समानो मन्त्रः समितिः समानी.....।

द्वितीय अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध

(क) मानवीय मूल्यबोध की परिभाषा एवं स्रोत

साहित्य सदैव ही अपने युग की अभिव्यक्ति करने वाला होता है। रचनाकार अपनी रचनाओं में अपने युगीन परिवेश तथा परम्परा का समन्वय करके जीवन मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास करता है। मूल्यबोध का मानव जीवन में विशिष्ट स्थान है। जिसका कार्य व्यक्तियों को सामाजिक जीवन के लिए आदर्श प्रस्तुत करना है। वस्तुतः मूल्य एक मानक है, जिसके आधार पर व्यक्ति सामाजिक व्यवहार की श्रेष्ठता का अनुमान लगाता है। मूल्य का जन्म मानव मस्तिष्क में होता है, किन्तु उसका मूल्यांकन सामाजिक आधार पर होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसके मूल्यबोध को समाज प्रभावित करता है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व परस्पर भिन्न होता है, फिर भी उनमें कुछ तत्त्व सामान्य रूप से पाए जाते हैं, जो उस समाज के सदस्यों के मूल्यों का निर्धारण करते हैं। मूल्यों का संगठन ही समाज कहलाता है। समाज एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य अपने सभी क्रियाकलापों तथा मानव व्यवहार के नियंत्रण को परिमार्जित करता है। मूल्य के बिना तो मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, क्योंकि यदि जीवन में मूल्य न हों तो चहुँ ओर अव्यवस्था व्याप्त हो जाएगी और हम पुनः आदिम अवस्था को प्राप्त हो जाएंगे।

मनुष्य की सामाजिक संरचना उसके विचार, स्वभाव, कर्म, आचरण तथा जीवन पद्धति आदि के अनुसार ही होती है। जीवन मूल्यों का गहराई से महत्त्व समझे बिना कोई भी समाज के विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता है। मूल्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, अतः इसे परिभाषित करना भी कठिन कार्य है। विद्वानों ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इस पर विचार किया है। किसी ने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाया, तो किसी ने सामाजिक कोई भोगवादी पक्ष का समर्थक रहा, तो किसी ने इसे नैतिकता की दृष्टि से देखा, किसी ने अपनी दृष्टि आर्थिक रखी तो किसी ने रहस्यवादी। मानवीय मूल्यबोध को हम निम्नलिखित परिभाषाओं के सन्दर्भ में जानने का प्रयास करते हैं–

डॉ. देवेन्द्र नाथ त्रिपाठी के अनुसार –

"जहाँ मूल्य नहीं वहाँ मानवीयता संकटग्रस्त होगी"[1]

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार मूल्य की परिभाषा इस प्रकार है–

"जो जीवन को अस्तित्व और गति प्रदान करे वही मूल्य है।"[2]

जोसेफ एच. फीचर के अनुसार –

"मूल्य वे मानदंड हैं जो संपूर्ण संस्कृति और समाज के अभिप्राय को सार्थकता प्रदान करता है।"[3]

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख मानववादी चिंतक प्रो. शिलर ने मानववाद की स्थापना करते हुए कहा कि– **"मानवीय अनुभव ही इस संसार में चिन्तन का विषय है और मानव ही समस्त मूल्यों का मापदंड है।"[4]**

इसी सन्दर्भ में अपनी पुस्तक गुरु गोविन्द सिंह के काव्य में जातीय संघर्ष में ममता गुप्ता जी लिखती हैं–

"जिस समाज के मूल्य मनुष्य के आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास के विविध सोपानों को इंगित करके उसे प्रगति की ओर अग्रसर करने में बनते हैं, उस समाज एवं राष्ट्र की गणना विश्व के महानतम सुसंस्कृत राष्ट्रों में की जाती है। दूसरे शब्दों में सामाजिक मूल्य किसी समाज के प्रचलित वे आदर्श और लक्ष्य होते हैं, जिनके प्रति समाज के सदस्य श्रद्धा व्यक्त करते हैं और जिन्हें सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।"[5]

डॉ. राधाकमल मुखर्जी के मतानुसार –

"मूल्य समाज स्वीकृत इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं जिनका आन्तरीकरण समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो व्यक्तिपरक अधिमान्यताएँ, मानदण्ड तथा अभिलाषाएँ बन जाती है।"[6]

इन सभी परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि मानव तथा मानवीय मूल्य सर्वोपरि हैं मानवमूल्य एक ऐसी आचरण संहिता या सद्गुण समूह है जिसे अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से आत्मसात् कर व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का विकास करता है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है अर्थात् व्यक्ति अपने जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि करता है।

मूल्यों को मानव जीवन से अलग रखकर नहीं देखा जा सकता है क्योंकि मूल्य मानव जीवन से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। जब से समाज अस्तित्त्व में आया है, मूल्यों का भी आविर्भाव तभी से माना जाता है। मानव मूल्यों में व्यक्तिगत मूल्य, सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, राजनैतिक

मूल्य, दार्शनिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य तथा सौन्दर्यपरक मूल्यों की गणना की जाती है।

मूल्य के उद्‌गम तथा स्रोत

आदिकाल से यह विवाद का प्रश्न रहा है कि मानवीय मूल्य का स्रोत या आधार मानव या मानवोपरि सत्ता है। इसमें मूल्य के विचार, मत तथा अभिप्राय को भिन्न–भिन्न माना गया। मध्यकाल के आते–आते धर्म समाज की नियामक शक्ति बना। समाज के लोगों में ईश्वरीय भावना बढ़ी और ईश्वर को ही मूल्यों का आधार माना जाने लगा और मनुष्य को तुच्छ प्राणी कहा गया।

कालान्तर में ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकृत किया जाने लगा इसके पीछे डार्विन, फ्रायड, कार्लमार्क्स जैसे क्रांतिकारी विचार तथा युग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्तरदायी रहा तथा तदयुगीन विचारक नीत्से भी ज़िम्मेदार रहे।

नीत्से के अनुसार –

"मनुष्य जो आज है, वह निरर्थक है, वह मूल्यों का उद्‌गम स्रोत नहीं है, वह तो एक सेतु मात्र है पिछली जीवसृष्टि और आगे आने वाले महामानव (सुपरमैन) के बीच का सेतु है।"[7]

"'संस्कृत व्याकरण' के आधार पर मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति मिलती है कि मूलेन समो मूल्यः। जिस का अर्थ है, मूल के समान।"[8]

'अज्ञेय' के शब्दों में **"हम मानते हैं कि सब प्रतिमानों का सब मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक है। वही उसे सदासद का ज्ञान देता है, फिर उस सत् और असत् का क्षेत्र चाहे जो हो।"**[9]

"इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन इथिक्स" में मानव मूल्य पर विस्तार से चर्चा की गई है। उसके अनुसार **"सभी मूल्यों में एक प्रकार की व्यक्ति–परकता, अथवा ज्यादा अच्छा हो, उसे व्यक्तित्त्व से संबद्धता कहा जाए, अन्तर्निहित होती है।"**[10]

डॉ. मुखर्जी के अनुसार –

"मूल्यों के उद्‌गम स्रोत भिन्न–भिन्न हो सकते हैं, वे मूल्यों का संबंध जीवन, परिवेश, समाज, संस्कृत से तो मानते ही हैं, साथ ही वे इन्हें जीवन के आदर्शों और आध्यात्मिक चिंतन से भी जोड़ते हैं।"[11]

मूल्यबोध को समाज भी प्रभावित करता है। अतः समाजीकरण की प्रक्रिया मूल्य निर्माण में अहं भूमिका का निर्वाह करती है। इसके साथ ही साथ धर्म, आर्थिक संस्थाएँ, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवेश तथा मानव की आवश्यकताएँ मूल्य निर्माण में अपना योगदान देती हैं।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और मूल्यों में सहजात संबंध है अतः आधुनिकीकरण के वशीभूत होकर मूल्य स्थिर नहीं रह पाते। किन्तु जीवन कभी मूल्यों के बिना नहीं रह सकता। आज पूरा विश्व इस धारणा को लेकर विचारमग्न है। इसलिए मूल्यों को सापेक्षताओं की दृष्टि से देखा जाता है, निरपेक्ष भाव से नहीं। अतः मानव विवेक को लगातार सजग बनाए रखना आवश्यक है।

सामाजिक मानवीय मूल्यबोध

यदि हम सामाजिक जीवन पर दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि हमारे खाने–पीने, उठने, नृत्य करने, वस्त्र पहनने, हँसने–रोने, सोने में, गाने में तथा लिखने–बोलने में सामाजिक प्रतिमान पाए जाते हैं, यही हमारे व्यवहार के पथ–प्रदर्शक होते हैं। सामाजिक संबंधों में व्यवस्था तथा स्थिरता भी इन्हीं आदर्शों के कारण व्याप्त है। सामाजिक मूल्य ऐसे मानक हैं जिनके द्वारा किसी वस्तु, व्यवहार, साधन अथवा गुण को सही या गलत अथवा उचित या अनुचित ठहराया जाता है।

मानव जीवन की सर्वप्रथम पाठशाला उसका परिवार होती है। परिवार के बाद विद्यालय तथा विद्यालय के बाद समाज। समाज में व्यवस्था कायम रखने के लिए मानव ने अनेक प्रथाओं, रीति–रिवाज़ों, लोकाचार–रूढ़ियों, परंपराओं तथा कानून का निर्माण किया। विभिन्न समाजों के आदर्श तथा आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती हैं। अतः सामाजिक मूल्यों के मापदण्ड भी अलग–अलग ही होते हैं। ये मूल्य ही मानव मस्तिष्क को विशेष दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, जिन पर चलकर केवल व्यक्ति और समाज ही नहीं अपितु राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है।

डॉ. प्रमोद कुमार नायक की कृतियों में सामाजिक मूल्यों की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है, जिन का विमर्श हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं।

(ख) सामाजिक समरसता

समाज में व्याप्त सभी प्रकार की समस्याओं को समाप्त कर सभी में प्रेम भावना आपसी सौहार्द्र उत्पन्न करना ही सामाजिक समरसता है। समाज के लोगों के बीच जाति, धर्म या अन्य किसी भी प्रकार के भेदभाव को समाप्त कर एकात्मभाव की स्थापना ही सामाजिक समरसता का उद्देश्य है, ताकि देश विकास और उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके। यह कार्य सामूहिक प्रयासों के द्वारा ही संभव है यह एक सामाजिक आन्दोलन है और इस आन्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी का पूर्णरूपेण निर्वाह किया है डॉ. प्रमोद कुमार नायक ने। नायक जी ने समाज के विभिन्न रूपों तथा घटनाओं को अपनी रचनाओं में सम्मिलित कर सामाजिक समरसता की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है, जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

भारतीय संस्कृति में ज्येष्ठ भ्राता को पितातुल्य समझा जाता है, पिता की मृत्यु के बाद शेष उत्तरदायित्वों का निर्वाह घर का बड़ा पुत्र ही करता है।

"दिवङ्गते पितरि बहुकष्टेन अग्रजः नवघनः अनुजं श्यामसुन्दरं पालितवान्। अवशिष्टं कृषिक्षेत्रं विक्रीय परगृहे श्रमं च कृत्वा तं विद्यालये महाविद्यालये च पाठितवान्।"[12]

पिता की मृत्यु हो जाने के बाद अत्यधिक कष्टपूर्वक बड़े भाई नवघन ने अपने छोटे भाई श्यामसुन्दर को पाला। अवशिष्ट कृषिभूमि को बेचकर तथा दूसरे के घर में परिश्रम करके उसने अपने भाई को पढ़ाया। वर्तमान समय में जब एक भाई दूसरे भाई का गला काटने तथा अपना हित साधने में लगा है, ऐसी स्थिति में बड़े भाई का अपने छोटे भाई के प्रति अगाध प्रेम एवं त्याग हमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का स्मरण करवाता है।

कथाकार ने एक ओर तो इस कथा में आदर्श भ्रातृप्रेम की छाप छोड़ी है, दूसरी ओर इस कहानी में पाठकों का ध्यान इस ओर भी केन्द्रित किया है कि जब श्यामसुन्दर शिक्षा प्राप्त कर अपनी योग्यता के अनुसार वृत्ति प्राप्त कर लेता है, तो स्वेच्छा से विवाह कर अपने परिवार में व्यस्त हो जाता है और नवघन जिसने अपना सब कुछ अपने छोटे भाई के लिए दाव पर लगा दिया उसका परिवार आर्थिक तंगी से गुजर रहा है। अंततः बड़े भाई की मृत्यु हो जाती है। श्यामसुन्दर लोकलाज से तथा अत्यधिक आडम्बर से अन्त्येष्टि क्रिया तथा भोज को सम्पन्न करता है ग्रामवासी विमुग्ध होकर इसे आदर्श भ्रातृप्रेम की संज्ञा देते हैं।

भारतीय संस्कृति में **'वसुधैवकुटुम्बकम्'** के भाव सन्निहित हैं परिवार, समाज तथा राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना तथा आपस में प्रेमभावना से मिलजुल कर रहना हमारी संस्कृति का मुख्य ध्येय है।

प्रेम एक सुखद अनुभूति है, यह प्रेम ही है जो हमें परस्पर बाँधे हुए है सन्तान को माता–पिता से, पति को पत्नी से, गुरु को शिष्य से सेवक को स्वामी से और मनुष्य को मनुष्य से। प्रेम ही जीवन की धुरी है सृष्टि के सभी प्राणियों में प्रेम का ही वास है। लेकिन घर की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है और पति असाध्य रोग से पीड़ित है तथा वृद्ध श्वसुर व्याकुल होकर शय्या पर स्थित करुण क्रन्दर कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में पत्नी का अतिशय प्रेम तथा त्याग ही इस कथा का वास्तविक मर्म हैं–

"एकदा प्रातः काले पितृगृहं गच्छामि इति पतिमुक्त्वा पत्नी मुम्बईनगरीं गच्छति। तत्र कानिचन दिनानि निवसन्ती सा स्वकीयमूत्राश्रयं (किडिन्) विक्रीणाति। आनन्देन धनमानीय स्वस्य गृहमागच्छति।"[13]

अपने पति के इलाज के लिए वह पत्नी अपनी एक किडनी बेच देती है, किन्तु जब वह पुनः घर लौटती है तो अपने पति द्वारा लिखा गया पत्र प्राप्त करती है, जिसमें वह लिखता है कि–

"सर्वेषां दुःखस्य कारणरूपेण अवस्थातुं न इच्छामि। यदि सम्भवः स्यात्, तर्हि आगामिनि जन्मनि अवश्यं मिलिष्यामः।"[14]

आगामी जन्म में पुनः मिलन की कामना के साथ वह पति आत्महत्या कर लेता है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आज समाज में जहाँ चरित्रहीनता तथा विवाहविच्छेद जैसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं, वहीं यह कहानी पति–पत्नी के अलौकिक प्रेम को प्रदर्शित कर समाज को प्रेरणा देती है।

अशुभपुत्र कथा में कथाकार ने विमाता के पुत्रप्रेम को प्रदर्शित कर समाज में एक आदर्श प्रस्तुत किया है। अधिकांशतः समाज में विमाता को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि सौतेली माँ सन्तान से सदैव दुर्व्यवहार ही करती है, किन्तु शुचिस्मिता नामक विमाता ने अपने पति की पहली पत्नी से उत्पन्न सन्तान को अत्यधिक स्नेह दिया तथा पति के संदेह व ताड़ना को भी सहन किया।

पति जितेन्द्र ने अपनी पहली पत्नी मदलसा की मृत्यु का कारण नवजात शिशु देवप्रिय को माना। इस हेतु यह पुत्र अशुभ है, अतः उसका त्याग कर दिया।

"पितुः दृष्ट्या अशुभपुत्रत्वेन परित्यक्तः पुत्रः किं मात्राऽपि त्यक्ता स्यात्। जन्मकालात् मातुः दुग्धपानाय अक्षमः एषः देवप्रियः यदा मम स्नेहवद्धः भवति, तदानीं भवान् अत्र बाधकः जातः।"[15]

शुचिस्मिता की ममता तथा वात्सल्य भाव ने समाज में विमाता की सकारात्मक छवि को उकेर कर गरिमा प्रदान की है। क्योंकि माता सिर्फ माता होती है। शास्त्रों में भी कहा गया है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान सर्वोपरि रहा है। वास्तविक अर्थों में शिक्षक ही राष्ट्र का निर्माता है किन्तु बदलते परिवेश में और आधुनिकता की दौड़ में सभी डॉक्टर या इंजीनियर बनकर अधिकाधिक धनार्जन करना चाहते हैं शिक्षक बनकर देश की सेवा करना कोई नहीं चाहता। आज के युग में शिक्षक को वह दर्ज़ा प्राप्त नहीं है, उसके सम्मान में उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है।

'एकस्य शिक्षकस्य समाजे को वा परिचयः विद्यते।'[16]

श्रेष्ठी रूपकुमार अपने बचपन के मित्र केन्द्रीयमन्त्री से जब अपने जामाताओं का परिचय करवाता है, तो कनिष्ठ जामाता जो कि चिकित्सक है तथा ज्येष्ठ जामाता जो कि यान्त्रिक है, उनका तो परिचय करवाता है किन्तु मध्यम जामाता जो कि शिक्षक है उसे घर से बाहर निकाल देता है।

प्रस्तुत कथा समाज में शिक्षकों के सम्मान की पुनः स्थापना करती है क्योंकि शिक्षक अपने परम पवित्र कार्य से समाज को दिशा देता है और राष्ट्र उन्नति को प्राप्त करता है।

'अन्तिमसुयोगः' कथा में विधवा महिला की दयनीय दशा का वर्णन है। पति की मृत्यु के बाद उदरपोषण भी सुलभ नहीं होता। अल्पशिक्षित वह सेविका बन जाती है, किन्तु **''दारिद्र्यमेव सर्वं मरणम्''** अतः धनाभाव में वह अपने पुत्र के लिए भी उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न नहीं देख पाती क्योंकि गृह स्वामी उसके पुत्र को भी अपने घर का सेवक ही बना देता है। रूपश्री के विरोध करने पर चोरी के अपराध में कारागार भेजने का डर दिखाता है।

प्रस्तुत कथा समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का संदेश देती है। विधवा स्त्रियों की दयनीय अवस्था का तथा शिक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन करती है। घरेलू भृत्यों पर गृहस्वामियों के अन्याय को भी यहाँ उजागर किया गया है कि वे किस प्रकार नौकरों का शोषण करते हैं तथा धन के बल पर न्याय–व्यवस्था को भी खरीद सकते हैं।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।[17]

स्वतंत्रता सबसे बड़ा सुख है और परतंत्रता सबसे बड़ा दुःख। आज भले ही हम स्वतंत्र हैं लेकिन एक देश का दूसरे देश से शत्रुता का संबंध है सीमाओं पर आरक्षियों को तैनात कर दिया गया है मारने के आदेश दिए जा चुके हैं दूसरी ओर ये प्रकृति सभी के साथ समानता का व्यवहार करती है, किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करती। पशु–पक्षी कहीं भी आ जा सकते हैं। उनके लिए कोई नियम–कानून नहीं है। वे स्वतंत्र हैं देश, काल, ईर्ष्या तथा क्रोध इन सभी की सीमाओं से परे हैं। प्रकृति के माध्यम से वैर भाव भुलाकर प्रेमपूर्वक बन्धुता से रहने की शिक्षा दी गई है, संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए यह परम आवश्यक है।

'प्रभावः' इस कथा में कथाकार ने ईमानदारी मानवीय मूल्य की चर्चा की है। अनुचित उपायों से चाहे जितनी सम्पत्ति अर्जित कर ली जाए परन्तु आत्मसंतोष की प्राप्ति नहीं होती और सत्यता तथा ईमानदारी से प्राप्त धन से व्यक्ति सुख, शान्ति तथा संतोष को प्राप्त करता है।

"परद्रव्यापहरणस्य अपेक्षया अधिकं पापम् इह जगति नास्ति।"[18]

दो भाईयों की इस कथा में देवेन्द्र की पत्नी अपने अभावों की पूर्णता हेतु अपने पति को अनुचित उपाय अपनाकर धनार्जन की सलाह देती है और दूसरे भाई समरेन्द्र की पत्नी सत्यता के मार्ग पर चलकर जीवनयापन करने का संदेश देकर अपने पति को पापकर्म करने से रोकती है। अतः सज्जनों की संगति सदैव सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाली होती है और दुष्टों की संगति से मनुष्य का पतन होता है। नीतिवेत्ताओं ने कहा है–

"जाड्यं धियो हरिति सिंचति वाचि सत्यं,

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,

सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।"[19]

गाँव के लोग मूलरूप से सरलहृदय होते हैं तथा एक–दूसरे के दुःख में समभागी होते हैं, किन्तु रोज़गार के अभाव में वे शहरों की ओर पलायन करते हैं। शहरों की भागदौड़ व चकाचौंध भरे जीवन में वे उलझ जाते हैं तथा अपने परिवार, गाँव, माता–पिता तक की अवहेलना कर देते हैं। उन्हें शहरी जीवन ही रास आता है।

पलायनवादिता हमारे देश में दिनोंदिन बढ़ रही एक समस्या है। उच्च जीवन स्तर तथा आकर्षक वेतन के लालच में हमारे देश की प्रतिभा विदेशों की ओर पलायन कर रही है।

भारतीय संस्कृति में माता–पिता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है किन्तु वर्तमान अर्थ परायण युग में धन को ही सर्वोत्कृष्ट दर्ज़ा दिया गया है।

"तस्य अनादरत्वात् ग्रामजनैः सेवितः वृद्धः पिता यदा मृत्युं प्राप्तवान्, तदानीम् अपि पितुः अन्तिमसंस्कारार्थं नागतवान् असौ।"[20]

पिता की मृत्यु पर भी अन्तिम संस्कार के लिए पुत्र का ना आना संवेदनाओं, मूल्यों तथा सामाजिक संबंधों पर कुठाराघात है।

वर्तमान समाज में योग्यता का आंकलन व्यक्ति की धन–सम्पदा तथा पद के आधार पर किया जाता है। प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं है, वह किसी कोने में दम तोड़ती नज़र आती है। सामाजिक प्रतिष्ठा के चलते मूल्यहीन भी बहुमूल्य हो जाता है और भीड़ भी इसी भेड़चाल का अंधानुकरण करती है।

चित्रकारः इस कथा में वृद्ध चित्रकार की अभूतपूर्व प्रतिभा को उचित सम्मान नहीं मिलता और वह अपने चित्रों को अग्नि को समर्पित कर देता है तथा मन्त्रिपुत्र के सामान्य भी चित्र प्रदर्शनी में सभी को मोहित कर देते है तथा वह चित्रकार सम्मान को भी प्राप्त करता है।

कथाकार ने सामाजिक विषमताओं पर करारा व्यङ्ग्य किया है तथा यह कथा हमें संदेश देती है कि समाज में व्यक्ति का स्थान उसके अभूतपूर्व कार्य ही तय करते हैं और प्रतिभा किसी वंश, कुल, जाति अथवा पद की मोहताज नहीं अपितु यह ईश्वर प्रदत्त गुण है, जो किसी को भी प्राप्त हो सकता है। अतः सामाजिक समानता की पक्षधर यह कथा हमें मिलजुल कर कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है।

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्येद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।[21]

चरित्र की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए क्योंकि यदि एक बार चरित्र का पतन हो जाता है तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। प्रस्तुत कथा **'परकीया'** में यही बताया गया है कि रतिकान्त ने अपनी रुग्ण पत्नी तथा दोनों पुत्रों को छोड़कर परकीया स्त्री शशिकला जो उसके कार्यालय में काम करती थी उससे विवाह किया। किन्तु कुछ समय बीत जाने पर परकीया स्त्री शशिकला परपुरुषगामिनी हो गई तथा रतिकान्त को अपनी भूल पर पश्चाताप् हुआ।

आज महिला–पुरुष समानता का युग है। महिलाएँ भी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं। ऐसी परिस्थिति में अपने चरित्र की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए क्योंकि भारतीय संस्कृति में विवाह को एक संस्कार के रूप में स्वीकृत किया गया है। पुरुष हो अथवा स्त्री दोनों की ईमानदारी ही इस संबंध की नींव है अन्यथा विवाह–विच्छेद तथा विघटित परिवार जैसी सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाएगी तथा कुसमायोजित युवा–पीढ़ी पथभ्रष्ट तथा संस्कारविहीन हो जाएगी।

समाज में प्रत्येक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति भिन्न होती है, सभी अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करते हैं। इस कार्य में अनुचित साधनों को अपनाने में भी नहीं चूकते हैं। आज का युवा परंपरावादी नहीं है। पुरानी मान्यताओं, संस्कारों तथा रीति–रिवाजों को वह अनुपयोगी तथा ढकोसला समझता है। आडम्बर युक्त जीवनशैली को अपनाने की होड़ में पूर्व पुरुषों (पूर्वजों) की कृषि–भूमि का भी विक्रय कर देता है। एक पिता अपने पुत्र को अनुचित कर्मों से रोकने के लिए जो उपाय करता है वह वास्तव में सामाजिक संबंधों को तार–तार कर देने के समान है।

वंशस्य अतीतगौरवं विहाय, स्मृतिराशिं विनश्य को वा आभिजात्यसम्पन्नः स्यात् जगति? भूमिपतितेन लौहदण्डेन हन्ति स्वकीयं पुत्रम्।[22]

पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण तथा विलासितापूर्ण जीवन जीने की चाह ने कुलीनता के मायने ही बदल दिए हैं। हम अपने प्रतिवेशियों और संबंधियों से आगे बढ़ने तथा आडम्बरयुक्त जीवन शैली को अपनाने के लिए अपनी संस्कृति तथा मूल्यों को भूल रहे हैं। पुत्र तथा पिता के माध्यम से दो पीढ़ियों के अंतर को इस कथा में प्रदर्शित किया गया है। पुत्र जो आधुनिकता का प्रतीक है और पिता जो अपने वंश के गौरव की रक्षा में प्रयत्नशील है।

भारतदेश उत्सव प्रिय है। यहाँ पर दीपावली, होली, रक्षाबंधन तथा मकरसंक्रान्ति आदि विभिन्न उत्सव मनाए जाते हैं। प्राचीन काल में ये सभी त्योहार साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ाने वाले थे। सभी धर्मों को हमारे देश में सम्मान प्राप्त है तथा सभी को अपने पर्व मनाने की स्वतंत्रता है किन्तु आज ये उत्सव अपना स्वरूप परिवर्तित कर चुके हैं।

'श्रीकृष्णस्य दुर्गतिः' कथा में नारद तथा श्रीकृष्ण की वार्ता है। यमुना के तीर पर जब श्रीकृष्ण होली खेलते थे तो उसकी शोभा अवर्णनीय होती थी किन्तु आज होली के पावन अवसर पर कीर्तन का स्थान अश्राव्य गीतों ने ले लिया है अर्थात् पॉप संगीत चलता है तथा डिस्को नृत्य का प्रचलन बढ़ गया है। रंगों के स्थान पर केमिकल का प्रयोग हो रहा है जो त्वचा को हानि पहुँचाता है। युवकों में मदिरापान का प्रचलन बढ़ गया है, जो उनके चरित्र का नाश करता है।

"व्यथितकण्ठेन श्रीकृष्णः वदति – मद्यपानेन बुद्धिशून्यैः वादकैः सह केषांचित् युवकानां तालहीनं नृत्यम्। अस्य संगीतस्य नाम पअप् संगीतम्, नृत्यस्य नाम तु डिस्कोनृत्यमिति। होलिकोत्सवावसरे जातं रङ्गखेलम्। न एतत् रङ्गम् एतत्तु केमिकाल्। बहुघर्षणेन तथापि शरीरात् चर्म बहिर्गच्छति, परन्तु रङ्गं गच्छत्येव नहि। होलिकोत्सवे कथं वा प्रवेशः यन्त्रणोत्सवस्य।"[23]

परम पवित्र प्रेम तथा मित्रता का पर्व होली कटुता भुलाकर आनन्द में सराबोर होने का अवसर है। ये उत्सव ही समाज में प्रेम सद्भाव, समानता तथा आपसी मेलजोल बढ़ाते हैं। पॉप संगीत तथा डिस्को नृत्य भारतीय संस्कृति का हिस्सा नहीं हैं और ना ही मदिरपान श्रेयस्कर है। इन बुराईयों को छोड़ने तथा रासायनिक रंगों के प्रयोग को समाप्त करने का संदेश ही कथा का मूलभाव है।

परिवर्तनशील इस संसार में सभी की परिस्थितियाँ दिन–प्रतिदिन बदलती रहती हैं। यदि हम आज के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन चरित्रों को देखें तो हम पायेंगे कि आज के युग में महाकवि कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक की रचना करना संभव नहीं है।

तद्दिनस्य अधिकमनोज्ञा

वल्कलेनापि रम्या शकुन्तला अद्य

अकालवार्द्धक्यग्रस्ता रुग्णा पलिता चिकुरा।

दुष्यंतस्तु उदरपूरणाय

परजनाश्रितः

बालश्रमिकोऽपि सर्वदमनः

नाटकस्य प्रमुखावरणे।

आद्यप्रणयस्य मलयोऽपि उष्मायितः दीर्घश्वासेन।[24]

रामगिरि आश्रम पर काँपते हुए हाथों से कालिदास रूपी कवि करुण क्रन्दन कर रहे हैं। अपनी लेखनी में स्याही भरते हैं, किन्तु कैसे लिखें ? कारण नहीं है, समय नहीं है। शकुन्तला रूपी नायिका आज असमय वृद्धा हो चुकी है। दुष्यन्त रूपी नायक उदरपूर्ति (सर्वप्रमुख लक्ष्य) हेतु परजनाश्रित है और बालक सर्वदमन बालश्रमिक का प्रतिनिधित्व कर रहा है। प्रणय की मलय गर्म निःश्वासों में बदल चुकी है।

प्रेम मानवीय जीवन की सुन्दरतम अनुभूति है, किन्तु समाज में आज रोज़गार तथा धन की कमी है आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समाज के लोगों में मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। यही कारण है कि कम आयु के बालक भी बाल श्रमिक बनकर उदरपूर्ति में लगे हैं। शिक्षा प्राप्ति उनके लिए गौण हैं।

सामाजिक स्थिति का वास्तविक चित्रण कर कवि ने कमज़ोर आर्थिक दशा का, बालमज़दूरी प्रथा का तथा नारियों की दयनीय दशा का जो चित्र हमारे सम्मुख रखा है वहाँ प्रेमाभिव्यक्ति आर्थिक बोझ तले दब सी गई है।

विभिन्न प्रकार के भेदभावों को जड़ से उन्मूलन कर समाज के सभी वर्गों तथा वर्णों के मध्य एकता स्थापित करना ही सामाजिक समरसता है। भारतीय संस्कृति इस तथ्य को स्वीकार करती है कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान है अतः सभी समान है। किन्तु समय के साथ समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया उच्चवर्ग तथा निम्नवर्ग और यहीं से प्रारंभ हुआ वर्ग संघर्ष।

उच्चपदाधिरुढस्य धनिपुत्रस्य

साधारणं पद्यमेकम्

इह जगति भवति चर्च्चितम्।

न कदापि केनचित् तादृशं

लिखितमिति चीत्कुर्वन्ति प्रशंसकाः।

आजीवनं वल्मीकस्य इव

तपस्यामाचरन्

विशालं ग्रन्थकोणार्कं निर्माति दरिद्रः।

यस्य चर्च्चा न भवति कुत्र

न कश्चन अवलोकयति तस्य श्रमं

न कुत्रापि परिचर्च्चिता तस्य

विश्वविनिर्माणात्मिका बुद्धिः

न वा कस्मिन् भव्यसमारोहे

परिपूजितः सः।[25]

धनिक पुत्र द्वारा लिखा गया एक साधारण पद्य भी समाज में चर्चा तथा अतिशय प्रशंसा का विषय बनता है वाल्मीकि के समान उसके लोकार्पण का भव्य समारोह आयोजित किया जाता है। आचार्य उसे कण्ठस्थ करने में व्याकुल प्रतीत होते हैं। विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम का जो भाग बनता है जबकि आजीवन वाल्मीकि के समान तप का आचरण करते हुए दरिद्र जन द्वारा विशाल ग्रन्थ की रचना किए जाने पर भी न तो कोई उसके परिश्रम को देखता है, न ही उसकी विश्वविनिर्माणात्मिका बुद्धि की कहीं चर्चा होती है और न ही किसी भव्य समारोह में वह सम्मान पाता है।

(ग) नारी चेतना

मनु ने मनुस्मृति में लिखा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[26]

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न रहते हैं और जिस कुल में स्त्रियों को आदर–सत्कार नहीं मिलता, उस कुल में कर्म निष्फल होते हैं। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति अत्युच्च थी। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। महिलाएँ राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी कार्यों में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेती थीं। किन्तु जब मुस्लिम आक्रान्ता भारत आए तो भारतीय स्त्रियों को कई बुराईयों ने जकड़ लिया। उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया। दहेजप्रथा, पर्दाप्रथा और बाल–विवाह जैसी कुरीतियों ने अपने पैर पसार लिए। वर्णव्यवस्था का स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया। विधवाओं की स्थिति दिन–प्रतिदिन खराब होती गई। स्त्रियों की स्वतंत्रता समाप्त हो गई बचपन में वह अपने पिता के युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में अपने पुत्र के अधीन हो गई।

आधुनिक युग में कई समाज सुधारक तथा शिक्षाविद् हुए, जिन्होंने नारी उत्थान तथा उत्कर्ष हेतु विभिन्न आन्दोलन किए। आज नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है तथा राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक सभी क्षेत्रों में अपनी महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभा रही है।

अन्याय के विरोध में खड़ी शक्ति ही चेतना है। चेतना के यही मुखरित स्वर कवि नायक के साहित्य में सुनाई पड़ते हैं। उनकी रचनाओं में नारी कहीं आदर्श माता के रूप में तो कहीं विमाता के रूप में, कहीं परकीया नायिका के रूप में तो कहीं आदर्श पत्नी के रूप में, कहीं समाज–सेविका के रूप में तो कहीं शोषण और दरिद्रता की प्रतीकभूता रूप में दिखाई देती है। नारी जागरण की सुन्दरतम अभिव्यक्ति के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

"श्रान्तः क्लान्तः दुःशासनः
द्विगुणीकरोति
अविरतं दुःसाहसजालं
कुलवधूयौवनदर्शने।
दुर्योधनः सकलचरितम्
आदिशति
'कुरु' 'कुरु'
कार्यमिदं शुभाय भवतु"[27]

जर्जरित कुरुसभा में कुलवधू द्रौपदी अपने सम्मान और निजता की रक्षा में प्रयत्नशील है। दुर्योधन और दुःशासन अपने पुरुषार्थ प्रदर्शन में रत हैं उनके लिए द्रौपदी के साथ किया जा रहा दुराचार शुभता के लिए है। शकुनि सहित संपूर्ण सभा मोहग्रस्त है।

आज भी दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि जैसे लोग समाज में संपूर्ण नारी जाति के लिए खतरा बने खड़े हैं प्रत्येक स्थान पर नारी की अस्मिता की रक्षा हेतु अवतारी पुरुष का होना संभव नहीं है अतः स्त्री को आत्मरक्षा हेतु स्वयं जागरुक तथा सशक्त होना होगा।

सम्पूर्ण रामायण में कौशल्या एक आदर्श माता के रूप में चित्रित है तथा कैकेयी इतिहास के कलुषित अध्याय के रूप में जानी जाती है। विशाल रामायण कथा की मूल कैकेयी ने पृथ्वी के समान सब कुछ सहा।

कैकेय्याः त्यागं धैर्यमेव आश्रित्य
अवतरति श्रीराम पावनचरितः
रामकथा तामेव आश्रयते।
एतदर्थं हि वल्कलपरिहितं रामं वीक्ष्य
सा दुःखिनी न भवति, नापि

राजछत्रपरिशोभितम् आत्मजं दृष्ट्वा

आनन्दाधीरा भवति कैकेयी

यदि च समाजदृष्ट्या

सा भर्त्सिता उपेक्षिता।[28]

भगवान् की स्थापना में कैकेयी सदैव प्रयत्नशील रही। कैकेयी के त्याग तथा धैर्य पर ही श्रीराम के पावन चरित्र की रामकथा आश्रित है। वल्कलवस्त्र में राम को देखकर वह दुःखी नहीं होती और राजछत्र से शोभित अपने पुत्र को देखकर वह आनन्दित नहीं होती। समाज की दृष्टि में वह भर्त्सित तथा उपेक्षित चरित्र है।

विमाता के रूप में कलङ्कित तथा समाज का निन्दित चरित्र कैकेयी के चरित्र का दूसरा पक्ष यह है कि स्वयं प्रताड़ना सहकर समाज में सत्य की स्थापना में योगदान दिया। अपने पति की आतुरता भी उसे बाधित न कर पाई। मानव कल्याण का ऐसा उदाहरण मिलना अयन्त्र दुर्लभ है।

"मदिरालयपरिसरे यस्याः चर्च्चा

चलच्चित्रगृहफलके

यस्याः अङ्गदर्शनम्

प्रचारनिमित्तं या माध्यमरूपा

यौतुकं विना प्रज्वाल्यते या

शास्त्रे शक्तिमयी वन्दनीया सा।"[29]

प्राचीनकालीन महिमामण्डित नारी आज मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गई है। मदिरालय परिसर में उसी की चर्चा होती है। चलचित्र में उसी के अङ्गों का प्रदर्शन होता है। प्रचार–प्रसार का जो माध्यम बन चुकी है। दहेज न मिलने पर उसे जला दिया जाता है। शास्त्रों में जिस नारी को शक्तिस्वरूपिणी कहा गया वन्दनीया कहा गया वह आज शक्तिहीन तथा तिरस्कृत दिखाई पड़ती है।

यथा मातृवत् पालयति

पितृवत् उपदिशति

तथैवापि कान्तावत् गहननिशीथे

चिन्तामग्नं वदनं परिचुम्बति

खेदमपहरति स्मितमुखेन।"[30]

एक प्रेमिका माता के समान पालन–पोषण करती है। पिता के समान उपदेश देती है। पत्नी के समान प्रेम करती है अपनी मधुर मुस्कान से कष्ट को दूर कर देती है।

विभिन्न भूमिकाओं को निर्वाह करने वाली स्त्री दया, प्रेम, ममता, सहिष्णुता तथा त्याग की प्रतिमूर्ति है। वह पत्नी, बहन, पुत्री, माता तथा प्रेमिका बनकर पुरुष का हर कदम पर साथ देती है। स्वयं कष्ट भोगकर उन्हें शीतल छाँव प्रदान करती है और इसीलिए समाज में यह उक्ति प्रचलित है– हर कामयाब इन्सान के पीछे औरत का हाथ होता है।

सा हि लक्ष्मीः सा हि वाणी
देवी हैमवती
लक्ष्मीबाई दुर्गावती मीरा जिजाबाई
सा विश्वसुन्दरी
अनन्तशक्तिशालिनी कल्याणकारिणी।[31]

आज विश्व में प्रतिवर्ष सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का आयोजन होता है किन्तु वास्तव में जो दूसरों के दुःख में दुःखी न हो तथा जिसके हृदय में करुणा रूपी जल न हो वह सुन्दर नहीं हो सकता। सौन्दर्य चर्म में स्थित नहीं है वह तो विचारों, तथा विश्वकल्याण की भावना में निहित है। अतः स्त्रियों को पर दुःखकातर, परोपकारी, सेवाभावी, शक्तिस्वरूपिणी तथा कल्याणकारिणी बनने की प्रेरणा दी गई है।

अपरुपा दारिद्र्याघातेन मरणोन्मुखिनः पितुः औषधिक्रियार्थं यदा श्रेष्ठिनः गृहं गतवती, तदानीं श्रेष्ठिपुत्रेण एतस्याः सर्वम् उपहृतम्।[32]

कमज़ोर आर्थिक स्थिति वाली अपरूपा जब अपने पिता के लिए औषधि लेने श्रेष्ठी के घर जाती है तो श्रेष्ठी के पुत्र ने उसका सब कुछ हरण कर लिया। पुरुष प्रधान समाज ने अपरूपा को ग्राम से बहिष्कृत कर दिया। निर्जन प्रदेश में वह बिना किसी आत्मीय जन के निवास करती थी।

एकदा रात्रिकाले कस्य कराघातः कपाटे श्रुतः। अपरूपा पश्यति ग्रामस्य मुख्य न्यायधीशः तस्याः निकटे भिक्षां याचते।[33]

प्राणों का भय दिखाकर न्यायधीश ने रात वहीं व्यतीत की। धीरे–धीरे अन्य भी वहाँ आने लगे और इस प्रकार अपरुपा पतित हो गई उसका नाम लेना भी पाप हो गया।

"अपरूपा चिन्तयति–न्यायस्य मार्गः सत्ये निहितः अथवा धने। तथैव सतीत्वस्य का भवति संज्ञा?"[34]

अपरूपा विचार करती है कि न्याय का मार्ग सत्य में निहित है अथवा धन में क्योंकि धनशाली धन के प्रभाव से न्याय को भी अपने पक्ष में कर लेता है और दरिद्र का सत्य घुट–घुट कर किसी कोने में दम तोड़ देता है।

जब दरिद्रता चारों ओर से पैर पसारती है तो सतीत्व की रक्षा कठिन हो जाती है। अभाव तथा परिस्थितिवश अपरूपा जैसी नारियाँ पतित हो जाती हैं। हमारे समाज में उच्च आदर्श हैं, नियम हैं। दिन के उजाले में आदर्शों की बात करते हैं और रात के अँधेरे में समाज के ठेकेदार ही मानवता को शर्मसार करते हैं। महिला सशक्तीकरण की बात करने वाले ही महिला की लाज को तार–तार कर रहे हैं। इतना होने पर भी महिला को ही दोषी, चरित्रहीन तथा बहिष्कार योग्य समझा जाता है।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। अर्थात् भारतीय संस्कृति में माता तथा मातृभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर समझा जाता है। माता प्रेम, करुणा, दया और सहिष्णुता आदि गुणों से युक्त होती है। वह अपनी संतान के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देती है। किन्तु उसकी संतान में संवेदनाएँ, भावनाएँ तथा कर्त्तव्य परायणता केवल स्वयं तक ही सीमित रहती हैं।

तन्निकटे मातुरपेक्षया पत्न्याः स्थानम् अधिकम् अस्ति।[35]

पिता की मृत्यु के पश्चात् दिनेश कुमार की विधवा माँ ने जैसे–तैसे उसका पालन–पोषण किया। विवाहोपरान्त माता की अपेक्षा पत्नी का स्थान अधिक हो गया। दुर्व्यवहार से दुःखी माता ने घर का परित्याग कर दिया। दुर्भाग्य से दिनेश कुमार दुर्घटनाग्रस्त हो कर नेत्रहीन हो गया। दुःखी तथा अर्थहीन पत्नी चिन्तामग्न हो गई। कुमार की माता पुनः घर पहुँची तथा इस प्रकार के वचन कहने लगी–

"धन रे ! दुःखं नैव करणीयम्। इदानीमपि अहं जीविता। यथाशीघ्रं चिकित्सालये मम एकमात्रं चक्षुः नीत्वा तव शरीरे संयोजय। मम निकटे यः धनराशिः अस्ति, मन्ये तदर्थं पर्याप्तः स्यात्।"[36]

पुत्र चाहे माता से जिस भी प्रकार का दुर्व्यवहार करे किन्तु एक माता सदैव किसी भी प्रकार के दुराग्रह को अपने हृदय में नहीं रखती है। उसके हृदय में सन्तान के लिए क्षमा और स्नेह रहते हैं।

विजय जिसके जन्म के प्रथम वर्ष में ही उसकी माता का स्वर्गवास हो गया। जिसने विमाता की पीड़ा को सहा। स्नेह और ममत्व के लिए वह हमेशा इच्छुक रहा। युवावस्था में उसके जीवन में कौशल्या का आगमन हुआ और विजय के हृदय में अनुराग का स्फुरण हुआ। दोनों

विवाह के बंधन में बँधना चाहते थे किन्तु दोनों परिवारों की आपसी रंजिश के चलते यह संबंध आगे न बढ़ पाया।

फलस्वरूप विजय कुमार्गगामी होकर मद्यमान का व्यसनी हो गया तथा गणिका सुरेखा से विवाह करने की इच्छा करने लगा। सुरेखा को उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी माँ चन्द्रिका ने विजय के समीप भेजा था।

"गणिकावृत्तिः। एतादृशी कलङ्किता वृत्तिः कथं वा उत्तराधिकारसूत्रेण लभते।"[37]

कलङ्कित गणिका वृत्ति को भी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। आज बहुत–सी महिलाएँ इस कार्य से ही अपना जीवनयापन कर रही हैं। कुछ परिस्थितिवश मजबूर हैं तो कुछ की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है परन्तु जो एक बार इस दलदल में गिरी वह फिर कभी इससे न उभर सकी।

"नगरात् प्रत्यावर्त्त्य विजयः पश्यति – सुरेखा मृता। अन्यस्य पुरुषस्य उपस्थितिं नाङ्गीकृत्य भर्त्सिता सा आत्ममघातिनी जाता।"[38]

और अंत में सुरेखा ने अपने सम्मान की रक्षा में अपने प्राण गँवा दिए। सुरेखा जैसी कितनी ही महिलाएँ वेश्यावृत्ति के कर्म में लिप्त हैं और कई प्रयासों के बावजूद भी वे समाज की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाती है। कई सरकारी व गैरसरकारी संस्थाएँ ऐसी नारियों के उत्थान के लिए कार्य करती हैं, फिर भी समाज में यह बुराई अभी पूर्णरुपेण समाप्त नहीं हुई है। शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार से तथा स्वावलम्बी होकर ही नारी इस देवदासी प्रथा का अंत कर सकती है।

'पापिनी' इस कथा में कथाकार ने ममत्व का चरमोत्कर्ष दिखाया है। एक माता अपने पुत्र की क्षुधाशान्ति हेतु ग्राम देवी के निकट से प्रसाद ला कर उसे सन्तुष्ट करती है, तो ग्रामवासी उसे घेर लेते हैं। ग्रामसभा में पुरोहित उसे पापी घोषित कर देता है और उसे दण्ड दिया जाता हैं–

"पापिनी विमला पंच वर्षाणि यावत् मम गृहे स्थास्यति। दिवसे एकवारं भोजनं कृत्वा ब्राह्मणस्य मम सेवां करिष्यति। तस्याः कृते उद्दिष्टात् अन्नात् तस्याः पुत्रस्य भोजनं स्यात्। एवं सति तस्याः पापक्षालनम् अवश्यं भवेत्।"[39]

एक दरिद्र और निष्कपट माता जो अपनी ममता के हाथों मजबूर थी, उसे स्वार्थी और भ्रष्ट पुरोहित ने पापिनी सिद्ध कर दण्ड दे दिया। जबकि पापकर्म माता ने नहीं किया दुराचारी ग्रामसभा और उसके पुरोहित ने किया।

(घ) यौतुक प्रथा

विवाह के अवसर पर वधू पक्ष की ओर से वर पक्ष को दी जाने वाली धन सम्पत्ति को ही यौतुक अथवा दहेज कहा जाता है। प्राचीन काल में माता–पिता इसे अपना कर्त्तव्य समझते थे किन्तु कालान्तर में इस ने कुरीति के रूप में अत्यन्त विकराल रूप धारण कर लिया, जिसने महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों को बढ़ावा दिया है। आज पुत्री के उत्पन्न होने के साथ ही उसके विवाह, सुरक्षा तथा दहेज की चिन्ता माता–पिता को सताने लगती है। ऐसे में आर्थिक दृष्टि से तंग परिवारों का तो कहना ही क्या। दहेज को सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जोड़कर देखा जाता है। यही कारण है कि सुयोग्य कन्याओं के विवाह में भी दहेज के कारण समस्याएँ आती हैं। कई बार तो दहेज के नाम पर वधूओं को जलाकर मार दिया जाता है अथवा उन्हें आत्महत्या करने पर मजबूर कर दिया जाता है। हालांकि कानून द्वारा दहेज प्रथा को प्रतिबंधित किया जा चुका है फिर भी दहेज का दावानल हमारे समाज को निगल रहा है।

इस संवेदनशील विषय पर भी नायक जी ने अपनी लेखनी चलाई है और इस कुप्रथा को समाज के लिए अभिशाप बताया है। जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

विवाह के पाँच वर्ष बीत गए, किन्तु ससुराल में मल्लिका ने एक दिन भी सुख में नहीं बिताया। ससुराल में प्रतिपल उसे प्रताड़ित किया जाता है। उसकी स्थिति घर में एक साधारण सेविका के समान है।

"प्रतिक्षणम् अवशिष्टस्य यौतुकधनस्य प्रसङ्गम् उत्थाय यादृच्छभाषया मां भर्त्सयन्ति।"[40]

दहेज की अवशिष्ट राशि वर पक्ष को न मिलने से वधू मल्लिका शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो गई। उसे अपने पितागृह जाने की अनुमति नहीं थी। उसका पुत्र भी अपने मातुलगृह नहीं जा सकता था। कमज़ोर आर्थिक दशा होने से उसकी विधवा माता दहेज की शेष राशि देने में समर्थ नहीं थी। विवाह कार्य संपादित करने के लिए विधवा माँ ने कृषि भूमि का विक्रय कर दिया था।

"शरीरमधुना अहरहः ताडनेन कथं क्षीणं भवति। मातः। तव स्नेहलालिता मल्लिका अद्य पाषाणप्रतिमात्वेन रूपान्तरिता भवति।"[41]

बचपन में स्नेहपूर्वक पाली गई मल्लिका आज ताड़ना सह–सहकर क्षीणकाय तथा पाषाण प्रतिमा हो गई है।

समाज में मल्लिका जैसी अनगिनत महिलाएँ हैं, जिन्हें दहेज के लिए ससुराल में पीड़ित किया जाता है। उन्हें शारीरिक तथा मानसिक यातनाएँ दी जाती है। वे चाह कर भी अपनी

अन्तर्वेदना किसी के साथ भी नहीं बाँट पाती हैं और उनका पति भी सदैव उन्हीं पर कुपित रहती है।

"मम पुत्रस्य विवाहोत्सवे एकरुप्यकपरिमितं यौतुकं नैवं ग्रहणीयम्। परन्तु.......... कन्यादानकाले कश्चन यद्यपि आनन्देन किमपि दास्यति, तर्हिः अस्मत्परिवारस्य आपत्तिः नास्ति।"[42]

यमोच्छिष्ट मिश्र महोदय स्वाधीनतासंग्रामी, जनसेवक, समाजसंस्कारक तथा आधुनिकदेशनिर्माता इत्यादि बहुत सी उपाधियों से विभूषित दहेज को राक्षस के समान समझते हैं। रावण और कुंभकर्ण से अधिक शक्तिशाली है दहेज की शक्ति। किन्तु जब अपने पुत्र के विवाह का प्रसङ्ग उपस्थित होता है तो अधिकाधिक दहेज की राशि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

पुत्रस्य विवाहे यथा विलम्बः भवति, तथैव यौतुकस्व मात्रा वृद्धिं प्राप्नोति।[43]

यमोच्छिष्टमिश्र ने दो स्थानों पर अपने पुत्र के विवाह संबंध को इस कारण तोड़ दिया क्योंकि दहेज की राशि से वे सन्तुष्ट न थे। अनुनासिक शास्त्री ने एक पूर्वनियोजित योजना के आधार पर तीन लाख रूपये की राशि दहेज में देने का प्रस्ताव रखा, जिसे उच्छिष्ट मिश्र ने स्वीकार कर लिया। जब विवाह यात्रा प्रारंभ हुई और नियत स्थान पर पहुँची तो अनुनासिक शास्त्री ने यह समाचार सुनाया कि कन्या किसी अन्य युवक के साथ भाग गई है। इस पर मिश्र महोदय कहते हैं–

विंशतिसहस्रव्ययेन अत्र आगतः। परन्तु एकमपि रूप्यकं न प्राप्तम्। अरे दुष्ट युवक! यदि मम वधूं नेतुं तव इच्छा आसीत्, तर्हि विवाहादनन्तरं कथं न नीत्वा प्रागेव नीतवान्। मम यौतुकम्। कुत्र गतम्।[44]

मिश्र महोदय समाज के प्रतिष्ठित जन के रूप में चित्रित हैं। समाज के सम्मुख उनकी छवि आदर्श समाजसेवी की है परन्तु दहेज के रूप में वे भी अपने पुत्र का अधिकाधिक मूल्य प्राप्त करने को उत्सुक है। आज का सुसभ्य समाज ही यदि इस कुप्रथा को बढ़ावा देगा तो कैसे हम इस बुराई से देश को मुक्त कर पायेंगे? आवश्यकता है कि वर्तमान युवा पीढ़ी जागरुक हो और विवाह के अवसर पर सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर धन के अपव्यय को रोका जाए।

"पिता सगर्वमुपदिशति कन्यां
पतिगृहे निर्भीका भवितुं
यथाशीघ्रं श्वशुरादिकं त्यक्त्वा
पत्युः कर्मक्षेत्रे निवसितुं,

सेविकया रन्धनं सन्तानलालनं च

सम्पादयितुम्।"[45]

प्राचीनकाल में पतिगृह जाती हुई कन्या को माता–पिता सेवा परायणता, आज्ञाकारिता, मधुरभाषणवादिता, सदाचार आदि का पाठ पढ़ाते थे किन्तु आज जो कन्या जितना अधिक धन लाती है, ससुराल में वह उतनी ही निर्भीक होती है। उसके माता–पिता भी उसे यथाशीघ्र ससुराल को छोड़कर एकाकी परिवार में रहने की सलाह देते हैं। घर के अन्य कार्यों के लिए सेविका रखने की बात कहते हैं। वे सोचते हैं कि स्नेह से पोषित पुत्री, विभिन्न अलंकारों तथा यौतुकराशि से युक्त है साथ ही उच्च शिक्षा संपन्न है अतः यह किसी भी कार्य को न कर केवल भोग ही करेगी।

एक ओर जहाँ कम दहेज देने पर ससुराल पक्ष पधू को प्रताड़ित करता है, वहीं अत्यधिक यौतुक राशि तथा अलंकारों से संपन्न वधू अपने धन के बल पर संपूर्ण परिवार में कलह तथा अशान्ति उत्पन्न कर देती है। विवाह एक संस्कार न होकर मनोरंजन का साधन मात्र बन गया है तथा पाश्चात्यीकरण के प्रभाव ने एकाकी परिवार तथा विवाह–विच्छेद जैसी समस्याओं को बढ़ावा दिया है।

कवि सर्वगिल अपनी कन्या का विवाह यान्त्रिक (इंजीनियर) के साथ एक लाख रुपये में तय करता है, किन्तु वह यौतुक राशि को एकत्रित नहीं कर पाता। अतः अपनी पत्नी मर्कटरदना के साथ मिलकर एक योजना बनाता है, जिसमें सम्माननीय दो हजार लोगों को विवाह के शुभ अवसर पर भोजनादि के लिए आमन्त्रित करता है और स्वयं भूमि पर अचेतन अवस्था में गिर जाता है।

"उच्चरक्तचापात् सर्वगिलः अचेतनः भूत्वा भूमौ निपतति। कैश्चित् बन्धुभिः सः मुख्यचिकित्सालयं नीतः। मर्कटरदना वदति–प्राणधन! भवतः बुद्धिः अवश्यमेव असामान्या। अधुना उत्तिष्ठतु । न कश्चन अतिथिः अपेक्षमाणः अस्ति भोजनाय। जानाति, तैरेव कन्यायै उपहाररुपेण यः एव धनराशिः प्रदत्तः, तस्य परिमाणं तु द्विलक्षतः अधिकं भविष्यति।"[46]

अतिथिगण द्वारा लाई गई उपहार राशि तथा आभूषणादि से वह अपनी पुत्री के दहेज की राशि की व्यवस्था कर लेता है और भोजनादि पर भी किसी प्रकार का व्यय नहीं करता। व्यङ्ग्यकवि नायक की यह कथा आमंत्रण के माध्यम से यौतुकराशि के एकत्रीकरण की नवीन रीति का सूत्रपात नहीं अपितु इस कुरीति पर ही करारा व्यङ्ग्य है। अपनी इस कहानी में उन्होंने दहेज प्रथा पर सीधे ही कटाक्ष किया है।

"वनकन्यापिता नहि राजदण्डधारी

नापि पितामहस्तस्या

दिग्विजयी वीरः।

नैव क्षमो विवाहे प्रदातुं

यौतुकसूत्रेण यो वा विभवमशेषम्।

तस्य कन्या भवेत् कथमत्र राजपत्नी,

वनस्य प्रसङ्गो मिथ्याकल्पनाप्रसूतो

नैव दृष्टा एषा कुत्र राज्ञा सह कदा।

राजपक्षं स्वीकुरुते समग्रो विचारो

धर्माधीशो न्यायाधीशो

दण्डयति वनकन्यां, यथाशीघ्रमादिशति

राज्याद् बहिर्गमनाय

राजकुलमानरक्षणाय।"[47]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नायिका के समान वर्तमान काल में भी जिस कन्या के पिता प्रतिष्ठित तथा उच्च पदारुढ़ नहीं है और जिन्होंने अपनी पुत्री को अधिकाधिक यौतुकराशि प्रदान नहीं की है, वह पत्नी के पद को प्राप्त नहीं हो सकती। वनप्रसङ्ग अर्थात् पूर्वमिलन जैसी वार्ता को असत्य या काल्पनिक मान लिया जाता है। उस कन्या का तिरस्कार कर यथाशीघ्र शकुंतला के समान उसे घर से बाहर निकाल दिया जाता है। दरिद्र होने से वह उच्च वंश की वधू नहीं बन पाती अपितु–

"दारिद्र्यस्य इयमेव रीतिः

दरिद्रतनया खलु भोगोपजीविनी

राज्ञो रुच्यन्तरं

वनस्य मुक्तप्रदेशे

पत्रशय्यापरिपूरणाय

सामान्येन अङ्गुरीयविभवलाभेन।।"[48]

दरिद्र की कन्या तो भोगस्वरूपा होती है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न तथा चरित्रहीन युवकों द्वारा भोली–भाली और असहाय कन्याओं का लाभ उठाया जाता है। विवाह के झूठे स्वप्न दिखाकर केवल वे अपनी वासनाओं की पूर्ति करते हैं। वर्तमान परिवेश में संस्कारों की कमी के चलते चरित्रहीनता व अनैतिकता के कई उदाहरण समाज में यत्र तत्र दिखाई देते हैं।

(ङ) दलित चेतना

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ मिल–जुलकर रहना और समस्त मानव जाति से प्रेम करना ही भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। जबकि अस्पृश्यता (छुआछूत) सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक कलङ्क है। दलित समाज का वह वर्ग है, जो सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक प्रगति में सर्वाधिक शोषित, उपेक्षित तथा पिछड़ा हुआ हो।

प्राचीनकाल में शूद्रों को दलित की संज्ञा दी जाती थी। समय के साथ–साथ इनकी स्थिति और भी चिन्तनीय होती गई। इन्हें कई अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

आज हम स्वयं को सभ्य और सुसंस्कृत कहते हैं, फिर भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वत्र अस्पृश्यता के दर्शन किए जा सकते हैं। समभाव की शिक्षा देने वाली भारतीय संस्कृति में क्या कोई प्राणी ऐसा भी है, जिसे स्पर्श के योग्य नहीं माना जाता, जिसके साथ उठा–बैठा नहीं जा सकता तथा भोजन इत्यादि नहीं किया जा सकता। प्राचीनकाल में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी किन्तु आज यह जातिवाद का भयानक रूप ले चुका है।

> **"येषां त्यागः**
> **येषां श्रमः**
> **मरुभूमेश्चिनोति शस्यानि**
> **रत्नाकरात् संगृह्णाति**
> **रत्नं शतं शतं,**
> **निर्माति गहने वने**
> **रम्यामट्टालिकां**
> **तेषां त्यागिपुङ्गवानाम्**
> **अयमेव स्वरः**
> **राष्ट्रविनिर्माणयज्ञे**
> **स्वस्य मांसं, स्वस्य रक्तम्**
> **आज्यत्वेन समर्पितं।"**[49]

दलितों के त्याग तथा परिश्रम से मरुभूमि भी फसलों से युक्त हरी–भरी हो गई है। समुद्र से सैंकड़ों रत्नों को जिन्होंने एकत्रित कर लिया है। घने जंगल में सुन्दर भवन का निर्माण कर लिया है। राष्ट्र–निर्माण रूपी यज्ञ में त्याग की मूर्ति स्वरूप दलित जन अपना मांस तथा रक्त घी के रूप में समर्पित कर रहे हैं।

समाज में जिसे दलित समझा जाता है वह राष्ट्र के विकास तथा उन्नति कार्य में लगा हुआ है। कठिन से कठिन कार्य को भी वह अपनी मेहनत और लगन से पूरा कर देता है। आज का दलित समाज की प्रताड़ना न सहकर युग परिवर्तन के लिए आवाज़ उठा रहा है। राष्ट्रद्रोही पुरुष से उसने बलपूर्वक अमृतकलश छीन लिया है।

"दलितानां केवलं गर्जनं
नवसृष्टिनिर्माणाय
नवयुगस्थापनाय।"[50]

वर्षों से तिरस्कार तथा दमन को सहने वाला दलित आज नवीन युग की स्थापना के लिए तथा नवीन सृष्टि के निर्माण हेतु गर्जना कर रहा है। कवि को इस बात का अत्यधिक सन्तोष है तथा वह स्वयं भी इस जागरण तथा कल्याणकारी कार्य में अपना स्वर मिला रहा है। हम सभी को अपने मन से हीन भावनाएँ दूर करनी होंगी और इस कमज़ोर तबके को ऊपर उठाने के प्रयास करने होंगे तभी राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होगा।

प्राचीन काल में वर्णव्यवस्था प्रचलित थी, जो कर्म पर आधृत थी। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था का स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया और जाति का आधार जन्म है। एक शिल्पकार जो पत्थर के टुकड़े को तराशकर देवता का आकार और स्वरूप प्रदान करता है। अपनी साधना और ज्ञान के आधार पर एक श्रेष्ठ मूर्ति का निर्माण करता है, किन्तु वह शिल्पी समाज में अस्पृश्य समझा जाता है। उसे मूर्ति को स्पर्श करने भी अधिकार नहीं होता। उसी प्रकार रजक (धोबी) मलिन वस्त्र को धोकर परिष्कृत करता है। शोभावर्धक कार्य को सम्पन्न करने के पश्चात् वह अस्पृश्य (छूने योग्य नहीं है) समझा जाता है। उसे इस जन्म में मन्दिर की सीढ़ियाँ तक देखने का अधिकार नहीं है।

"कर्मकुण्ठाः नराः एव
स्पृश्याः अस्माकं विचारे।"[51]

कर्म से कुण्ठित मनुष्य ही स्पृश्य माने गए हैं क्योंकि कर्मशील जन को तो अस्पृश्य समझा जाता है। (कर्मशीलजन) उद्यमी कभी भी अस्पृश्य नहीं हो सकता क्योंकि वह सदैव अपने कार्य में रत है और जो लोग जातिवाद को बढ़ावा देते हैं तथा समाज में भेदभाव को बढ़ावा देते हैं वे वास्तव में समाज के लिए और संपूर्ण मानव जाति के लिए एक अभिशाप हैं। प्रकृति सभी के लिए समानता का व्यवहार करती है और हमारे देश का संविधान भी समता और बन्धुता का पक्षधर है।

"वर्ज्यवस्तुभक्षणं येषां ललाटवाक्यम्
परनिन्दासहनमेव येषां कण्ठहारः
अन्यस्य धिक्कारो येषां पुरस्कारः

कथाप्रसङ्गे उपहासो

येषां जन्मनः साफल्यम्।"[52]

बहिष्कृत किए जाने योग्य वस्तु को खाना जिनका भाग्य है, परनिन्दा को सहन करना ही जिनके गले का हार है। दूसरों द्वारा किया गया धिक्कार ही जिनके लिए पुरस्कार है। जिनका उपहास ही जीवन की सफलता है।

इस प्रकार दलित व्यक्तियों की समाज में अत्यन्त शोचनीय तथा दयनीय स्थिति है।

अस्पृश्यतानिरोधिनी समिति की बैठक में अस्पृश्यता के कारणों पर चर्चा की गई। किसी ने स्मृति शास्त्रों को तो किसी ने सरकार की उदास मनोवृत्ति को कारण बताया। अंतः में पंक्ति में भोजन की भी व्यवस्था थी। सभी पङ्क्ततबद्ध बैठे हुए थे, तभी एक नेता चिल्लाया–

"अहम् एतस्य अस्पृश्यस्य निकटे उपविश्य अन्नभोजनं नहि करिष्यामीति। अहम् अस्पृश्यः। सः अपि अस्पृश्यः। परन्तु मदपेक्षया सः जात्या हीनः। अतः सः अधिकः अस्पृश्यः अस्ति।"[53]

अस्पृश्यता में भी जात्याधारित उच्चता तथा हीनता पाई जाती है। अस्पृश्यता एक सामाजिक व्याधि है। यदि कोई व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र इस बीमारी से ग्रस्त है तो वहाँ शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती, उन्नति और विकास के विषय में तो विचार भी असंभव प्रतीत होता है। सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख मानवीय मूल्य मानवता है, जो सर्वोपरि है।

अस्पृश्य देवदत्त ग्राम में एकाकी निवास करता था, किन्तु ग्रामवासियों ने ग्रामप्रधान से कहकर उसे गाँव से बहिष्कृत कर दिया। वह श्मशान के निकट किसी संन्यासी की परित्यक्त कुटिया में निवास करने लगा। एक बार अर्द्धरात्रि में गाँव में आग लग गई और चारों ओर त्राहि–त्राहि मच गई। ऐसी अवस्था में किसी का विलाप सुनाई दिया कि ग्रामप्रधान अभी भी अपने शयनकक्ष में है। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। किन्तु किसी ने भी ग्रामप्रधान की सहायता में साहस नहीं दिखाया। उसी क्षण एक घटना घटी–

"तत्क्षणात् कश्चन अग्निमध्ये प्रविशति। बाहुभ्यां प्रधानम् उत्तोल्य त्यजति। सर्वे पश्यन्ति मन्त्रमुग्धदृष्ट्या – देवदत्तः। कालरात्रिः अपसरति। सर्वत्र प्रातः तस्यैव चर्चा। तस्यैव प्रशंसा। कुटीरस्य द्वारदेशे तस्य आह्वानं भवति। कुटीरस्य अन्तः स्फोटशरीरः देवदत्त मृतः इति पश्यन्ति।"[54]

ग्रामप्रधान के जीवन को बचाने में अस्पृश्य देवदत्त ने अपने प्राणों का बलिदान दे दिया। उसके इस कार्य की सभी ने प्रशंसा की और अपने दोष को भी स्वीकार किया, ग्रामवासियों का हृदय अब परिवर्ति हो चुका था। इस कथा में सेवापरायणता, त्याग, बलिदान और परोपकार जैसे मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं। जिन पर संपूर्ण मानव सभ्यता टिकी हुई है।

इस कहानी में फिर से इस तथ्य की पुनर्स्थापना होती है कि कर्म ही जीवन का आधार स्तम्भ है। जाति और वर्ण आदि गौण हैं।

मानव मात्र की सेवा ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है। भारतीय संस्कृति त्याग, सेवाभाव, बलिदान, प्रेम, दया और सहिष्णुता के भावों से ओत–प्रोत है। किन्तु समय के साथ मानवीय मूल्यों में ह्रास हुआ है। आज का युग दिखावे का युग है। दूसरों की सहायता या निर्बलों की सेवा भी इसलिए की जाती है कि उसका लाभ उठाया जा सके। दूरदर्शन अथवा चलदूरभाष यंत्रों पर छायाचित्र डालकर स्वयं की श्रेष्ठता प्रदर्शित की जाती है। स्वार्थी ऐसे लोगों का हृदय भावनाओं से शून्य होता है।

मानवसेवा तथा देश की सुरक्षा प्रकृत पक्ष में माधवसेवा है। इस प्रकार ग्राम नेता ने अपने जीवन का लक्ष्य हरिजन ग्राम का परिष्करण बताया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने की शपथ ली। इस कार्यक्रम में दूरदर्शन विभाग को भी बुलाया गया।

"कार्यक्रमस्य प्रारम्भे ग्रामनेता सम्मार्जनीं धृत्वा परिष्करणं कृतवान्। कतिपयैः दारिद्रयनिपीडितशिशुभिः सह मिलित्वा भावावेगेन क्रन्दितवान्। दूरदर्शनविभागः यदा स्वस्य कार्यं समाप्य प्रत्यावर्त्तनं कृतवान्, वस्तुतः तत्क्षणादेव नेतुः सेवाकार्यं समाप्तं जातम्। अपरिष्कृतस्य तस्य ग्रामस्य मलिनता नैव कुत्रापि परिगता न वा कमपि अस्पृश्यशिशुं परस्मिन् काले कः आलिङ्गितवान्।"[55]

जब तक दूरदर्शन विभाग अपना कार्य कर रहा था। नेता जी भी तब तक स्वच्छता का कार्य करते रहे तथा दरिद्र शिशुओं से मिलते रहे। यह कार्यक्रम दूरदर्शन पर बहुलता से प्रचारित किया गया। सभी मुक्तकण्ठ से नेताजी की प्रशंसा कर रहे थे। अपने प्रयोजन की सिद्धि होने के पश्चात् न ही किसी ने उस अपरिष्कृत ग्राम की मलिनता दूर की और न ही किसी ने अस्पृश्य शिशुओं को हृदय से लगाया।

यादव गृह में हरिकीर्तन का आयोजन हुआ। समीपस्थ सभी ग्रामवासियों को निमन्त्रित किया गया। सभी के लिए प्रसाद सेवन की व्यवस्था की गई। निकट गाँव का अस्पृश्य हरिजन गोभील भी आमन्त्रित किया गया। गोभील अपने क्षुधातुर पुत्रों की उदरपूर्ति हेतु कीर्तन स्थान पर आया और वृक्ष के मूल में बैठ गया। रात्रि दस बजे प्रसाद सेवन का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। गोभील ने अपने पुत्रों को वहाँ जाने से रोका क्योंकि ब्राह्मणों का भोजन चल रहा था। वरिष्ठ जन प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। रात्रि के तीन बज चुके थे।

"सम्पूर्णोपवासेन वृक्षमूले सन्तानाः शयनं कुर्वन्ति। पर्युषितान्नं प्रातः खादित्वा पुत्राः तस्य बहुभोजनाशया उपवासेन तिष्ठन्ति। यादवगृहस्य सेवकं रमानाथं दृष्ट्वा पृष्ट्वान्– भ्रातः! किम् अस्माकं कृते अधुना प्रसादव्यवस्था भवति? सः उत्तरं दत्तवान्–प्रसादसेवनं तु समाप्तं जातम्।"[56]

पिता और उसके चारों पुत्र भोजन की आशा में सो चुके थे और प्रसाद भी समाप्त हो चुका था। सभी जा चुके थे सेवक रमानाथ के इस उत्तर को सुनकर गोभीलक के मस्तक पर वज्रपात हुआ। प्रातः काल सूर्योदय होने ही वाला था और गोभील चिन्ताग्रस्त था कि वह अपने पुत्रों से क्या कहेगा।

"निद्राभङ्गं कृत्वा सः किं कथयिष्यति, किं वा कथयित्वा तान् सः प्रतिबोधयिष्यति।"[57]

समाज के सामने आडम्बरपूर्ण धार्मिक कीर्तन का आयोजन किया गया और इस आयोजन में मानवता को ही छला गया। हरि की स्तुति की जाती है और हरि के जन अर्थात् हरिजन को तिरस्कृत किया जाता है। एक पिता की संवेदनाओं और भावनाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है।

समाज का वह वर्ग जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार से वंचित, उपेक्षित, शोषित, उत्पीड़ित तथा दलन का शिकार रहा है, वह दलित ही है–

अरक्षितस्य तस्य कृते
न कश्चन धन्वन्तरिः इदानीमपि
आविर्भूतः सागरगर्भतः
न वा तस्य अमरत्वाय
समुद्रमथनं जातं
निविष्टमनसा, उभयोः मिलितोद्यमेन।
सूर्यस्य उत्तप्त किरणम्
इन्द्रस्य मेघजालं
पवनस्य निर्ममताऽनलम्
सर्वं किमपि निपीय
परिवर्द्धते तृणभोजी छागः
सृष्टेः अवहेलितः जीवः।[58]

व्याघ्र–सिंह–शृगाल से भयभीत छाग शरीर धर्म निभाता हुआ अपने उदर की पूर्ति के लिए वन में भ्रमण करता है और वहाँ उसका मुख काँटों से घावपूर्ण हो जाता है किन्तु उसकी सेवा–सहायता में वहाँ कोई भी उपस्थित नहीं होता है। सृष्टि का वह अवहेलित तृणभोजी जीव छाग सब कुछ सहन करता है। उसी प्रकार समाज का दमित वर्ग दलित सर्वत्र प्रतारणा को सहन करता है। उसकी सहायता या उसका पक्षधर कोई नहीं होता। उसे स्वयं ही उद्यमशील बनकर जीवनयापन करना होता है।

(च) श्रमिक चेतना

श्रमिक देश का सबसे बड़ा वर्ग है। यह समाज का मेरुदण्ड है अतः यही वर्ग सभी प्रकार के आर्थिक कार्यों को गति प्रदान करता है। इन्हें जीवनयापन करने के लिए कठोर श्रम करना पड़ता है। श्रमिक सदैव भूख, अभाव, अन्याय तथा अत्याचार को सहन करता है तथा आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर रहता है। श्रमिक मौन रहकर रक्त बहाकर परिश्रम करके देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करते हैं। ये प्रमुख रूप से खेतों, कारखानों, खानों, चाय बागानों, छोटे–मोटे उद्योगों में तथा बोझा ढोने में क्रियाशील रहते हैं। जिन मशीनी सुख–सुविधाओं से हम अपने जीवन को सरल बनाते हैं, वे सभी साधन श्रमिक द्वारा ही बनाए जाते हैं। श्रमिक ही राष्ट्र की धुरी है।

कवि समाज का ही एक अंग होता है। समाज में विद्यमान परिस्थितियों, प्रवृत्तियों तथा प्रभावों का गहनता से अध्ययन कर अपने विचारों को कलात्मक रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। नायक जी का संपूर्ण साहित्य श्रमिक चेतना, संवेदनाओं, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की समस्याओं, समाज में उनकी निम्नतम अवस्थिति आदि का सजीव चित्रण है–

मन्दिरे पूजितोभवति
केवलः पाषाणविग्रहः
साक्षात् ईश्वरस्तु
क्षुधापिपासाकुलितः
अरक्षितः
वृक्षमूले राजपथपार्श्वे
रोगग्रस्तः
चीत्करोति तीव्रयन्त्रणया।
यस्य श्रमेण रक्तदानेन
विनिर्मिता इयं सृष्टिः

यस्य स्वेदः

विपरिणमते पुष्परूपेण

फलरूपेण

दूरगामियानत्वेन

यस्य धन्वन्तरिरूपम्

उत्तोलयति अमृतभाण्डं

संसारसागरात्।

स खलु अनालोचितः

अनादृतो जगति।

तस्य कुरुक्षेत्रवार्त्ता नास्ति

तस्य वन्दना नास्ति

उपासना नास्ति

विग्रहपूजनं न भवति तस्य

यतो हि स एव

साक्षात् ईश्वरः

समग्रविश्वस्य।[59]

देवालय में अत्यधिक भीड़ है, अचल भक्ति, अनन्त स्तुति, चौंसठ प्रकार के व्य×जन तथा बहुमूल्य पुष्पमालाएँ हैं, भगवान की तुष्टि तथा स्वयं के कल्याण लाभ के लिए। मन्दिर में केवल पाषाण की मूर्ति ही पूजी जाती है वस्तुतः साक्षात् ईश्वर तो भूख तथा प्यास से व्याकुल जन वृक्ष के मूल तथा राजपथ के समीप स्थित रोग से आक्रान्त तीव्र यन्त्रणा से चीत्कार कर रहे हैं, जिनके श्रम से रक्तदान से यह सृष्टि निर्मित होती है। जिसका स्वेद पुष्प रूप में तथा फलरूप में परिणमित होता है। जिसका धनवन्तरि रूप संसार रूपी सागर से अमृतभाण्ड को धारण करता है। वह निश्चय ही अनालोचित तथा अनादृत है। उसकी कहीं कोई वार्ता नहीं होती, वंदना नहीं होती, उपासना नहीं होती है तथा न ही उसका किसी विशेष प्रकार का पूजन होता है वही संपूर्ण विश्व का साक्षात् ईश्वर है।

भूखे–प्यासे रहकर अपने स्वेद तथा रक्त से संपूर्ण प्राणियों का हित साधने वाले श्रमिक ही विश्व के ईश्वर हैं। डॉ. नायक के अनुसार समाज में इन्हें यथोचित सम्मान मिलना चाहिए। इन्हीं की पूजा की जानी चाहिए।

देवशिशोः कृते भूमिः सुकोमलशय्या

आकाशः परिष्कृतं वस्त्रम्

कष्टलब्धं खाद्यमेव अमृतम्

वर्तमानकालः खलु महान् समयः।

तस्य आत्मीयस्तु सः स्वयमेव

एते आत्मीयच्छत्रतले विज्ञाः

निजपदगौरव परिवर्द्धनाय यत्नशीलाः

भाषणताण्डवतालसुरक्षार्थं कृतसंकल्पाः।

न केनचित् देवशिशुः उपकृतः

नापि कस्य प्रसादनाय तस्य अपेक्षा

सः देवशिशुः इति खलु

तस्य प्रकृष्टः परिचयः

आत्मनि तस्य परमः विश्वासः।[60]

देवशिशु (बालश्रमिक) किसी के भी द्वारा निन्दित किए जाने पर स्वयं की निन्दा नहीं करता और न ही प्रशंसा किए जाने पर उत्फुल्लित होता है। उसके जीवन में लज्जा, भय, अभिमान, विजय की आकांक्षा तथा भोगवाद का कोई स्थान नहीं होता है। अपितु आयु को व्यतीत करना ही उसके लिए जीवन है। भूमि ही उसके लिए सुकोमल शय्या है। आकाश ही परिष्कृत वस्त्र है। कष्टपूर्वक प्राप्त हुआ खाद्य ही अमृत है तथा वर्तमान ही महान समय है। भाषण कला में कुशल विद्वान अपने गौरव के परिवर्द्धन में यत्नशील रहते हैं। बालश्रमिक प्रथा को समाप्त करने के उपदेश देते हैं। किन्तु यह सब वे अपने अहंकार की तुष्टि तथा अपने कोश की वृद्धि हेतु करते हैं। देवशिशु का विश्वास तो स्वयं में ही है। वह स्वयं ही अपना आत्मीय है वह किसी अनय की कृपा की अपेक्षा नहीं रखता।

धनं विना श्रमदाने संलग्नाः श्रमिकाः

राज्यशिल्पिकुलं खलु उच्छन्नम् आतुरम्

को वा करिष्यति तेषाम् उदरपूरणम्?[61]

धरा पृष्ठ पर अपनी पत्नी के नामाक्षरों को अमर कर देने को उद्यत राजा प्रियतमा का स्मृति मन्दिर बनवाने में मग्न है। धन के बिना ही श्रमिक श्रमदान में संलग्न हैं। इस विषय का विचार कर वे व्याकुल हैं कि उनके परिवार की उदपूर्ति किस प्रकार होगी। प्रस्तुत उदाहरण में भारत में प्राचीनकाल से चली आ रही बेगार प्रथा का वर्णन है। जिसके अंतर्गत समाज दो वर्गों में

विभक्त है— शोषक वर्ग तथा शोषित वर्ग। श्रमिक को सदैव ही शोषण तथा प्रताड़ना को सहना पड़ा है। आज भी दो जून की रोटी उसके लिए चुनौती है।

वैशाखस्य सायंकालः। हठात् प्रवलझंजा समागता। सर्वत्र परिवेशः झंजया आन्दोलितः। विशालः द्रुमः भूमिशायी अभूत्। अत्रापि राजरोपित कदम्बवृक्षः भूपतितः। परन्तु दौर्भाग्यात् कश्चन कृषकः तदानीं तस्य कदम्वस्य मूले आश्रयं नीतवान्। यः खलु वृक्षपतनकाले वृक्षमधः स्थितः सन् साहाय्यार्थं प्रार्थयते स्म। परन्तु अशान्तरात्रौ तस्य प्रार्थनां वा कः शृणुयात्? अतः कृषकः प्रातः कालम् अपेक्षते।[62]

वैशाख का सायंकाल था। अचानक तीव्र आँधी—तूफान आया तथा समग्र परिवेश आन्दोलित हो गया। विशाल वृक्ष भी धराशायी हो गए। राजरोपित कदम्ब वृक्ष भी भूमि पर गिर पड़ा दुर्भाग्यवश कोई कृषक जिसने उस कदम्ब वृक्ष के मूल में आश्रय लिया था वह वृक्ष के नीचे दब गया तथा सहायता की याचना करने लगा। किन्तु कृषक का जीवन राजनीति की भेंट चढ़ गया। दो राज्यों की परस्पर शत्रुता के चलते कृषक को समय पर जीवनदान नहीं मिल पाया कुछ कुष्माण्डबुद्धि जनों ने न्याय व्यवस्था को इतना क्लिष्ट बना दिया कि जीवनदायी आदेश पत्र के श्रवणपूर्व ही कृषक ने अपने प्राण छोड़ दिए।

"विद्याविमुखः युवकः
दारिद्र्येण पीडितः सन्
उद्योगार्थम् इतस्ततः भ्रमित्वा
निराशः जातः
उदरपोषणमपि कष्टायते।
परिशेषे युवकः
आत्महत्यार्थं प्रस्तुतो भवति।"[63]

विद्या से विमुख युवक दरिद्रता से पीडित होता हुआ रोज़गार की खोज में निराश इधर—उधर घूम रहा था वह अपने उदर की भी पूर्ति करने में असमर्थ था, जब वह बहुत तनाव तथा अवसाद से युक्त हो गया, तो उसने आत्महत्या करने का मन बनाया।

आज हमारे देश में युवा पीढ़ी की सबसे बड़ी समस्या है रोज़गार की। पढ़—लिखकर भी युवाओं को रोज़गार नहीं मिल पा रहा है। वे अपनी तथा अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पा रहे हैं। दिन प्रतिदिन परिस्थितियाँ विकट होती जाती हैं। चारों ओर से दबाव बढ़ता ही जाता है। आर्थिक तंगी के चलते जब उन्हें आशा की कोई किरण नज़र नहीं आता तो वे अपनी जीवन लीला को ही समाप्त कर बैठते हैं।

वैरागी इस कविता संग्रह में भी निराश और हताश दरिद्र युवक जब आत्महत्या करने को उद्यत होता है, तो उसी समय वनप्रदेश में उसका किसी के साथ साक्षात्कार होता है और वह बैरागी बन जाता है। अब उसके पास धन तथा आज्ञाकारी भृत्यों की कोई कमी नहीं रहती। परं वैरागी वह युवक अब सभी प्रकार के सुखों में निमग्न हो चुका है। अनगिनत भक्तों का एक ही विश्वास है कि वह अवतारी पुरुष निश्चय ही मुक्ति का माध्यम है।

"रोटिकां खादितुं
वृक्षतले सज्जीभवति श्रमिकः
यः बहुश्रमेण धनिक गृहकार्यं सम्पाद्य
विनिमयेन इमां रोटिकां संगृहीतवान्।
वृक्षस्य उपरि तिष्ठति काकः
तस्यैव दृष्टिः निपतति श्रमिकस्य रोटिकायाम्
सहसा काकः रोटिकाम् अपहृतवान्
अपहृतवान् तस्य श्रमं, श्रमस्य मूल्यम्।"[64]

धनवान् व्यक्ति के घरेलू कार्यों को अत्यन्त परिश्रमपूर्वक सम्पन्न करके रोटी खाने के लिए जब वह श्रमिक वृक्ष के नीचे बैठा। तो वृक्ष के ऊपर बैठा कौआ, जो अत्यधिक ऐश्वर्यशाली है, पराक्रमयुक्त है तथा जिसमें अनन्त शक्ति विद्यमान है उसकी दृष्टि श्रमिक की रोटी पर पड़ी और उसने अचानक रोटी का, श्रमिक के श्रम का, श्रम के मूल्य का तथा क्षुधा शान्त करने के लिए जो भी खाद्य पदार्थ था, उन सभी वस्तुओं का कौए ने अपहरण कर लिया।

समाज के शोषित तथा कमज़ोर वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला श्रमिक पूरे दिन कठिन परिश्रम करता है। उस परिश्रम का उसे उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता। जब वह येन–केन प्रकारेण अपनी क्षुधा शान्ति का प्रयास करता है तो यह भी शोषक वर्ग के लिए असहनीय होता है। कौआ प्रतीक है उच्च शोषक वर्ग का, वह श्रमिक का सब कुछ हड़प लेता है। उसका परिवार दाने–दाने के लिए मोहताज़ हो जाता है। यहाँ तक कि उसकी कृषि भूमि, उसकी फसल, श्रमिक का मकान तक हथियाने का प्रयास करता है साथ ही उसके परिवारजनों पर भी कुदृष्टि रखता है।

श्रमिक का करुण क्रन्दन उसका चीत्कार कोई नहीं सुनता। कोई भी उसकी रक्षा के लिए नहीं आता। रचनाकार का इस कविता में यह संदेश है कि कवि को भी पुरस्कार प्राप्ति हेतु काव्य–रचना में रत नहीं रहना चाहिए अपितु समाज में व्याप्त कुरीतियों और विषमताओं के लिए

आवाज़ मुखर करनी चाहिए। यह कवियों का ही उत्तरदायित्व है कि वह लोक जागरण का कार्य करे।

कञ्चुकिहृदयकथां नीरवे पठितुम्
अन्तर्वेदनां मदीयां परिज्ञातुमवबोद्धम्
कञ्चुकिजीवनं तुच्छम्
तुच्छादपि तुच्छम् ईश्वरस्य सृष्टौ
अन्येषाम् अनादरस्य जीवीकृतं पिण्डम्।
आत्मधिक्कारः यस्यैव प्रियगलहारः
मम पदे संसूच्यते हीनं पुरुषत्वम्
पृष्ठदेशे प्रजाकुलनासिकाकुञ्चनम्।[65]

अन्तःपुर का सेवक कञ्चुकी अपनी दैन्य अवस्था के विषय में बताता हुआ कहता है कि विशाल नगर में कञ्चुकी के हृदय की कथा को एकान्त में पढ़ने का प्रयास कोई नहीं करता। उसकी अन्तर्वेदना को जानने का कोई प्रयास नहीं करता। ईश्वर की इस सृष्टि में कञ्चुकी का जीवन तुच्छ से भी तुच्छ है। अन्य जन सदैव उसका अनादर करते हैं। मधुमेह के रोगी के लिए जिस प्रकार लड्डू होते हैं, उसी प्रकार उच्च स्थान पर अवस्थित होता हुआ वह सदैव निन्दा को प्राप्त करता है। आत्मधिक्कार ही उसके प्रिय गले का हार है। कञ्चुकी राज्य का दुःखी जन है। वह नगर का अकिञ्चन प्राणी है। सदैव एकान्त में क्रन्दन करता है। हीन पुरुषत्व होने से उसके पीछे से प्रजाजन नाक सिकोड़ते हैं। राजा के अंतःपुर का सेवक कञ्चुकी अपनी दुरावस्था का चित्रण करता है।

(छ) वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरूतदस्यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।[66]

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चारों वर्णों को विराट् पुरुष के चारों अङ्गों से उत्पन्न कहा गया है। मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। शिक्षा का कार्य ब्राह्मणों को, सुरक्षा का कार्य क्षत्रियों को उद्योग का कार्य वैश्यों को तथा उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा का कार्य शूद्रों को दिया गया।

प्राचीन हिन्दू धर्म में वर्ण व्यवस्था सामाजिक विभाजन का आधारस्तम्भ रही है। लोगों को उनके कार्यों के आधार पर वर्णों में विभक्त किया गया। ये सभी वर्ण अपना–अपना निर्धारित कार्य पूर्ण कुशलता से संपन्न करते थे, क्योंकि एक ही कार्य को पुनः–पुनः करने से वे उस कार्य में दक्ष

हो जाते थे। कार्यक्षेत्र निर्धारित होने से कोई भी किसी अन्य के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था। किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं होता था। अतः समाज में शान्ति व्यवस्था बनी रहती थी।

कालान्तर में वर्ण का स्थान जाति ने ले लिया। मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी जाति निर्धारित हो जाती है। किन्तु किसी भी प्रकार का व्यवसाय चुनने की उसे स्वतंत्रता होती है, रूचि के अनुसार ही वह अपना कार्यक्षेत्र चुनता है। जाति के आधार पर लोगों में भेदभाव किया जाता है। उच्च जाति के प्रतिष्ठित लोग निम्न जाति के लोगों की सदैव उपेक्षा करते हैं। निम्न जाति के लोग अधिकारविहीन समझे जाते हैं। इनकी स्थिति समाज में सदैव दयनीय बनी रहती है। जातियों की भी कई उपजातियाँ होती है, जिनकी अपनी अलग संस्कृति होती है।

उच्चजातियों (कुलीन वर्ग) को विशेषाधिकार प्राप्त थे और निम्न जातियों की स्थिति निकृष्टतम होती गई। समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया। शोषक वर्ग तथा शोषित वर्ग। डॉ. प्रमोद कुमार नायक की रचनाओं में वर्ण व्यवस्था को निम्नलिखित उदाहरणों के अंतर्गत समझा जा सकता है।

अत्यधिक सर्दी का समय था। द्वार पर कोई भिक्षुक भिक्षा माँग रहा था तथा उसका शरीर बहुत अधिक काँप रहा था। गृहस्वामी शास्त्रज्ञ तथा पण्डित था। द्वार खोलकर उसने भिक्षुक से उसका परिचय पूछते हुए कहा–

"कस्तस्य धर्मः?
यदि हिन्दुधर्मीयः तर्हि
ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः शुद्रो वा?
भिक्षुकः यदि ब्राह्मणः
कस्तस्य वेदः?
का च शाखा?
किञ्च गोत्रं तस्य?
कश्च प्रवरः?
निरुत्तरं भिक्षुकं पुनः असौ पृच्छति
भिक्षुकः आर्यः द्राविडो वा?
का च तस्य मातृभाषा?"[67]

तुम्हारा धर्म कौनसा है? यदि तुम्हारा धर्म हिन्दु है तो तुम्हारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में से कौनसा वर्ण है? यदि ब्राह्मण हो तो वेद कौनसा है? शाखा कौनसी है? और गोत्र कौनसा है? प्रवर कौनसा है? जब भिक्षुक से कोई उत्तर न मिला तो गृहस्वामी ने पुनः पूछा–आर्य हो अथवा द्रविड? मातृभाषा कौनसी है? इन सभी प्रश्नों ने भिक्षुक को और अधिक कंपायमान कर

दिया। वह पीड़ा से भूमि पर गिर गया। धरती माता ने बिना किसी प्रश्न के उसे अपनी गोद में धारण कर लिया।

"भूमिः किन्तु विना प्रश्नेन
स्वस्याः अङ्के तं धारयति।"[68]

प्रकृति सभी के साथ समानता का व्यवहार करती है। जाति, धर्म, वर्ण, संप्रदाय, गोत्र, प्रान्त तथा भाषा के आधार पर प्रकृति किसी के साथ भी किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करती है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, मेघ और वायु आदि बिना किसी स्वार्थ और वैरभाव के सभी प्राणियों का कल्याण करते हैं। लेकिन मनुष्य ने अपने तुच्छ स्वार्थों की सिद्धि हेतु जाति–पाति तथा ऊँच–नीच का भेद फैलाकर मानवीयता को ताक पर रख दिया है। दया, सहायता, प्रेम और करुणा जैसे मानवीय मूल्य लुप्त होते जा रहे हैं। मानवीयता ही सबसे बड़ा धर्म हैं।

"बुद्धिमान् शास्त्रसंकलको जनो जातः
ईश्वरस्य शतदलविमण्डितपद्ममुखात्,
दर्पी बली, राजदण्डधारी
प्रजायते नितरां वाहुभ्याम्।
अथ वैश्यो जायते उरुभ्याम्
किन्तु सखे!
ईश्वरस्य रत्नराशिविमण्डिते
सुदीर्घे शरीरे
नासीत् स्थानं दरिद्रस्य कृते।"[69]

ब्रह्मा जी के मुख से ब्राह्मणों की, भुजाओं से बलशाली, दर्पयुक्त तथा राजदण्डधारी क्षत्रियों की और जंघाओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई। किन्तु ईश्वर के सुदीर्घ शरीर में दरिद्र के लिए शूद्रों के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः अनिच्छापूर्वक अत्यधिक कष्ट के साथ दरिद्र को अपने दोनों चरणों से सृजित किया है तभी से उसकी स्थिति पदगत है।

"एका जातिः, मनुष्यस्य जातिः।
एका सृष्टिरीश्वरस्य सृष्टिः
एको धर्मो मानवीयधर्मः,
एकं शास्त्रमीश्वस्य वाक्यम्,
समानो मन्त्रः समितिः समानी.....।"[70]

एक ही जाति है, वह है मनुष्य जाति। एक ही सृष्टि है, ईश्वर की सृष्टि। एक ही धर्म है और वह है मानवीय धर्म। एक ही शास्त्र है ईश्वरीय वाक्य। समान भोगाधिकार से युक्त करता हुआ ईश्वर सबको यही समान उपदेश देते हैं कि तुम सबके विचार, संगठन, मन और चित्त समान हों।

वर्तमान समय में संप्रदाय के नाम पर समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों को ताक़ पर रखकर व्यक्ति केवल अपने व्यक्तिगत हितों को ही प्रोत्साहित कर रहा है। एक समुदाय के लोग दूसरे समुदाय के लोगों के प्रति शत्रुता तथा हिंसा का भाव रखते हैं। इन्हीं घटनाओं को प्रस्तुत उदाहरण में अभिव्यक्त किया गया है–

विभत्सिते गणसंहारे
प्राणभयेन शिशुत्रयं धावति
स्वकीयसुरक्षार्थम्।
तेषु एकस्य शिशोः उपरि
आक्रमणकाले
तस्य सम्प्रदायजनाः एव
शिशुं सुरक्षितवन्तः।
तथैवापि अपरस्य
शिशोः अवस्था
स तु जीवितः निर्दिष्टसम्प्रदायजनैः
संहरात्।
अन्तिमः शिशुः तथैव धावति
हठात् केषांचन आक्रमणं
तदुपरि विहितम्।
तदानीं तस्य सम्प्रदायविषये
तेषु केनिचित् पृष्टः असौ
कथयति–मानवः इति
तत्क्षणादेव सर्वेषां
मिलिताक्रमणेन शतधाच्छिन्नम्
अस्य शरीरम्।[71]

संप्रदायवाद की समस्या आज संपूर्ण विश्व में व्याप्त है। प्रत्येक व्यक्ति अपने समुदाय को उच्चतर समझता है। यह संप्रदायवाद व्यक्ति को मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से पंगु बना देता है, जिसके चलते वह मानवता को नहीं देख पाता है। जबकि सत्य तो यह है कि मनुष्यता ही सबसे बड़ा धर्म है। प्रान्त, जाति, धर्म तथा भाषा के आधार पर स्वयं को बाँटना संकीर्ण विचारधारा का ही द्योतक है। इन्हीं विचारों को कविवर नायक ने अन्यत्र भी अभिव्यक्त किया है–

दिनं दिनं क्षीयते मानवीयो धर्मः
आविर्भवन्ति नूतनाः सम्प्रदायाः
कलहायन्ते परस्परं गुरुगौरवाय।[72]

मानवीय धर्म प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है और नवीन संप्रदायों का उदय हो रहा है, जो परस्पर स्वयं को बढ़चढ़कर दिखाने के लिए कलह कर समाज में अशान्ति फैला रहे है।

जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद् द्विज उच्यते। अर्थात् मनुष्य शूद्र (छोटा) रूप में उत्पन्न होता है तथा संस्कार से ही द्विज बनता है। इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति युककीट के माध्यम से कवि ने इस प्रकार की है–

युककीटस्य कृते न कुत्रापि तिष्ठति श्रद्धा
नापि तस्य परिवर्त्तनाय यतते कः
अथ च सर्वत्र तस्य निन्दावाचनं
जुगुप्सिता प्रवृत्तिः आकुलीकरोति
हृदयकन्दरम्।
एकस्मिन् असुन्दरे कुले युककीटस्य जन्म
इत्येव तस्य दोषः, तस्य कर्मफलम्
यदर्थं सः अवहेलितः जगति।[73]

शूद्र वर्ण युककीट के प्रति किसी की भी श्रद्धा नहीं होती, न ही कोई उसके लिए प्रयत्न करता है। सर्वत्र उसे निन्दा के कटु वचन सहन करते होते हैं। संसार में सभी उससे घृणित भाव रखते हैं। सभी प्राणियों का ऐसा विश्वास है कि वह दुःख के भार को बढ़ाने वाला है। उस युककीट का दोष केवल यह है कि वह एक असुन्दर कुल में उत्पन्न हुआ है। उसी प्रकार तुच्छ वर्ण में उत्पन्न हुए मनुष्य भी सदैव समाज में अवहेलना तथा घृणा भाव ही प्राप्त करते हैं।

(ज) धर्माडम्बरता

सैंकड़ों की संख्या में विरल पक्षियों को पिंजरे में पकड़कर कोई कीरात विक्रय के लिए राजधानी आया। जब कीरात मार्ग में स्थित वृक्ष के नीचे पक्षियों को रखकर बैठा तो किसी संन्यासी ने वहाँ आकर किरात से कहा–

मैं बहुत दिनों तक हिमालय पर तपस्या करके अब राजधानी के निकट आश्रम को निर्माण करके रहता हूँ। मैंने शन्ति के स्वरूप तथा मुक्ति के मार्ग को अनुभव किया है सभी प्राणियों में नारायण का वास है। मनुष्य इस जन्म में किए गए पापकर्म को अगले जन्म में भोगेगा। इसलिए किसी भी प्रकार के अनुचित कर्म को नहीं करना चाहिए और हरिभक्ति में लीन रहना चाहिए। इसलिए पक्षियों को पकड़ना भारी पापकर्म है, जो जीवन को दूषित कर देगा।

संन्यासी के वचनों से विचलित कीरात ने कहा कि महाशय! यह तो हमारा वंशपरंपरागत कर्म है और इससे पहले किसी महात्मा ने मुझे इस प्रकार का उपदेश नहीं दिया। आपने ही प्रथमतया यह दिव्य ज्ञान मुझे दिया है अतः आप मेरे गुरु है। संन्यासी ने कीरात को अपने आश्रम में जाने का आदेश दिया और आश्रम के एक भाग से पक्षियों को मुक्त करने का आदेश दिया। पक्षीगण आनन्द से आकाश में उड़ने लगे। क्षणभर के अन्दर ही अधिकांश पक्षी पुनः जाल में पकड़ लिए गए। यह देखकर कीरात ज़ोर से चिल्लाने लगा– नहीं नहीं ऐसा नहीं करना चाहिए। इन्हें पकड़ने से व्यक्ति पाप का भागी बनता है। इस घटना की सूचना देने के लिए जब कीरात आश्रम की ओर गया तो उसे द्वारपाल ने रोक दिया और उस स्थान से निकाल दिया।

"कथनवाहुल्यमेतत् तस्य सन्न्यासिनः परामर्शेन प्रान्तरस्य पार्श्वप्रदेशे सूक्ष्मजालं तिष्ठति। एवम् उपायेन सः विहगान्, पशूनाम् अङ्गप्रत्यङ्गादिकं विदेशं संप्रेष्य वहुधनोपार्जनं करोति।"[74]

संन्यासी के आदेश पर आश्रम के पार्श्व भाग में एक सूक्ष्म जाल बिछाया गया था। इस उपाय से वह संन्यासी पशु–पक्षियों के अङ्गप्रत्यङ्ग विदेशों में भेजकर अत्यधिक धन अर्जित करता था।

हिन्दु धर्म में ऋषि, मुनि तपस्वियों को सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाता है। उनका उचित सत्कार किया जाता है। उनकी आज्ञा की तो राजा भी अवहेलना नहीं कर सकता, वह भी स्वयं उनके द्वारा आदिष्ट मार्ग का ही अनुसरण करता है। किन्तु वर्तमान समाज ऐसे उदाहरणों भरा पड़ा है जहाँ धर्म के नाम पर, पूजा–पाठ के नाम पर तथा सत्संग–प्रवचन की आड़ में गोरखधंधे चल रहे हैं। भोली–भाली जनता को लूटा जा रहा है। महिलाओं की इ़ज़्ज़त का सौदा किया जा रहा है और अधिकाधिक धनार्जन किया जा रहा है। केवल अपने ही देश में नहीं बल्कि

विदेशों में भी दिन प्रतिदिन ऐसे पाखण्डियों का कारोबार बढ़ता जा रहा है। संन्यासियों का कार्य तो समाजकल्याण है। वह तो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है स्वयं कामी होकर अर्थ के पीछे नहीं दौड़ता।

निर्वाण आश्रम के अध्यक्ष आचार्य भावानन्द अपने शिष्यों को आदेश देते हैं कि धनिक भक्तों के साथ उत्तम व्यवहार करना चाहिए। वे भक्तगण जिस प्रकार भी सन्तुष्ट हों उनकी इच्छापूर्ति होनी चाहिए। **"अथ च समागतेषु तेषु भक्तेषु एकः मद्यम् आनेतुम् आदिष्टवान् तं ब्रह्मचारिणम्।"**[75]

एक भक्त ने ब्रह्मचारी शिष्य को मदिरा लाने का आदेश दिया इस पर आचार्य ने कहा—

"भक्तानां कृते सर्वं करणीयं भवति।"[76]

ब्रह्मचारी विश्वकल्याण को आचार्य ने भी भक्त की इच्छापूर्ति का आदेश दे दिया वह दुःखी होकर विलाप करने लगा तो एक नवागत ब्रह्मचारी अरूपानन्द ने उसे संभाला। अचानक मंदिर के पश्चाद् भाग से आचार्य के चीत्कार का स्वर सुनायी दिया। वे अरूपानन्द की भर्त्सना कर रहे थे। शिष्य अपना पक्ष इस प्रकार प्रस्तुत कर रहा था—

"अहं यदि मार्गच्युतबाष्पीयशकटे मुमूर्षुभ्यः यात्रिभ्यः धनहरणं करिष्यामि, तर्हि मम अपराधः यथा क्षन्तव्यः नैव भवेत्, तथैवापि आश्रमस्य महिमा गौरवोज्ज्वलः नहि भविष्यति।"[77]

आचार्य ने अपने शिष्य को परधनहरण करने की शिक्षा दी। शिष्य के प्रदत्त उत्तर से असन्तुष्ट होकर उन्होंने चपेटाघात किया तथा शिष्य को धिक्कारा। अरूपानंद अपने विशाल कृषि क्षेत्र को बेचकर परम वैरागी होकर संन्यासी बनने हेतु इस आश्रम में प्रविष्ट हुआ था घर का त्याग करते समय अपनी माता का शुष्कवदन तथा रुग्ण पिता का व्याकुल क्रन्दन भी जिसका मार्ग न रोक पाये थे। आज उसे प्रतीत हुआ कि वह अरूपानन्द नहीं गोपाल (पिता प्रदत्त नाम) है। गोपाल जो सांसारिक रहता हुआ भी प्रातः सायं प्रभु पूजन में लीन रहता था। उसका प्रकृत आश्रम ग्राम में ही है। वह एक कृषक है। अब वह गाँव जाकर नदी तट पर भ्रमण करेगा, गीत गाएगा।

"क्षुद्रमायाग्रस्तसंसारात् आगत्य अत्र सुविशाले मायावर्ते यथा निपतिताः सन्ति। केवलम् अर्थसंग्रहः, भोगवादः यत्र त्यागस्य गैरिकवसने लुक्कायितः भवति।"[78]

संसार से विरक्त जन मुक्ति के लिए संन्यास की ओर दौड़ता है, जहाँ वह सांसारिक भोग—विलास, ऐश्वर्य तथा कामनाओं का त्याग कर सके, अपने मन को एकाग्रचित्त कर वह हरिभक्ति में लीन हो सके।

किन्तु आश्रम तो स्वयं ही अर्थ तथा भोग का केन्द्र बन चुका है। गेरुए वस्त्रों की आड़ में वहाँ सभी प्रकार के दुराचार तथा व्यसन व्याप्त हैं।

देवगुरु बृहस्पति सपरिवार रथयात्रा दर्शन के लिए मृत्युलोक में प्रस्तुत हुए। वे अत्यन्त आनन्दित थे कि मृत्युलोक में चिर शान्ति के साथ मनुष्य रहते हैं। धन्य है। मृत्यु लोकवासी। अपनी पत्नी तारा तथा पुत्र बुध के साथ गमन यात्रा प्रारंभ हुई। सर्वप्रथम पत्नी तथा पुत्र की इच्छानुरूप मर्त्यनन्दनकानन (भुवनेश्वर स्थित पशु–पक्षी पालन केन्द्र) गए। वहाँ प्रवेश पत्र खरीदकर भ्रमण कर सन्तुष्ट हुए। घोषयात्रा आरम्भ हुई। सभी सिंहद्वार के सम्मुख उपस्थित थे। बृहस्पति देव चकित हुए। जयविजय के स्थान पर विराजमान मानव द्वारपालों ने उनका मार्ग रोका।

"तथापि प्रचेष्टा कृता अन्तः प्रवेशाय। हठात् केनचित् द्वारपालेन विताडितः देवगुरुः भूमौ निपतितः।"[79]

प्रवेश की चेष्टा करने पर द्वारपाल द्वारा देवगुरु को भूमि पर गिरा दिया गया। पति की दुरवस्था देखकर पत्नी तारा व्याकुल हुई। वहाँ से अन्य द्वारदेश पर पहुँचे तो द्वारपाल ने प्रवेश पत्र के विषय में पूछा। किन्तु प्रवेश पत्र समाप्त हो चुके थे। यात्रा दर्शन के लोभ से देवगुरु निकट स्थित प्रासाद के ऊपर चढ़कर शोभायात्रा देखना चाहते थे।

"किन्तु हाय! तत्रापि दुर्दशा अवर्णनीया। कैश्चित् जनैः विताड़िताः एते। यतोहि तत् सर्वं स्थानं विशिष्टपुरुषाणां (V.I.P.) कृते सुरक्षितमासीत्।"[80]

किन्तु वहाँ पर भी लोगों ने यह कहकर देवगुरु को प्रताड़ित किया कि यह स्थान तो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लोगों के लिए सुरक्षित है। अत्यधिक कष्ट के साथ विशाल जनसमुद्र में रथयात्रा देखी गई। सन्ध्या समय क्लान्त परिवार वर्ग के लिए रात्रि व्यतीत करना ही दुष्कर कार्य हो गया।

धर्म के नाम पर विशाल आयोजन किए जाते हैं। जन समुदाय आमन्त्रित किये जाते हैं। किन्तु साधारण मनुष्य वहाँ भी भीड़ तले कुचला जाता है। उसकी स्थिति यह है कि उस भव्य आडम्बर युक्त आयोजन स्थल पर वह प्रवेश भी नहीं पा सकता। आयोजन स्थल पर समानता के भाषण दिए जाते हैं, सभी प्राणियों में ईश्वर के वास की बात की जाती है किन्तु वास्तविकता में उनकी अवहेलना की जाती है। स्वयं देवगुरु बृहस्पति की जब इस सृष्टि में ऐसी अवस्था हुई तो आमजन का तो कहना ही क्या यहाँ तो धर्म के नाम पर लोगों को छला जा रहा है।

वर्तमान युग में जीवन धारण करना अत्यन्त कठिन हो गया है अतः कुण्डोदरनाथ ने जटा धारण की और सब कुछ छोड़कर संन्यासी होकर गाँव से दूर आश्रम की स्थापना की। एक बार सायंकाल के समय एकान्त में प्रचुर मात्रा में गांजा (नशीला/मादक पदार्थ) का सेवन करने के पश्चात् अपने शिष्यों को निरन्नब्रह्मचारी (कुण्डोदरनाथ) उपदेश देता है कि इस कलयुग में पूर्ण रूप से अंधकार व्याप्त है केवल वही आलोक को प्राप्त करेगा, जो गुरुग्रहण करेगा।

"कस्य पुत्रः न भवति, कस्य कन्या ईदानीमपि अविवाहिता तिष्ठति, कस्य दशगर्भिणी धेनुः पुनः न प्रसवति इत्यादिषु विषयेषु पूजादिकं प्रदाय शिष्याः तस्मात् कृपां प्रार्थयन्ते। निरन्नः उपदिष्टवान् यत् कलिकाले न कश्चन जनः अन्यायोपार्जितं धनं विना जीवनयापनाय क्षमः भविष्यति विशेषतः राष्ट्रधने सर्वेषां दृष्टिः स्थासत्येव। परन्तु गृहितस्य धनस्य स्वल्पः अंशः यद्यपि कस्यापि सिद्धगुरोः निकटे प्रदीयते, तर्हि पापस्य प्रश्नः एव नास्ति।"[81]

किसके पुत्र नहीं होता, किसकी कन्या अभी तक भी अविवाहित है तथा किसकी धेनु पुनः प्रसव हेतु योग्य नहीं है। इन सभी समस्याओं का निराकरण निरन्नब्रह्मचारी करने लगा। अपने शिष्यों को अन्याय द्वारा धन अर्जित करने की वह शिक्षा देता है और उस पापकर्म से अर्जित धन का स्वल्प भाग सिद्धगुरु को दिया जाए ताकि व्यक्ति पाप का भागी न बन सके।

धर्म के नाम पर भगवा वस्त्र धारण करना, माला और तिलक लगाना, जटा धारण करना तथा सभाओं में प्रवचन और उपदेशादि देकर अपने वास्तविक जीवन में ये आडम्बर युक्त संन्यासी अत्यन्त कामुक प्रवृत्ति वाले तथा अधिकाधिक धन एकत्रित करने की चेष्टा करते हैं। इनके अनुयायी भी इनके द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते हैं। संसार के सभी प्रकार के भोग तथा रसों में ही आसक्त रहते हैं। धर्म की आड़ में आम जनता को मूर्ख बनाया जाता है। उनका लाभ उठाया जाता है।

हमारे देश भारत में सदैव ही धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म ने ही हमारे सामाजिक जीवन को नियंत्रित किया है। किन्तु वर्तमान समय में धर्म के ठेकेदार तथा पण्डितजन ढोंग, पाखण्ड तथा आडम्बर का चोला धारण कर जनता को भ्रमित कर रहे हैं। उनके लिए धर्म व्यवसाय का साधन मात्र बनकर रह गया है। निर्दोष जन की आस्था तथा श्रद्धा का लाभ उठाकर ये धर्माधिकारी गैर–कानूनी कार्यों में लगे हुए हैं, जिनमें यौन शोषण, नशीले पदार्थों का प्रयोग, आर्थिक शोषण आदि प्रमुख हैं–

अभियोगकारी उक्तवान्–अहमाजन्मब्रह्मचारी। मम पिता बालब्रह्मचारी। तस्य पिता शिशुब्रह्मचारी। मम मठस्य सम्पत्तिं दरिद्रशर्मा अपहरति इति हेतोः ग्रामसभा अस्मिन् विषये विचारयतु।

प्रथमतः सा आजन्मब्रह्मचारिणम् अपृच्छत् भवन्तः सर्वे एव ब्रह्मचारिणः। कथं तर्हि विवाहः क्रियते? यदि विवाहं कृत्वा पुत्रमुत्पादयन्ति, तर्हि कथं ब्रह्मचारिणः भवन्ति।[82]

ग्राममुख्य की द्वादश वर्षीया कन्या इस समस्या के समाधान हेतु आजन्म ब्रह्मचारी से विवाह तथा सन्तानोत्पत्ति विषयक प्रश्न पूछा तो आजन्मब्रह्मचारी ने उत्तर दिया कि यह सब प्रभु की इच्छा है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने अपनी सृष्टि को परिवर्द्धित करने के लिए हमें निमित्त बनाया है, मेरे आठ पुत्र मठ में ब्रह्मचारी रूप में निवास करते हैं। उनकी चार माताएँ प्रयत्नपूर्वक उनका पालनपोषण करती हैं। नारी मुख दर्शन तो मुझ जैसे ब्रह्मचारियों के लिए पाप है।

प्रस्तुत उदाहरण वर्तमान समय में साधु–संन्यासियों तथा व्यभिचारी बाबाओं का वास्तविक वर्णन करने वाला है। ईश्वर के नाम पर ये ठगी तथा ढोंगी संत अधिकाधिक धनार्जन में लगे हैं, इनमें से कुछ अपने दुष्कर्म को कारावास में भी भोग रहे हैं।

भौतिक सुख–सुविधाओं में लिपटे, विलासी, धर्म का व्यापार करने वाले, दुष्कर्म के आरोपी बने धर्म के ठेकेदार आमजन को भ्रमित कर अपने स्वर्ण पाश में सरलता से बाँधकर अपने साम्राज्य का विस्तार करते रहते हैं–

एकदा सायंकाले वनदेशे
केनापि सह तस्य साक्षात्कारः जातः
तदारभ्य युवकः
वैरागित्वेन परिवर्त्तितः
ईदानीं तस्य निकटे
धनस्य वा आज्ञावहभृत्यस्य
अभावः नहि।
सकलसुखनिमग्नः युवकः
अधुना परमवैरागी
सः खलु मुक्तेः माध्यमः अवतारी पुरुषः
इति अगणितभक्तानाम्
एक एव विश्वासः।[83]

वैरागी के रूप में परिवर्तित हुए युवक के समीप धन तथा आज्ञाकारी भृत्यों का अभाव नहीं है। संपूर्ण सुखों में निमग्न भी वह परम वैरागी है। अनगिनत भक्तों का एक ही विश्वास है कि निश्चय ही यह अवतारी पुरुष मुक्ति का मार्ग है।

देश की धार्मिक स्थिति वर्तमान समय में विस्फोटक बनी हुई है। धर्म का आदर्श रूप आज लुप्त हो गया है और कोई भी शक्ति इसे सुधारने में सक्षम नहीं है।

(झ) कर्म प्रधानता

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।"[84]

कुरुक्षेत्र में युद्ध से पराङ्मुखी अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण कर्म का उपदेश देते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं कि कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

व्यक्ति अपने जीवन में जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह उसके कर्मों का ही प्रतिफल होता है। व्यक्ति ने कहाँ जन्म लिया? उसकी जाति कौन सी है? उसका धर्म, प्रान्त, शिक्षा, व्यवसाय तथा संस्कृति सभी कुछ गौण हैं। केवल कर्म ही उसे महान् बनाते हैं। कर्म से ही व्यक्ति की पहचान होती है। बिना फल की अथवा कार्यसिद्धि की इच्छा किए निरन्तर कर्मशील बने रहने पर व्यक्ति अपने गन्तव्य पर एक दिन पहुँच ही जाता है। कोई भी कार्य छोटा अथवा बड़ा नहीं होता अतः कर्म के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपने जीवन में सदैव कर्मण्य बने रहना चाहिए। ताकि हम अपने देश का नाम विश्वपटल पर अङ्कित कर सकें। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है– 'सकल पदारथ एहि जग मांही करमहीन नर पावत नांही।'

"तपस्या एव साधनायाः परमं सोपानम्
जीवनस्य अतीन्द्रिया शक्तिः
यया रत्नाकरः वाल्मीकिरुपेण
युककीटः चित्रपतङ्गत्वेन परिवर्त्तते
नूतननाम्ना परिचयं लभते।"[85]

रत्नाकर नाम के डाकू ने अपने दुष्ट कर्मों को त्यागा और निरंतर तपस्या के माध्यम से वाल्मीकि के रूप में प्रसिद्ध होकर रामायण जैसे ग्रन्थ की रचना कर डाली, संपूर्ण विश्व में जिसका कोई सानी नहीं है। उसी प्रकार संसार में घृणित अवस्थिति वाला तथा दुःख के भार को बढ़ाने वाला युककीट (जोंक) असुन्दर कुल में जन्म लेता है, यही उसका दोष है सर्वत्र उसकी निन्दा होती है। यह उसी के कर्मों का फल है कि संसार में उसकी अवहेलना होती है। इसके पश्चात् भी युककीट निरुत्साहित नहीं होता और न ही कभी अपने जन्मकुल की निन्दा करता है। स्वयं के सुख तथा शान्ति का त्याग करके वह अपने आपको तपस्या में नियोजित करता है। तपस्या के माध्यम से वह अन्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। युककीट के स्थान पर सम्पूर्ण श्रद्धा

तथा अत्यधिक स्नेह का पात्र चित्रपतङ्ग आविर्भूत होता है। जिसका मनोहर रूप सभी के चित्त का हरण करता है, सभी मंत्र मुग्ध हो जाते है और वह एक नवीन परिचय को प्राप्त करता है।

किसी भी कुल में जन्म लेने से व्यक्ति के भविष्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता अपितु व्यक्ति वही बनता है, जो वह बनना चाहता है। निरंतर प्रयास करके व्यक्ति अपने साध्य को प्राप्त कर लेता है। संस्कृत की सूक्तियाँ भी सदैव कर्मण्यशील बने रहने की प्रेरणा देती है। यथा– **'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः'।**

सुप्त सिंह के मुख में जीव स्वयं प्रवेश नहीं करता उसके लिए उसे स्वयं प्रयत्नशील होना पड़ता है।

'कविः' यह कथा संदेश देती है कि कवि का कर्म लोकजागरण है। अपनी लेखनी के माध्यम से यथा स्थिति वर्णन कर सभी का ध्यानाकर्षण करना ही कवि धर्म है न कि अर्थ प्राप्ति हेतु राजाओं का यशोगान करना। कवि का कार्य यह है कि वह किसी भी परिस्थिति में अपने कर्त्तव्यपथ का त्याग न करे। अपने सिद्धान्तों तथा आदर्शों के साथ आमजन को वास्तविकता से परिचित करवाये।

महाराज यशोधन के राज्य में जो कवि राजा पर आधारित प्रशस्तिमूलक काव्य लिखता था। वह समाज में सम्मान तथा ख्याति प्राप्त करता था। प्रशस्तिकाव्य से प्रसन्नचित्त राजा भी उन कवियों को आर्थिक सहायता तथा विभिन्न उपाधियों अथवा पुरस्कारों से सन्तुष्ट करता था। वहीं ब्रह्मदत्त नाम का कवि जो कि अत्यन्त प्रतिभाशाली था वह कभी भी राजा की स्तुति में कविता नहीं लिखता था, अतः उसकी स्थिति अधिक कष्टदायी थी। ब्रह्मदत्त की पत्नी ने एक दिन ब्रह्मदत्त से कहा कि आज भोजन के लिए घर में कुछ नहीं है। पत्नी चेतना दिनोंदिन रोगग्रस्त हो गई। अब ब्रह्मदत्त के समक्ष कोई भी मार्ग नहीं था। एक पक्ष में कवि का आत्मसम्मान और दूसरी ओर बीमार पत्नी चेतना। जहाँ भोजन की ही व्यवस्था न हो वहाँ औषधियों का तो प्रश्न ही कहाँ?

"तद्दिने चेतनायाः दुरवस्थां दृष्ट्वा क्रन्दति कविः। वैद्यस्य गृहं धावति औषधार्थम्। अर्थं विना कथं वा सः औषधं दद्यात्? अथ च भाग्यस्य उपहासः अतीव निष्ठुरः। प्राणप्रिया चेतना तं विहाय अमरपुरं गतवती।

भग्नहृदयः कविः इदानीं नैव क्रन्दति। श्मशाने चिताग्निः प्रज्वलति। तत्रैव चेतनां संस्थाप्य स्वकीयकाव्यजालं परिगृह्य स्वयं प्रविशति।"[86]

कविब्रह्मदत्तः की यह कथा बड़ी ही मार्मिक है, जो वर्तमान समाज के वास्तविक स्वरूप का रेखाचित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करती है। धन के अभाव में वह न केवल पत्नी चेतना को खो देता है, अपितु स्वयं भी अपने जीवन की इहलीला को समाप्त कर लेता है।

अर्थ की प्रधानता ने योग्यता को घुट–घुट कर मर जाने को मजबूर कर दिया है। आज का युग दिखावे का युग है। स्वार्थ प्रत्येक क्षेत्र में हावी हो चुका है।

स्नेहिराम एक हास्य अभिनेता है। जीर्ण घर में उसकी वृद्ध तथा रोगी माता खाट पर लेटी हुई है। घर में भोजन की व्यवस्था न कर पाने से पत्नी का मुख शुष्क तथा अत्यन्त मलिन है। निराश पुत्र पुनः पुनः खिलौना पाने का हठ कर रहा है, उसे विद्यालय भेजने की भी व्यवस्था नहीं हो पा रही है और स्वयं स्नेहिराम के वस्त्र छिन्न–भिन्न हैं।

"रहसि स्नेहिरामः अन्तर्गतं वाष्पं त्यक्त्वा चिन्तयति–मम जीवने कियद् दुःखम्। कियत् कष्टम्! कदा परिसमाप्तिः भविष्यति दुःखस्य वा जीवनस्य!!"[87]

इस प्रकार की दयनीय अवस्था में हास्य अभिनेता स्नेहिराम ने अपनी कर्म प्रधानता को नहीं छोड़ा। नाटक जगत में वह एक अविस्मृत अध्याय है एक बार जो उसके हास्य अभिनय को देखता है, वह उसे कभी नहीं भूल सकता। सर्वत्र वह प्रशंसा और सम्मान पाता है। जिस नाटक में वह अभिनय नहीं करता वह नाटक दर्शक शून्य हो जाता है। उसका अभिनय देखकर लोग हँसते हैं और अपना दुःख–दर्द भूल जाते हैं। सभी दर्शक ऐसा विचार करते हैं कि स्नेहिराम का जन्म लेना सफल है, उसके जीवन में दुःख की सत्ता नहीं है। वह स्वयं भी हँसता है तथा दूसरों को भी हँसता है।

एक हास्य अभिनेता के जीवन का कटु सत्य इस कथा में देखने को मिलता है। वह स्वयं कितना भी दुःखी है, उसका जीवन कष्टपूर्ण है, फिर भी वह अपना कार्य पूर्ण निष्ठा तथा ईमानदारी से कर रहा है।

जिस प्रकार दर्पण में आकाश की असीमता, सूर्य की प्रखरता, चन्द्र की कोमलता तथा समुद्र की उदारता देखी जा सकती है। दर्पण जिस प्रकार से मनोरम प्रकृति के दर्शन करवाता है उसी प्रकार से गलित शव के स्वरूप को भी प्रतिबिम्बित करता है। यही उसका महान् गुण है कि वह अपने प्रतिबिम्ब में सभी का स्वागत करता है। किसी प्रकार का भ्रुकुंचन नहीं करता। जो जैसा है उसे उसी रूप में प्रकट करता है यही उसकी कर्म प्रधानता है।

उसी प्रकार साहित्य भी समाज का साक्षात् दर्पण है।

"साहित्यं कदापि केवलं धीमतां विनोदाय
न भवति, कस्याः अपि संगोष्ठ्याः पैतृकं
धनं न भवति, साहित्यमेव दर्पणः
समाजस्य मूर्त्तिमद् दर्पणः भवति
अत्र सर्वेषां समानः प्रतिबिम्बः निपतति
शासकस्य वा शासितस्य।"[88]

साहित्य समाज का मूर्तिमत् दर्पण है इसमें शासक हो अथवा शासित सभी समान भाव से प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐश्वर्य का, दरिद्र का, रणप्रिय राजा के शौर्य का, राजबाला की अलौकिक शोभा, विरहणी नायिका की मनोव्यथा का, अत्याचारी शासक के कुशासन का, दुःखीजन के अभाव का, मरणोन्मुखी माता की तीव्र यन्त्रणा का, अपहर्त्ता के छद्म वेश का तथा चोर की प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

समाज का प्रिय अथवा अप्रिय किसी भी रूप को जस का तस पाठकों के समक्ष उपस्थित करना ही साहित्य का धर्म है। साहित्य ही वह सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा किसी भी समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक गतिविधियों के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। साहित्य में विचारों की अभिव्यक्ति होती है। साहित्य समाज तथा संस्कृति दोनों को सार्थक दिशा प्रदान करता है।

"प्रवेशद्वारदेशे शोभमाने नामफलके
भूतपूर्वः इति लिखितं भवति
एष एव शब्दः सूचयति
अतीतस्य प्रभुताम् आधिपत्यम्।"[89]

कर्म की ही प्रधानता होती है। यथार्थ शासक वर्तमान ही होता है। पहले अर्थात् जब व्यक्ति पदारुढ़ होता है तब सभी जन उसके समक्ष बद्धांजलि उपस्थित रहते हैं। अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हैं। सर्वत्र मान–सम्मान प्राप्त होता है। घर–बाहर सभी स्थानों पर उसकी आज्ञापालन होता है तथा वह स्वयं भी विश्वस्त होता है किन्तु जैसे ही घर के प्रवेश द्वार पर नामफलक के आगे भूतपूर्व लिख दिया जाता है, परिस्थितियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। अब वहाँ किसी प्रकार का कोलाहल सुनायी नहीं देता और न ही कोई निवेदक वहाँ दिखाई पड़ता है। बुलाने पर भी विश्वस्त सेवक कार्य की अधिकता से दूर भागते हैं।

अतः व्यक्ति का सम्मान नहीं है, उसकी जय–जयकार अथवा गुणगान नहीं है अपितु अपने पद पर रहते हुए जिन कार्यों को वह करता है वही महनीय हैं। कर्त्तव्य से हीन जन महत्त्वहीन समझा जाता है।

"वर्षणकाले मेघः कदा
नहि चिन्तयति भविष्यतः मुहूर्त्तं
तस्य विलासार्थं विभवस्य आवश्यकतां
यतो हि
सः वर्षण–रसिकः
वर्षणम् एव तस्य सृष्टेः सार्थकता।"[90]

मेघ सन्तप्त हृदय जनों के क्लेश का नाश करने के लिए लवणाक्त सागर के वक्ष से केवल अमृत को परिश्रमपूर्वक चुनते हैं। दूसरों की यातना को अपने अन्तर्मन में अनुभव करते हैं। अत्यधिक कष्ट से संचित धन को वर्षा के माध्यम से अन्यों में वितरित करते हैं। विफल जल से विवर्द्धित मेघ अपनी उदारता से वंश परंपरा का अनुसरण करते हुए सदैव कर्त्तव्यपालन करते हैं।

मनुष्य ही नहीं वरन् प्रकृति भी अपने कर्त्तव्यपालन में तत्पर रहती है। सूर्य तथा चन्द्रमा का अपने नियत समय पर निकलना तथा निर्धारित समय पर अस्त होना उसी प्रकार मेघों का यथासमय वर्षण कर्म प्रधानता के ही उदाहरण हैं। यदि मेघ जलवितरण में कार्पण्यता का अनुभव करें पृथ्वी पर धान्य की उत्पत्ति नहीं होगी। सभी प्राणी जल के लिए त्राहि–त्राहि करेंगे और चातक पक्षी की जलाभाव में निम्नतम अवस्था में पहुँच जाएगा।

'आदिभाषाप्रसङ्ग' कथा में व्यङ्ग्य के माध्यम से अपना कार्य निष्ठा तथा ईमानदारी से करने की शिक्षा दी गई।

"अमृतं संस्कृतं मित्र!
सरसं सरलं वचः।
भाषासु महनीयं यद्
ज्ञानविज्ञानपोषकम्।।"[91]

संस्कृतभाषा को अमृत के समान वचन वाली, सरल, सरस, सभी भाषाओं में महान् तथा ज्ञान–विज्ञान का पोषण करने वाली माना जाता है। यह भाषा अन्य सभी भाषाओं की जननी है। रामायण, महाभारत, चारों वेद, पुराण, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्रों से यह भाषा समृद्ध है। इनके अतिरिक्त गणित, रसायन, खगोल, विमान तथा वास्तु से संबंधित ज्ञान के भण्डार संस्कृत भाषा में ही सुरक्षित हैं।

किन्तु वर्तमान में संस्कृत भाषा के महत्त्व में गिरावट आयी है। संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार का तथा इस भाषा के महत्त्व को अक्षुण्ण बनाए रखने का उत्तरदायित्व जिन संस्कृत भक्तों को दिया गया वे स्वार्थ के वशीभूत हो गए हैं।

"एषा भाषा तिष्ठतु न तिष्ठतु नाम, तत्र कदापि चिन्ता मास्तु। यथा अस्माकं पदोन्नतिः स्यात्, यथा वयं सुखेन जीविष्यामः, अस्माकं सुमहती ख्यातिः यथा सर्वत्र प्रचरिष्यति, तदर्थमेव सर्वे एकत्रिताः सन्तः यत्नशीलाः भवन्तु।"[92]

अधिकाधिक धनार्जन, स्वयं की पदोन्नति, प्रसिद्धि प्राप्ति तथा सुखपूर्वक जीवनयापन करने की लालसा में व्यक्ति अपने वास्तविक कर्त्तव्यों से पराङ्मुखी हो गया है। यदि इसी प्रकार चलता रहा तो यह देवभाषा कहीं लुप्त न हो जाए। रचनाकार की यह चिन्ता उपयुक्त ही है।

साहित्य के मर्म को जानने वाले कवि की कर्मप्रधानता का वर्णन करते हुए कविवर नायक जी कहते हैं–

"साहित्यसाधना धनिकानां पादतले न भवति अथ च साहित्यिकः स्वाभिमानी भवेत् इति तस्य परमः विश्वासः। पाठकानाम् अभिमतं खलु साहित्यिकस्य श्रेष्ठः पुरस्कारः इति चिन्तयति विद्याधरः।"[93]

कथानायक विद्याधर को विश्वास है कि साहित्य साधना धनवानों का गुणगान् अथवा प्रशंसा काव्य नहीं है। जिस साहित्यिक रचना को पाठकवर्ग में सम्मान प्राप्त हो, तो वही रचनाकार का भी श्रेष्ठ पुरस्कार होता है। प्रस्तुत कथा साधना में दो चरित्र हैं। पहला चरित्र विद्याधर जो गंभीर साधना में निमग्न होकर नवीन कविता कीरचना पूर्ण निष्ठा तथा ईमानदारी से करता है, उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय प्रतीत होती है। दूसरा चरित्र जो विद्याधर का ही सहपाठी है रत्नदेव, जो मन्त्रियों अथवा श्रेष्ठियों का यशोगान करता है, वह अत्यधिक सम्मान, बहुत से पुरस्कार तथा विपुल अर्थराशि प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति कर्मप्रधान है अर्थात् कर्म सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल वह प्राप्त करता है। मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता होता है। मनुष्य ही नहीं वरन् पशु–पक्षी भी अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करते हैं–

सृष्टिरक्षा एव चातकस्य धर्मः
तस्य संकल्पः, तदर्थं सः अङ्गीकारवद्धः
तप्तधरायाः प्रतिनिधिः चातकः, निवेदयितुं
यथार्थं दुःखमवबोधयितुम्।

क्षुद्रस्यापि जीवस्य कीदृशः कर्त्तव्यबोधः
कीदृशी लोकहितैषिणी ममता।[94]

चातक जैसा क्षुद्र जीव, जिसका धर्म सृष्टि की रक्षा करना है वह तीक्ष्ण धूप में दूर आकाश में जाकर जल की याचना करता है। उसकी प्रार्थना फलवती होती है मेघ जल प्रदान कर पृथ्वी को शस्यश्यामला कर देते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में चातक जैसे लघु पक्षी की कर्त्तव्यपरायणता का सुन्दर चित्रण किया गया है।

इस संसार में जो बात जैसी दिखाई दे रही है उसका बिना किसी डर अथवा दबाव के जैसे का तैसा वर्णन कर देना ही कवि का कर्म है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि जब कवि भावनाओं के प्रसव से गुज़रते हैं, तो कविताएँ प्रस्फुटित होती हैं। राष्ट्र के उत्थान में कवि की भूमिका महनीय मानी गई है–

कविः करिष्यति प्रतिवादं न्यायसंरक्षणे?
कविरद्य मग्नः सखि!
नारीकुच–जानु–कटि–सौन्दर्यवर्णने
अथ असत्यं छादयितुं
कविरद्य संयोजयति दुर्बोध्यकविताजालम्
यतते वा परिलब्धुं महार्घं पुरस्कारं
ददाति यं काकः कुलख्यातिवर्द्धनाम।
अतः कविरद्य असमर्थः
प्रतिवादाय काकस्य निकटे।
कवेर्मौनात् परिव्याप्तः भ्रष्टाचारः
विवर्द्धितः हिंस्रजनप्रचण्डप्रकोपः
न श्रूयते शान्ति–मैत्री–दया–क्षमास्वरः
कथं निद्राभङ्गः: भवेत् नवजातकानाम्।[95]

प्रस्तुत उद्धरण में स्पष्ट किया गया है कि एक कवि का प्रधान कर्म है कि वह नारी के सौन्दर्य वर्णन अथवा महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों की प्राप्ति हेतु प्रशंसा काव्यों की रचना न करे क्योंकि कवि के मौन रहने से समाज में भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाता है। अतः कवि को समाज की यथास्थिति का वर्णन अपनी रचनाओं में करना चाहिए। कवि की लेखनी न्याय तथा सत्य की पोषक हो तथा विसंगतियों पर दृष्टिपात करने वाली हो ताकि सभी का ध्यान उन बुराईयों की ओर आकृष्ट हो तभी समाज व देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

♦ ♦ ♦ ♦

सन्दर्भ

1. निराला काव्य में मानवीय मूल्य और दर्शन, डॉ. देवेन्द्र नाथ त्रिपाठी, पृ.सं.–11
2. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, खण्ड 22, पृ.सं.–962
3. जोसेफ एच. फीचर, सोशियोलॉजी, पृ.सं.–204
4. मानवतावाद तथा मानवतावाद, बृजभूषण शर्मा, पृ.सं.–90
5. ममता गुप्ता, गुरु गोविन्द सिंह के काव्य में जातीय संघर्ष, पृ.सं.–208
6. The Frontions of social sciences, Mukherjee & B. Singh- P.23
7. मानवमूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, पृ.सं.–24
8. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्यमूल्य डॉ. रामजी तिवारी, पृ.सं.–14
9. निराला काव्य में मानवमूल्य और दर्शन, डॉ. देवेन्द्रनाथ त्रिपाठी, पृ.सं.–15
10. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिज़न एण्ड इथिक्स, खण्ड–12, पृ.सं.–584
11. निराला काव्य में मानवीय मूल्य और दर्शन, डॉ. देवेन्द्र नाथ त्रिपाठी, पृ.सं.–11
12. कथासप्ततिः, भातृप्रेम, पृ.सं.–1
13. कथासप्ततिः प्रेम, पृ.सं.–13
14. कथासप्ततिः प्रेम, पृ.सं.–13
15. कथासप्ततिः – अशुभपुत्रः, पृ.सं.–16
16. कथासप्ततिः परिचयः, पृ.सं.–21
17. रुचिरा भाग–3, दशमः पाठः–नीतिनवनीतम्, पृ.सं.–69
18. कथासप्ततिः प्रभावः, पृ.सं.–24
19. भर्तृहरि–नीतिशतकं– पृ.सं.–23
20. कथासप्ततिः ग्रामस्यपुत्रः, पृ.सं.–29
21. शेमुषी कक्षा–9, पंचमः पाठः– सूक्तिमौक्तिकम्, पृ.सं.–32
22. कथासप्ततिः अभिजात्यम्, पृ.सं.–34
23. उवाच कण्डुकल्याणः–श्रीकृष्णस्य दुर्गतिः, पृ.सं.–28–29
24. गर्त्तः – कथं लिखिष्यति?, पृ.सं.–8
25. दारिद्यशतकम्, पृ.सं.–29
26. मनुस्मृति, 3/56
27. गर्त्तः – युगकेलिः, पृ.सं. 22
28. गर्त्तः–विमाता, पृ.सं.–50
29. गर्त्तः–नारी, पृ.सं.–51

30. शबरी—स्मृतिः, पृ.सं.—26

31. शबरी—विश्वसुन्दरी— पृ.सं.—71

32. कथासप्ततिः रूपाजीवा, पृ.सं.—3

33. कथासप्ततिः रूपाजीवा, पृ.सं.—3

34. कथासप्ततिः रूपाजीवा, पृ.सं.—3

35. कथासप्ततिः—जननी, पृ.सं.—23

36. कथासप्ततिः—जननी, पृ.सं.—23

37. कथासप्ततिः—उत्तराधिकारः, पृ.सं.—40

38. कथासप्ततिः—उत्तराधिकारः, पृ.सं.—40

39. कथासप्ततिः—पापिनी, पृ.सं.—45

40. कथासप्ततिः पत्रम्, पृ.सं.—54

41. कथासप्ततिः पत्रम्, पृ.सं.—54

42. उवाच कण्डुकल्याणः, क्रन्दति अनुनासिकः, पृ.सं.—10

43. उवाच कण्डुकल्याणः, क्रन्दति अनुनासिकः, पृ.सं.—12

44. उवाच कण्डुकल्याणः, क्रन्दति अनुनासिकः, पृ.सं.—12

45. शबरी, नवोढा, पृ.सं.—8

46. लोकभाषा सुश्रीः, आमन्त्रणम्, पृ.सं.—9

47. दारिद्रयशतकम्, पृ.सं.—44—45

48. दारिद्रयशतकम्, पृ.सं.—45

49. गर्त्तः—झंझा, पृ.सं.—37

50. गर्त्त, झंझा, पृ.सं.—37

51. गर्त्त, झंझा, पृ.सं.—60

52. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—155

53. कथासप्ततिः, अस्पृश्यः, पृ.सं.—1

54. कथासप्ततिः—परिवर्त्तनम्, पृ.सं.—4

55. कथासप्ततिः—सेवा, पृ.सं.—5

56. कथासप्ततिः—हरिकीर्त्तनम्, पृ.सं.—50

57. कथासप्ततिः—हरिकीर्त्तनम्, पृ.सं.—50

58. शबरी — छागः, पृ.सं.—76

59. गर्त्तः — ईश्वरः, पृ.सं.—24

60. शबरी – देवशिशुः, पृ.सं.–13

61. शबरी – मन्दिरं निर्माति राजा– पृ.सं.–49

62. उवाच कण्डुकल्याणः – अथ च कृषकः, पृ.सं.–63

63. गर्त्तः–बैरागी– पृ.सं.–67

64. शबरी–कविः, पृ.सं.–22

65. शबरी–कञ्चुकी, पृ.सं.–57–58

66. ऋग्वेद–मण्डल 10 अध्याय–7, सूक्त–90, मंत्र–12

67. गर्तः–भिक्षुकः, पृ.सं.–58

68. गर्त्तः–भिक्षुकः, पृ.सं.–58

69. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–75

70. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–76

71. गर्त्तः – सम्प्रदायः, पृ.सं.–63

72. दारिद्र्यशतकम्– पृ.सं.–141

73. शबरी–तपस्या, पृ.सं.–1

74. कथासप्ततिः–मुक्तिदाता, पृ.सं.–14

75. कथासप्ततिः–माया, पृ.सं.–44

76. कथासप्ततिः–माया, पृ.सं.–44

77. कथासप्ततिः–माया, पृ.सं.–44

78. कथासप्ततिः–माया, पृ.सं.–44

79. उवाच कण्डुकल्याणः–दुर्दशा देवगुरोः, पृ.सं.–45

80. उवाच कण्डुकल्याणः–दुर्दशा देवगुरोः, पृ.सं.–45

81. उवाच कण्डुकल्याणः–लोक लीला, पृ.सं.–74

82. लोकभाषा सुश्रीः – निमित्तमात्रम्, पृ.सं.–10

83. गर्त्तः, वैरागी– पृ.सं.–67

84. श्रीमद्भगवदगीता – अध्याय 2 – श्लोक संख्या–47

85. शबरी–तपस्या, पृ.सं.–2

86. कथासप्ततिः–कविः, पृ.सं.–6

87. कथा सप्ततिः – हास्याभिनेता, पृ.सं.–19

88. गर्त्तः–दर्पणः, पृ.सं.–54

89. गर्त्तः–भूतपूर्वः, पृ.सं.–64

90. शबरी–मेघः, पृ.सं.–85

91. रुचिरा भाग–2, त्रयोदशः पाठः, अमृतं संस्कृतम्, पृ.सं.–72

92. लोकभाषा सुश्रीः–आदि भाषा प्रसङ्गे, पृ.सं.–24

93. कथासप्ततिः–साधना, पृ.सं.–20

94. गर्त्तः – चातकः, पृ.सं.–69

95. शबरी–कविः, पृ.सं.–23–24

तृतीय अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक मानवीय मूल्यबोध

सेवाधर्मे सन्नद्धाः हि प्राणाः
संस्कृतिः या अतिमनोरमा
जीवप्रीतिः सम्पत्तिः यदीया
विश्वहिते मतिः यस्याः
स्वकर्मणि सततं निमग्ना।

तृतीय अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक मानवीय मूल्यबोध

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'।[1]

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति है, जो संभवतः 5,000 वर्ष पुरानी है। विश्व के अन्य देशों की संस्कृतियाँ समय की धारा में प्रवाहित हो गईं किन्तु भारतीय संस्कृति अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ आज भी अजर तथा अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को समाहित कर अपने मूल अस्तित्व को भी सुरक्षित रखा है। भारतीय संस्कृति की सहिष्णु प्रकृति ने उसे दीर्घायु तथा स्थायित्व प्रदान किया है। भारतीय संस्कृति व्यक्ति–समाज–राष्ट्र के जीवन का सिंचन कर उसे पल्लवित–पुष्पित तथा फलयुक्त बनाने वाली अमृत स्रोतस्विनी चिरप्रवाहिता सरिता है।

आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय, अनेकता में एकता, ग्रहणशीलता, प्राचीनता, निरंतरता, लचीलापन एवं सहिष्णुता, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना, लोकहित, विश्वकल्याण तथा पर्यावरण सुरक्षा आदि भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। मानव को मानव बनाने का श्रेय सांस्कृतिक मूल्यों को ही जाता है। दया, प्रेम, त्याग, परोपकार, राष्ट्रीयभावना तथा सेवा जैसे मूल्यों के माध्यम से न केवल हम उत्कृष्ट जीवन यापन करते हैं अपितु ये सांस्कृतिक मूल्य ही उच्चतर विकास के पथ पर हमें अग्रसर करते हैं।

कविवर प्रमोद कुमार नायक की साहित्य सरिता में मधुर सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मिश्रण व्याप्त है–

इह लोके
निरीक्ष्यते उत्कटः अभावः।
अभावस्तु नैव धनस्य
नापि ज्ञानस्य
नैव पुनः अधिकारस्य।
इह लाके
यः अभावः

सः खलु मनुष्यत्वस्य।

अवलुप्ता जगतः

मनुष्यस्य संज्ञा

मानवीय चिन्ता

आत्मचेतना, अथ विवेचना।

सुलभाः कोटिसङ्ख्यकाः देवाः

अवतारपुरुषाः ईश्वराः

किन्तु

दूर्ल्लभः एव एव मनुष्यः

यः अद्य इतिहासस्य–

चर्च्चितः प्रसङ्गः

सङ्ग्रहालयस्य

प्राचीनविभवः...... ।[2]

(क) राष्ट्रीय भावना

अपने देश के प्रति भक्ति, प्रेम तथा अपनेपन का भाव ही राष्ट्रीय भावना है। राष्ट्रीय भावना एक ऐसी मनः स्थिति है, जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र के प्रति त्याग, बलिदान और शूरवीरता की प्रेरणा देती है। अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति हम गौरव का अनुभव करते हैं। यह राष्ट्रीय भावना ही है कि महाराणा प्रताप वन–वन भटकते रहे। अभावों में जीवन व्यतीत करते रहें, किन्तु अपनी मातृभूति को शत्रुओं के हाथ नहीं जाने दिया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, शिवाजी, भगतसिंह तथा सुभाषचन्द्र बोस जैसे कितने ही देशभक्तों से तथा इनकी वीरता की कहानियों से भारतदेश का इतिहास सुसमृद्ध है। अनेकानेक यातनाओं को सहन करने के पश्चात् भी इनके अद्भुत पराक्रम ने शत्रुओं के दाँत खट्ठे कर दिए।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना के दर्शन किये जा सकते है, क्योंकि देशभक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। केवल सीमा पर जाकर शौर्य का प्रदर्शन करना ही देशप्रेम का प्रतीक नहीं है। नेता द्वारा राष्ट्र के विकास हेतु कार्य करना, साहित्यकार द्वारा राष्ट्रीय चेतना तथा जनजागरण के कार्य करना, समाज सुधारक द्वारा समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करना, धर्मगुरुओं द्वारा उच्च मानवीय आदर्श प्रस्तुत करना तथा श्रमिक, कृषक, कर्मचारी और व्यापारियों द्वारा अपना–अपना कार्य पूर्ण निष्ठा तथा ईमानदारी से करना ही राष्ट्रीय भावना है। जिस देश में हमने जन्म लिया, जिसका अनाज खाकर हम बड़े हुए, जिसकी मिट्टी में हम खेले तथा जल, वायु

आदि का सेवन कर हम बलिष्ठ हुए उस देश के प्रति हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। देश के प्रति श्रद्धा, सम्मान, निष्ठा और कर्तव्यपालन की शिक्षा नायक जी की रचनाओं में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।

'स्वर्गादपि गरीयसी' कथा का नायक नरकाचार्य अपने देश के प्राकृतिक सौन्दर्य, सांस्कृतिक वैभव तथा परंपराओं का त्यागकर कुछ दिनों के लिए विदेश भ्रमण हेतु जाता है। विदेशी मार्गों की विशालता तथा सुपरिष्कारिता उसका मन मोह लेती है। वह विदेशियों को धन्य कहता है तथा विदेशी भूमि पर स्वयं को भाग्यशाली अनुभव करता है। ऐसा कहते हुए अचानक आधा खाया हुआ पान तथा उसका रस मार्ग में डालकर मार्ग के एक स्थान पर लघुशङ्का कर देता है, तब किसी पथिक के द्वारा नरक को डाँटा जाता है। पथिक उसे आदेश देता है कि यथाशीघ्र इस ताम्बूल को साफ करो अन्यथा आरक्षियों द्वारा तुम्हें दण्ड दिया जाएगा।

द्वितीय घटना में गृहसेवक के क्रन्दन को सुनकर नरकाचार्य जब कारण पूछता है तो उसे ज्ञात होता है कि गोदोहन समाप्ति के बाद सेवक के हाथ से दुग्धपात्र गिर गया, जिससे सम्पूर्ण पात्र का एक चतुर्थांश दुग्ध नष्ट हो गया। अतः जिन शिशुओं के लिए दुग्ध नष्ट हो गया और जिन शिशुओं के लिए दुग्ध विक्रय करना है वे दुग्ध के अभाव में कैसे रहेंगे अतः मेरा स्वामी अवश्य ही मेरा तिरस्कार करेगा। नरकाचार्य सेवक को परामर्श देता है कि जितनी मात्रा में दुग्ध गिरा है, उतनी ही मात्रा में इसमें जल मिश्रित कर दो। सेवक ने यह रहस्य अपने स्वामी से कह दिया। परिणामतः नरक को नगर से बाहर निकाल दिया गया।

अन्य नगर में निवास करते हुए नरक ने विचार किया कि इस नगर का परिवेश अत्यन्त रूचिकर है। वस्तुतः स्वर्ग सुन्दरियाँ यहीं निवास करती हैं अतः अपना देश छोड़कर इस देश की नागरिकता स्वीकार करने का प्रयास करना चाहिए। एक बार नरकाचार्य ने विशाल बाज़ार में देखा कि आपणिक (व्यापारी/दुकानदार) के बिना ही टी.वी., फ्रिज, वॉशिंगमशीन तथा ए.सी. आदि बहुमूल्य उपकरण विक्रय के लिए रखे हैं। उसे यह सुअवसर नहीं छोड़ना चाहिए यह मानकर एक गाड़ी में स्वेच्छा से वे उपकरण लाकर अपने घर में रखकर आनन्द से रहने लगा। कुछ ही समय में आरक्षियों ने उसे पाँच माह के लिए कारागार भेज दिया। जब वह कारागार से मुक्त हुआ तो दो दिनों के अंदर ही विदेश छोड़कर भारत आया, उस समय आनन्द के साथ जन्मभूमि को प्रणाम कर बोला–

वस्तुतः जन्मभूमिरेषा मे अतीव महीयसी। वैदेशिकाः अभद्राः मन्दाः च। यदर्थं सामान्यकारणात् कारागारं मां नीतवन्तः। अत्र मातृभूमौ मे एतादृशानि कार्याणि नैव दोषरूपेण विविच्यन्ते। अहं खलु भाग्यवान्। अत्र मे जन्म धन्यं भवति।[3]

पाश्चात्य सभ्यता के आकर्षण तथा अधिकाधिक धनार्जन की इच्छाओं के चलते देशवासी विदेशों की ओर पलायन कर रहे हैं। किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि समाज में सभी वर्गों के लोग निवास करते हैं। यदि संभ्रान्त वर्ग को छोड़ दिया जाए तो सामान्य जन की स्थिति विदेशों में शोचनीय है। उनके साथ हीनता का व्यवहार किया जाता है।

अपराध हर परिस्थिति और देशकाल में अपराध ही होता है और न्याय व्यवस्था उसके लिए दण्ड का विधान करती है। अतः नरकाचार्य द्वारा की गई चोरी निस्संदेह अपराध की ही श्रेणी में परिगणित है किन्तु भारतदेश में दण्डव्यवस्था उतनी कठिन नहीं है। अपनी मातृभूमि ही सबसे महान् होती है। कहा भी गया है– "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

अपनी माता तथा मातृभूमि सबसे महान् होती है। अतः अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रगाढ़ स्नेह और भक्ति का भाव रखते हुए कर्त्तव्यनिष्ठ रहने की शिक्षा हमें इस कथा से प्राप्त होती है।

''डङ्किप्रस्तावः'' कथा में कथाकार ने राष्ट्रीयता से संबंधित तीन प्रमुख बिन्दुओं को उजागर किया है– डङ्किप्रस्ताव में प्रथम नियम है– पत्नीस्वाधीनता। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए पत्नीस्वाधीनता वर्ष मनाने की बात कही गई है। सभी कर्मों में प्रधानता पत्नी को दी गई है। पत्नियों के गौरव की हानि परमपिता को रूचिकर नहीं लगती है।

"भारते यत् किमपि कार्यं भवति तत् खलु पुरुषप्रधानात्मकम्। अनेन पत्नीनां गौरवहानिः भवति। एतदेव परमपित्रे न रोचते। सर्वत्र कर्मणि पत्नीनां प्राधान्यं भवेत्।"[4]

अतः सर्वप्रथम अपनी पत्नी को सम्मान देने की बात कही गई है। केवल अपने घर और परिवार की नहीं संपूर्ण महिला जाति को प्रधानता दी जाए। महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार की आपराधिक प्रवृत्ति को बल न मिले। राष्ट्र के उत्थान हेतु यह परमावश्यक है कि महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में प्रधानता दी जाए क्योंकि यदि एक नारी उन्नत होती है तो वह अपने पूरे परिवार को प्रशस्त मार्ग पर प्रेरित करती है।

द्वितीय नियम है–परिवेशसुरक्षा। क्योंकि परिवेश ही पृथ्वी का जीवन है और इस परिवेश की सुरक्षा के लिए निरंतर वृक्षारोपण किया जाना चाहिए। विज्ञान की उन्नति के परिणामस्वरूप वनों का विनाश हुआ है, जिससे सम्पूर्ण परिवेश दूषित हो जाता है।

"भारते सर्वत्र वनस्थापनं भविष्यति। कदाचिदपि तस्य राज्यस्य अनुमतिं विना एकस्य वृक्षस्य कर्त्तनं नैव कुर्यात्। एवमपि रथयात्राकाले काष्ठैः रथनिर्माणं न स्यात्। अत्र बहुकाष्ठव्ययः भवति। इच्छति चेत् तद्देशात् एकं लौहनिर्मितं रथं क्रेतुं शक्नोति।"[5]

आज न केवल हमारे देश में अपितु संपूर्ण विश्व में पर्यावरण की सुरक्षा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वृक्षों की अन्धाधुंध कटाई तथा प्रौद्योगिकी के विकास से हमारा पर्यावरण दिन–प्रतिदिन दूषित हो रहा है यही कारण है कि लगातर प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप बढ़ता ही जा रहा है और लोग काल का ग्रास बनते जा रहे हैं। जन–धन की अपार क्षति हो रही है। अतः अपने राष्ट्र के प्रति हम सभी का यह कर्तव्य है कि अधिकाधिक वृक्षारोपण करें तथा पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली वस्तुओं का सेवन कम से कम करें। उदाहरण स्वरूप वर्तमान में प्लास्टिक की थैलियों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। कल–कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों से कई उपयोगी पदार्थों का निर्माण किया जाने लगा है इत्यादि।

"तृतीयः खलु अस्त्रशस्त्रनिर्माणनिरोधनियमः। अनेन नियमेन भारते न किमपि अस्त्रशस्त्रनिर्माणकार्यं भविष्यति। पृथिव्यां शान्तिस्थापनं परमपितृराज्यस्य मूलं लक्ष्यम्।"[6]

तृतीय नियम है अस्त्र शस्त्र निर्माण कार्य को रोकने का नियम। विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए यह परम आवश्यक है। आज प्रत्येक देश अपनी शक्ति के प्रदर्शन में लगा हुआ है। यह प्रतिस्पर्द्धा अत्यंत विकराल रूप धारण कर चुकी है। यह सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए खतरा है। अतः अस्त्र शस्त्र निर्माण कार्य में लगने वाली पूँजी को देश के विकास और उन्नति कार्य में लगाया जाए। **'अंहिसा परमो धर्मः'** अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही विश्वबन्धुत्व की स्थापना की जा सकती है।

हमारे देश में विभिन्न उत्सव तथा जयन्ती मनायी जाती हैं, निर्वाणदिवस मनाए जाते हैं। किन्तु उन राष्ट्रभक्तों, जननेताओं तथा विशिष्ट व्यक्तियों के आदर्शों, सिद्धान्तों तथा आचरण को जीवन में नहीं उतारा जाता। ऐसी स्थितियों में इन जयन्ती उत्सवों तथा निर्वाण दिवसों को मनाना विवेकहीनता है।

"कियद् वा श्रोष्यामि भाषणमूरलीस्वनम्!!
पुनः पुनः जयन्त्यां वा निर्वाणदिवसे।
रामराज्यस्य प्रतिष्ठा भविष्यति तदानीं सफला
सा हि जयन्ती गान्धिनः
परिपालयिष्यते अवश्यं भारते
ग्रामे ग्रामे नगरे नगरे।"[7]

सभाओं के मध्य अथवा कतिपय जनों के बीच मूल्यहीन भाषण देने से राष्ट्रीयता को प्रकट नहीं किया जा सकता बल्कि प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक नगर में असत्य के मार्ग का अवरोध किया

जाना चाहिए। महात्मा गांधी द्वारा बताए गए सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए उन्हीं की शिक्षाओं का अपने जीवन में अनुसरण करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. भीमराव अम्बेडकर तथा मदर टेरेसा आदि विभूतियाँ हम सभी के समक्ष ऐसे उदाहरण हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही देश के नाम कर दिया। राष्ट्र प्रेम तथा देश भक्ति की भावना से सरोबार इनका जीवन हम सभी के लिए प्रेरणास्पद है और इन सभी के उत्तम गुणों को अपने जीवन में उतारना ही इन सभी के लिए वास्तविक श्रद्धांजलि है।

'वनभाषा' कथा में कथाकार नायक जी ने वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या को उठाया है और वह है राष्ट्रभाषा की समस्या। आज जबकि देश का प्रदेशानुसार विभाजन हो रहा है सभी अपने–अपने प्रदेश अथवा प्रान्त की भाषा को ही सर्वश्रेष्ठ भाषा मानकर राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में तर्क देते हैं। किष्किन्धा नगरी के सभी वानर अपने प्राचीन सम्मान को प्राप्त करने के लिए तथा विशाल वन की रक्षा के लिए कृतसंकल्प हो गए। उनके समक्ष यह समस्या उत्पन्न हुई–

"शासनसौविध्यार्थं 'वनभाषा' का भवेत् इत्येतदर्थं विवादः घनीभूतः। यदि वा प्राक्काले समग्रस्य वनस्य भाषा आसीत् 'आदिभाषा'। परन्तु इदानीं तस्याः आदिभाषायाः आदरः व्यवहारः वा नास्ति। न कुत्रापि तस्याः प्रचलनं भवति। तस्याः स्थानं तु काश्चन प्रादेशिकभाषाः भजन्ते। आदिभाषा एवं केषा×चन स्वल्पीयसां भाषा वा पुस्तकभाषात्वेन मृतवत् तिष्ठति।"[8]

शासन संचालन के लिए किस भाषा को वनभाषा बनाया जाए। प्राचीन काल में संपूर्ण वन की भाषा आदिभाषा थी। आदिभाषा जिसमें संपूर्ण वाङ्मय है, ज्ञान है। किन्तु इस समय आदिभाषा को यथोचित सम्मान प्राप्त नहीं है और न ही वह व्यवहार की भाषा है। वह तो पुस्तकों में मृतप्राय हो चुकी है। उसके स्थान पर सभी अपने–अपने प्रदेश की भाषाओं को महत्त्वपूर्ण मानते हैं तथा उसे वन की भाषा बनाने के लिए मार्गावरोधन अथवा आमरण अनशन जैसे कार्य करते हैं। अंत में आंग्ल भाषा को वनभाषा बनाने पर सभी एकमत होते हैं।

यह कथा राष्ट्र के प्रति हमारे जो कर्तव्य हैं उनके प्रति हमें सचेत करती है। धर्म, भाषा, प्रान्त, लिंग तथा संप्रदाय को भूलकर एकजुट होकर देश की उन्नति के लिए कार्य करने की शिक्षा देती है। पाश्चात्य जीवन शैली का परित्याग कर उच्चमानवीय मूल्यों तथा आदर्शों को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है।

'सेवा' नामक कथा के अन्तर्गत कवि कहते हैं–

"त्यागस्य सेवायाः मूर्तिमान् विग्रहः महात्मागान्धिः, तस्य दृष्ट्या मानवस्य सेवा देशस्य सुरक्षा च प्रकृतपक्षे माधवसेवा आसीत्।"[9]

राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों के मध्य पायी जाने वाली सामुदायिक भावना है। मनुष्यों की आपसी सौहार्द्र भावना तथा राष्ट्र की सुरक्षा का भाव वास्तविक रूप में ईश्वर की सच्ची भक्ति है। अतः अपने देश से प्रेम करना, परस्पर एकता के सूत्र में बँधे रहना तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देना ईश्वरीय सेवा है।

जैसे–जैसे मानव उन्नति के सोपान रचता गया, वैसे–वैसे वह पर्यावरण को भी प्रदूषित करता गया। हरे–भरे वृक्षों से युक्त वन मैदानी भू–भाग में तब्दील हो गए, जल तथा वायु प्रदूषित हो गए तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने संपूर्ण तंत्र को ही कलुषित कर दिया। इस विश्वव्यापी समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कविवर कहते हैं–

"न दृश्यते वृक्षराजिः
न वहति शीतलसमीरः
न खेलति मृगशिशुः
न कूजति वृक्षे वा खेचरः।
पर्वताः नश्यन्ति अद्य
विषीकृता गिरिनिर्झरिणी
उत्पाट्यते वनभूमिः
अस्मत्तृप्त्यै विभवशालिनी।
अहरहः यत्र आसीत् पूर्णनीरवता
जनपदायते तत्रु
संशोभन्ते अट्टालिकाः
अधिकारस्थापनाय तीव्रः वादः
को वा स्वामी अस्यैव क्षेत्रस्य?
श्रुतवेदमन्त्रदेशः
परिपूर्णपाश्चात्यसङ्गीद्वारा
विदेशिपानीयमत्ताः विचरन्ति
उद्भ्रान्तपुरुषाः निशाचराः इव।"[10]

वनों से वृक्ष लुप्त हो गए हैं, शीतल प्राणवायु का भी अभाव है, मृगशिशु अर्थात् जीवजन्तु स्वछंदतापूर्वक क्रीड़ा नहीं कर रहे है, न ही पक्षी वृक्षों पर कूजन कर रहे हैं, पर्वतादि नष्ट हो गए हैं गिरिनिर्झर विषयुक्त हो गए हैं, अपनी तृप्ति हेतु वैभव शक्तियों द्वारा वन की भूमि को पाट दिया गया है, जहाँ दिन–रात पूर्ण नीरवता थी वहाँ अट्टालिकाएँ सुशोभित हो रही हैं, सर्वत्र अधिकारस्थापना हेतु युद्ध चल रहा है तथा उद्भ्रान्त पुरुष निशाचर के समान पाश्चात्य संगीत सुनकर तथा विदेशी पेय का पान कर उन्मत्त होकर विचरण कर रहे हैं। प्रदूषित पर्यावरण से प्रकृति असंतुलित हो जाती है तथा पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ जाता है, जो संपूर्ण मानव जाति के लिए खतरा है, साथ ही संस्कृति के दुष्प्रभाव से अर्थवाद, भोगवाद, मूल्यों का ह्रास, स्वकेन्द्रित प्रवृत्ति तथा संस्कारहीनता जैसी दुर्नीतियों का प्रसार हुआ है, जिससे राष्ट्रीय भावना को ठेस लगती है।

तेषां कृते अद्य
"मधु क्षरन्ति सिन्धवः'
ये खलु समुद्रपथे विक्रीणन्ति
देशस्य दुर्ल्लभं पदार्थं
गोपनीयं तथ्यमथ अन्यत् किमपि।
राष्ट्रदुःखेषु ते एव अनुद्विग्नमनसो भवन्ति
यैः साहाय्यपदार्थाः ह्रियन्ते
राष्ट्रद्रोहकारिणः तेषां निकटे
सुरक्षिताः सन्तः
एतेषां राष्ट्रबन्धुत्वं परिवर्द्धयन्ति।[11]

हमारा वर्तमान अतीत की ही देन है और भविष्य हमारे वर्तमान से उत्पन्न होगा। अनगिनत बलिदानों तथा संघर्ष के पश्चात् हमने स्वतंत्रता पाई और स्वतंत्रता मिल जाने के बाद हमारी राष्ट्रिय भावना केवल राष्ट्रगीत, राष्ट्रगान, स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस तथा महापुरुषों के जयन्ती–उत्सव समारोहों तक ही संकुचित रह गई। उपर्युक्त उद्धरण में राष्ट्रीय भावना पर व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं कि सच्चे राष्ट्रभक्त तो वे जन है, जो अपने देश के दुर्लभ पदार्थों को तथा गोपनीय तथ्यों को स्वार्थ तथा धनलाभ के लिए अन्यत्र पहुँचा देते हैं राष्ट्र दुःखों में जिनका मन अनुद्विग्न बना रहता है तथा राष्ट्र से द्रोह करने वाले देशद्रोहियों को वे सुरक्षा प्रदान करते हैं और वास्तविक देशभक्त प्रतिक्षण नरक की असहनीय यातनाओं को भोगता है।

स्वतंत्रता संग्राम के समय कवियों तथा लेखकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। अपनी लेखनी के माध्यम से इन्होंने जन–मानस में देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम की भावना का संचार कर लोकजागरण का कार्य किया था। कवि नायक जी कहते हैं कि–

उतिष्ठत आदिकविवंशसमुद्भव!
अपेक्ष्यते तवाह्वानं महनीयं राष्ट्रम्
कविर्नहि स्वार्थान्वेषी
कविर्नहि असत्यपोषकः
सत्यवादी प्रज्ञासुतः कविः कथं
भवेत् अद्य नीरवदर्शकः
प्रचेष्टया तव प्रतिष्ठितमस्तु पुनः
अतीतस्य वन्दनीययशः।[12]

हे आदिकवि! उठो। अतीत की गौरवगाथा की पुनः स्थापना करो, क्योंकि कवि स्वार्थान्वेषी तथा असत्य का पोषक नहीं होता अपितु सत्यवादी प्रज्ञासुत होता है। यह महनीय राष्ट्र तुम्हारे आह्वान की प्रतीक्षा कर रहा है अतः अपनी रचनाओं से सभी में राष्ट्रीयता के भाव भर दो।

'मधुमयम्' कविता में कवि का स्वर जन–चेतना का है। इस कविता में कवि ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को उठाया है क्योंकि पर्यावरण की क्षति राष्ट्र की भी हानि है–

मलयानिलः नायाति, न वहति शीतलसमीरः
न प्रलुब्धः मधुकरः
गुंजरति उन्मादितः पुष्पसौरभेण
दिगन्तस्य शेषहीनः पवनस्तु
प्रदूषितः विषग्रस्तः कालस्य वक्षसि।
सर्वरोगनिवारिणी जाह्नवी तु
परिपूर्णा नगरवर्ज्यवस्तुभिः
या अनन्तकालतः आसीत्
पवित्रा विष्णुपदसम्भूता जननी।
शस्यशालिनी धरण्यपि विषग्रस्ता
विषौषधिः नितरामपेक्ष्यते
इदानीं शस्याय।[13]

वर्तमान समय में सुगंधित शीतल पवन का अभाव है क्योंकि वाहनों से निकलने वाला धुआं, विभिन्न औद्योगिक तथा आणविक संयत्रों से निकलने वाली गैसें तथा धूलकण और वृक्षों की अंधाधुंध कटाई ने प्राणवायु को विषयुक्त कर दिया है, जिससे विभिन्न नये रोगों का जन्म हुआ है। तीव्र औद्योगिक विकास जनसंख्या वृद्धि, जलस्रोतों का दुरुपयोग, वर्षा की न्यूनता तथा विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से परं पवित्र तथा सभी रोगों का निवारण करने वाली गंगा तथा अन्य नदियों का जल भी दूषित हो गया है। साथ ही शस्यशालिनी धरणी भी विषग्रस्त हो गई है। यह संपूर्ण राष्ट्र के सम्मुख चुनौती है–

प्रक्षेपास्त्रमपेक्ष्यते एकदेशे
अपरदेशाय
अनुदिनं विवर्द्धते
सीमायाः विवादः
को वा देशः व्ययीकरोति राजस्वम्
अन्यदेशे सन्त्रासवादाय
रक्तपाताय अथ देशविभाजनाय
वद रे प्रेयसि!
कथमहं वाचयामि
विश्वमिदमेकनीडमस्ति इति।।[14]

प्रस्तुत उद्धरण में **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** के सुंदर मनोभावों को अभिव्यंजित किया गया है। कवि कहते हैं एक देश का दूसरे देश के साथ सीमाविवाद बढ़ रहा है। अस्त्र–शस्त्र निर्माण की होड़ लगी है। चहुँओर रक्तपात तथा देश के विभाजन का दारुण दृश्य दिखाई दे रहा है। ऐसी स्थिति में विश्वबन्धुत्व कैसे संभव हो। कवि का यह चिंतन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है क्योंकि सर्वत्र हिंसा, द्वेष, वैरभाव तथा अधिकार स्थापना की भयावह स्थिति उत्पन्न हो गई है।

(ख) परोपकार की भावना

जंगल के पूर्वभाग में आम का वृक्ष तथा ताल का वृक्ष सुशोभित थे। पथिक आम के वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम करते अपनी थकान दूर करते। ग्वालबाल आनन्दपूर्वक आम के वृक्ष के नीचे खेलते तथा वंशी बजाते। कौआ, शुक तथा कोयल आदि पक्षीगण अपना आवास उस वृक्ष पर बनाते थे। समय आने पर उस आम के वृक्ष पर फल आए। मधुर आम्रफलों को खाने के लिए प्राणीजन मुग्ध होकर दौड़ते थे। बालक शाखाओं पर चढ़ जाते थे। कभी–कभी आम चुनते समय वृक्ष की शाखाएँ भी टूट जाया करती थीं। फिर भी आम्रवृक्ष सब कुछ सहन करता। किसी के भी

प्रति वह रोष न रखता। फलहीन तालवृक्ष आम्रवृक्ष की ऐसी अवस्था देखकर उपहास करता। एक दिन एकान्त में तालवृक्ष ने आम्रवृक्ष से कहा—तुम्हें कितना कष्ट है। तुम्हारी कैसी दुरवस्था है। सभी तुम्हारे निकट आकर कोलाहल करते हैं, तुम्हें पीड़ा देते हैं, तुम्हारे फलों का हरण करते हैं तथा शाखाओं को नष्ट करते हैं। यहाँ तुम्हारा दुर्भाग्य ही कारण है, किन्तु मैं सुखी हूँ न ही कोई मेरे पास आता है और न ही कोई मुझे कष्ट देता है। इस पर आम्रवृक्ष ने उत्तर दिया—

"मातृत्वस्य गरीयसी स्वर्गीया शक्तिः कथम् आनन्दयति अन्तःप्रदेशम्। येन चन्दनायते सकलं कषणम्। ममताबद्धानां बालानां कोलाहलः अवश्यमेव दुर्लभः एतदर्थम्। अथ च हतभाग्यतालवृक्ष...।"[15]

ताल वृक्ष के वचनों से मृदुहासयुक्त आम्रवृक्ष ने कहा मातृत्व एक बहुत बड़ी अलौकिक शक्ति है जो अन्तःप्रदेश को इस प्रकार आनन्दित करती है, जिससे सम्पूर्ण कष्ट भी चंदन के समान शीतलता प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त कथा में वृक्षों की परोपकारी भावना को प्रदर्शित किया गया है। सभी प्रकार के कष्ट सहकर भी वृक्ष अपनी उदारता का परिचय देते हैं। कहा भी गया है—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।[16]

संपूर्ण प्रकृति परोपकार के कार्य में लगी हुई है। परोपकारी जन अत्यन्त विनम्र होता है। अतः हम सभी को तुच्छ स्वार्थों को छोड़कर परोपकारी कार्य करने चाहिए। भारतीय संस्कृति मूल्य प्रधान है। बड़ों का सम्मान करना, परदुःख कातरता, दया, प्रेम, न्याय, अहिंसा, त्याग और सत्य के मार्ग पर चलकर ही जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

आश्रम का संन्यासी सत्यव्रत सर्वदा सत्य का ही आश्रय लेता है ऐसा सभी का उस पर विश्वास था। वह किसी भी परिस्थिति में सत्य को नहीं छोड़ता था ऐसा सभी कहते थे। इसीलिए सत्यव्रत का महान् आदर होता था। उसका सभी उदाहरण दिया करते थे। अन्य आश्रमों से ब्रह्मचारी सत्यव्रत के आश्रम में आते थे तथा जीवन में सत्य के प्रभाव तथा महत्त्व की उपासना करते थे।

समीप के आश्रम से गुरु प्रचेतस का प्रिय शिष्य सदानन्द सत्यव्रत के आश्रम में आया सत्य के प्रसङ्ग में अधिक ज्ञानार्जन के लिए। वहाँ उसका स्वागत किया गया। आनन्दपूर्वक कुछ दिन व्यतीत हो गए। सत्य के प्रति संन्यासी सत्यव्रत की अपूर्व निष्ठा देखकर सदानन्द मोहित हो गया।

एक दिन सन्ध्यावन्दन के समय कोई व्यक्ति आश्रम में आया। भय से उसका शरीर काँप रहा था। कुछ शत्रु उसका पीछा कर रहे हैं यह कहकर वह आश्रम के एक एकान्त स्थान पर छिप गया। कुछ ही समय बाद अस्त्रशस्त्रों से युक्त कुछ लोग दौड़ते हुए आश्रम में आए तथा पूर्वोक्त जन के विषय में पूछने लगे। सत्य का पालन करने वाले आश्रमवासी जब मौन हो गए तो आचार्य सत्यव्रत ने कहा कि यहाँ आश्रम में कोई भी व्यक्ति नहीं आया है, जिसे सुनकर वे सभी लौट गए।

सत्यव्रत द्वारा प्रथम बार सत्यभंग को देखकर सभी चकित हो गए। जब सत्यव्रत से इस विषय में पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया–

"वत्स! सत्यं सर्वदा त्रिलोककल्याणाय अभिप्रेतम्। यदि लोककल्याणं विनश्यति, तर्हि तत् सत्यं सत्यत्वेन न परिगृह्यते। तथा कथितम् असत्यमपि हिताय कल्पते।"[17]

सत्य तीनों लोकों के कल्याण के लिए है, विनाश के लिए नहीं। अगर किसी के हित के लिए असत्य भी बोला जाए तो वह उपयुक्त माना गया है। यही सत्य का मूल है।

सत्यव्रत की यह कथा हमें यह शिक्षा देती है 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीरडनम्'। अर्थात् परोपकार पुण्यकारक है और दूसरे को पीड़ा देना पापकारक है। सदैव स्वयं को दूसरों की भलाई के कार्य में लगाना चाहिए। अपनी सामर्थ्य के अनुसार लोगों की सहायता करना तथा शरणागत की रक्षा करना ही इस कथा का सारतत्त्व है। दधीचि, दानवीर कर्ण, महात्मा गाँधी, भगवान बुद्ध तथा महावीर स्वामी अनेक परोपकारी मनुष्य हमारे देश में हुए जो अपने कार्यों से अमर हो गए। जिनका संपूर्ण जीवन दूसरों के कल्याण में समर्पित रहा। मन, वचन तथा कर्म से सदैव भलाई के कार्यों में रत रहे। परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है अतः सदैव इस धर्म का पालन करना चाहिए।

भवन्ति नम्रस्तरवः फलोद्गमैः
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।[18]

वृक्षों पर फल आने से वे झुकते हैं अर्थात् नम्र बनते हैं, पानी से भरे बादल आकाश में नीचे आते हैं, अच्छे लोग समृद्धि से गर्विष्ठ नहीं बनते, परोपकारियों का यह स्वभाव ही होता है।

परोपकार की इन्हीं भावनाओं को कवि नायक जी ने भी अपने ग्रन्थ शबरी में इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है–

दूरे आकाशे आविर्भूय

यः निम्नस्तायाः पृथिव्याः

दुःखावबोधने व्यग्रः भवति

असह्यां वेदनाम्, अपरिसीमं कषणम्

अवलोक्य, यस्य हृदयं क्रन्दति

स्वकीयं सुखजालं, विवर्द्धितमनोभावं

विस्मृत्य, यः सामग्रिक–भावेन

आत्मानं नियोजयति

सः मेघः

निः स्वार्थपर बन्धोः परमम् उदाहरणम्।[19]

दूर आकाश में प्रकट होकर जो पृथ्वी के दुःख को जानने में व्यग्र है। असहनीय वेदना तथा अपरिमित कष्ट को देखकर, जिसका हृदय करुण क्रन्दन कर रहा है। अपने सुखजाल तथा मनोभाव को भूलकर जो स्वयं को सामग्रिक भाव से परोपकार के कार्य में लगाता है, ऐसा वह मेघ निःस्वार्थ बन्धुता का परम उदाहरण है। मेघ प्रार्थी के धैर्य की सीमा की कभी अपेक्षा नहीं करता और न ही प्रार्थना की गंभीरता की वह परीक्षा करता है।

जल की कामना रखने वाले उसके निन्दक हैं अथवा प्रशंसक वह यह जानने की भी आकाङ्क्षा नहीं रखता। जल वितरण में मेघ किसी की जाति अथवा गोत्र का भी विचार नहीं करते। आज जबकि सभी लोग स्वयं में रत हैं तथा कोशपूर्ति में प्रयत्नशील हैं, उस समय मेघ सन्तप्त हृदय प्राणियों के क्लेश को नष्ट करने में लगे हुए हैं।

अथ च परमधनाढ्यः मेघः

दानेन आशाहीन–वितरणेन

शून्यः भवति

प्रत्येकेषु जन्मसु।

तथापि

नैव कदापि मेघः दानाय

कातरः भवति

जलवितरणे

कार्पण्यं प्रकटयति।[20]

वर्षण में ही मेघ की सृष्टि की सार्थकता है मेघ द्वारा प्रदत्त जल से नदी—तालाब ओर सरोवर शून्यता से पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं और अत्यधिक धनाढ्य मेघ प्रत्येक जन्म में आशाहीन वितरण से शून्य हो जाता है। जल वितरित करने में मेघ कभी भी कृपणता को प्रकट नहीं करता।

प्रकृति के कण—कण में परोपकार समाया हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी परोपकार के विषय में इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किए हैं—

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

परोपकार के समान कोई धर्म नहीं है। भारतीय संस्कृति का भी मूल आधार परोपकार है। अतः हमें संकुचित प्रवृत्तियों का परित्याग कर परहित के कार्यों में संलग्न होना चाहिए।

अतियत्नेन
दिवा नक्तं मूषिकस्य इव
अन्यस्य कृते
मया उत्खनिताः गर्त्ताः
आत्मार्थपूरणे।
किन्तु
एकीभूताः निर्बोधास्ते गर्त्ताः
तेषामन्तः
मामेव पातयित्वा
आनन्दं लभन्ते।[21]

अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक दिन—रात चूहे के समान दूसरों के लिए गड्ढा खोदने वाले स्वार्थी मनुष्य को उन्हीं लोगों से एकजुट होकर उसे गिरा दिया और आनन्द प्राप्त किया अर्थात् जो दूसरों के लिए गड्ढा खोदता है, वह स्वयं ही उसमें गिर जाता है अतः कभी भी किसी का बुरा नहीं करना चाहिए। यह कथन हमें प्रेरणा देता है कि जितना संभव हो दूसरों का हित साधने की कोशिश करनी चाहिए। परोपकारी व्यक्ति को कभी भी आत्मग्लानि नहीं होती। परोपकारी जन समाज में उच्च मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता की स्थापना करता है।

स्वार्थी मनुष्य आज अपनी कार्यसिद्ध में रत है। सुख—सुविधाओं का आकर्षण अनुचित उपायों की ओर धकेल रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में व्यवसायिकता हावी हो चुकी है। यश और धनार्जन की लालसा में किसी भी सीमा तक जाया जा सकता है।

वर्तमान में विभिन्न सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का आयोजन देश–विदेश में प्रचलित है, जिसमें सर्वाङ्गसुन्दरी कर पुरस्कृत किया जाता है किन्तु कविवर नायक जी का कथन है कि वास्तविक सौन्दर्य चर्म में या संवाद रटने में स्थित नहीं है, अपितु–

प्राणाः यस्याः न क्रन्दन्ति
अन्यस्य दुःखेन
विगलितं न हृदयं करुणाजालेन
कथं सुन्दरता तस्यां भवेत् समाश्रिता?[22]

अन्य का दुःख देखकर जिसके प्राण दुःखी नहीं होते हैं तथा करुणा भाव से जिसका हृदय आर्द्र नहीं होता है, उसमें सुन्दरता कैसे आश्रित हो सकती है। सेवाधर्म में सन्नद्ध, विश्वहित में सदैव अपनी मति रखने वाली, सभी जीवों से प्रेम करने वाली शिक्षा के प्रचार–प्रसार में तथा समाज द्वारा निष्कासित रोगियों की सेवा में जो कटिबद्ध है, वही वास्तविक रूप से विश्वसुन्दरी है।

(ग) सेवा परायणता

लोक–कल्याण के लिए जनसेवा का अपना विशेष महत्त्व है। सृष्टि के विकास तथा प्रगति में दया, प्रेम, त्याग, सेवा तथा सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों का अत्यधिक महत्त्व है। यह समाज मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों पर ही टिका हुआ है। समाज में एक साथ रहते हुए एक–दूसरे की सहयोग करना तथा अच्छे–बुरे वक्त में साथ देना ही मानव सेवा है। वास्तविक अर्थों में यदि हम कहें तो किसी भी कार्य को स्वार्थ की भावना से परे हटकर परहित में पूरी लगन और निष्ठा से करना ही सेवा धर्म है।

श्री प्रमोद कुमार जी की रचनाओं में जीवन के विविध पक्षों के दर्शन होते हैं। आपकी रचनाओं में मानव सेवा को ईश्वरीय सेवा से भी बढ़कर बताया है। एक चिकित्सक का कार्य रोगियों का इलाज करना बताया है और इसे भी सेवाधर्म नाम से इंगित किया गया है। माता–पिता की सेवा सन्तान का परम कर्त्तव्य है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

भट्टाराय का घर सम्पूर्ण प्रदेश का सर्वश्रेष्ठ घर था। शिक्षा, संस्कृति तथा स्वाधीनता संग्राम आदि विभिन्न क्षेत्रों में जिस परिवार का अतुलनीय योगदान था। इस समय भी लोगों में ख्याति प्राप्त वह घर आज विभक्त हो रहा था। 'संगच्छध्वं संवदध्वम्' मन्त्र आज खण्डित हो गया। एक अंधकारयुक्त घर में रोगशय्या पर स्थित वृद्ध भट्टाराय अपने पुत्रों से बार–बार पूछ रहा था कि वह किस पुत्र के भाग (हिस्से) में रहेगा।

आवाल्यात् यत्नवर्धिताः स्नेहास्पदाः पुत्राः इदानीं पितुः अवशिष्ट जीवनयापनविषये चिन्तयन्ति। सर्वे केनापि कारणेन निराकुर्वन्ति पितुः भारं स्वीकर्त्तुम्। अन्तिमे एषः निर्णयः स्थिरीकृतः जातः यत्–पिता अद्य आरभ्य साधारण जरानिवासे स्थास्यति इति।[23]

प्रयत्नपूर्वक पाले गए तथा स्नेही पुत्र आज पिता के अवशिष्ट जीवन यापन के विषय में चिन्तन कर रहे हैं। कोई न कोई तर्क देकर वे भारस्वरूप पिता को स्वीकारने से मना कर रहे थे। अन्त में यह निर्णय लिया गया कि पिता आज से साधारण वृद्धाश्रम में रहेंगे। भागशेष वृद्ध भट्टाराय एकान्त में अश्रुपात करते हैं। बहुत दिनों पूर्व दिवंगत पत्नी सुदेष्णा तारे के रूप में स्थित ऊपर से देखती है।

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।[24]

माता–पिता अनेक कष्ट सहकर अपनी संतान को उत्पन्न कर उनका पालन–पोषण करते हैं। अतः सन्तान का भी यह दायित्व है कि वह वृद्धावस्था में अपने माता–पिता की सेवा करे। किन्तु माता–पिता भार स्वरूप प्रतीत होते हैं और कोई भी सन्तान इस कर्त्तव्य का निर्वहन करना नहीं चाहती।

वर्तमान समय में वृद्धाश्रम जैसी कई संस्थाएँ अस्तित्त्व में आ चुकी हैं, जो घटते मानवीय मूल्यों की प्रतीक हैं। एकाकी परिवार प्रथा जो कि पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण है, ने भी वृद्धजनों की स्थिति को दयनीय बनाया है। भारतीय संस्कृति हमें गुरुजनों का सम्मान तथा सेवा की शिक्षा देती है परन्तु अपनी शिक्षा और संस्कारों की विरासत वर्तमान पीढ़ी खोती जा रही है।

मानव मात्र की सेवा करना ही एक चिकित्सक का धर्म है और एक अत्यन्त पवित्र कर्म है। किन्तु आज स्वार्थ के वशीभूत, धनलोलुप तथा अर्थपरायण चिकित्सक अपने कर्त्तव्य की अवहेलना किस प्रकार कर रहे हैं वह हम **'आदर्शचिकित्सकः'** नामक इस कथा में देखते हैं।

राज्य सरकार से पुरस्कृत चिकित्सक ग्राम चिकित्सालय में आ रहा है यह सुनकर सभी ग्रामवासी आनन्दित हो उठते हैं। उन्हें अनुभव होता है कि उनके रोग का निराकरण अब सहज होगा किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् उनका यह विश्वास नष्ट हो जाता है। वह चिकित्सक प्रत्येक क्षेत्र में अर्थ की याचना करता है और उसकी यह लालसा बढ़ती ही जाती है।

एक बार शल्यचिकित्सा करते समय मुमूर्षु रोगी के आत्मीयजनों से वह चिकित्सक कहता है कि यदि वे धन नहीं देंगे तो रोगी उसी स्थिति में उस प्रकोष्ठ में स्थित रहेगा। यह सुनकर विकल परिवारजनों ने कुछ धन संग्रह किया और चिकित्सक को समर्पित किया। सभी चिन्तित

तथा विचारमग्न थे। किसी व्यक्ति ने इस चिकित्सक के विरुद्ध उच्च पदाधिकारियों को आरोप पत्र लिखकर सूचित कर दिया। इस चिकित्सक के बहिष्कार के लिए तीव्र आन्दोलन हुआ। चिकित्सक की दुर्नीति के विषय में बहुत से प्रमाण उपलब्ध थे वे उसे समुचित दण्ड के विधान के विषय में विचार करने लगे।

सेवारूपके पवित्रकर्मणि संस्कारः आयातु इत्येव सर्वेषां मूललक्ष्यं भवति।[25]

चिकित्सक को समाज में ईश्वरीय दर्ज़ा प्राप्त है क्योंकि वह जीवन देने का पवित्र सेवाकार्य करता है। किन्तु पदप्राप्ति के कुछ समय बाद ही वे पथभ्रष्ट हो जाते हैं। चिकित्सकों की इसी कर्त्तव्यहीनता को अन्य उदाहरणों में भी देखा जा सकता है।

रुग्ण नाती को अपने कंधे पर लेकर कोई वृद्ध चिकित्सा हेतु चिकित्सक के द्वार पर गया और अन्दर से उत्तर आया कि अभी समय नहीं है चिकित्सक क्रिकेट का खेल देख रहे हैं। कुछ समय पश्चात् ही नाती की वेदना बढ़ती ही जा रही थी। वृद्ध पुनः पुनः निवेदन कर रहा था और चिकित्सक पूर्व की भाँति उत्तर दे रहा था कि भारतीय दल का अंक संग्रह चल रहा है। इसी बीच चिकित्सक के कुछ मित्र वहाँ आते हैं सभी क्रिकेट क्रीडा का आनन्द लेते हैं। नाती चेतनाहीन हो जाता है पुकारने पर भी नहीं सुनता।

वृद्धः दुःखेन विलपति। तस्य सम्मुखे सर्वम् अन्धकारः दृश्यते। सः चिकित्सकस्य कपाटम् आघातयति। परिशेषे क्रीडादर्शन विघ्नहेतोः रुष्टः चिकित्सकः आयाति। नप्तुः शरीरे करं संचाल्य उद्घोषयति एषः मृतः जातः।[26]

वृद्ध दुःख से विलाप करता है। उसके सम्मुख अन्धकार छा जाता है वह चिकित्सक के द्वार पर आघात करता है। व्यवधान उपस्थित होने पर रुष्ट चिकित्सक आया तथा नाती के शरीर पर हाथ फेरकर उसे मृत घोषित कर दिया। क्रीडादर्शन के अतिशय मोह में चिकित्सक की कर्त्तव्यहीनता ने बालक के प्राण ले लिए।

माधव की आरती के समय ब्रह्मचारी देवदास अनुपस्थित था क्योंकि वह मार्ग में मुमूर्षु कुष्ठ रोगियों की सेवा में नियुक्त था। मठाधीश अत्यन्त क्रोधित होता हुआ कहने लगा कि ब्रह्मचारी होता हुआ भी मायाग्रस्त!! संसार से विरक्त होकर भी आसक्त? ब्रह्मचारी को यह शोभा नहीं देता। ब्रह्मचारी के लिए माधव ही सब कुछ होता है। उसी की सेवा करनी चाहिए। उसी की आराधना करनी चाहिए। इसी के लिए संसार में जन्म होता है। इसी से मोक्षलाभ निश्चित होता है। इस सेवाकर्म की अवहेलना करके ब्रह्मचारी मठ में रहने में समर्थ नहीं है।

देवदास ने सम्पूर्ण वृत्तान्त मठाधीश को सुनाया। दण्ड से प्रताड़ित देवदास से ब्रह्मचारी ने कहा कि अब से माधवसेवा में अनियमितता नहीं होनी चाहिए। मठ में आरती कार्यक्रम चल रहा था। अश्रुपूर्ण नेत्रों से देवदास उस समय देख रहा था–

माधवस्य सिंहासने पूर्वसेवितः कुष्ठरोगी तिष्ठति, यस्य व्रणपूरितं देहं मक्षिकाः उत्पीडयन्ति। जलं विना यस्य गलरोधः भवति। तस्य आशुचिकित्सा अवश्यं करणीया अस्ति।[27]

माधव के सिंहासन पर पूर्वसेवित कुष्ठरोगी स्थित है, उसकी घाव से भरी हुई देह को मक्खियाँ पीडित कर रही हैं। जल के बिना जिसका गला रुक रहा है उसकी शीघ्र ही चिकित्सा की जानी चाहिए।

माधव सेवा से भी बढ़कर है मानव मात्र की सेवा। छाप–तिलक, पूजा, अर्चना और आरती आदि में ईश्वर के प्रति भक्तिभाव से भी बढ़कर है रोगी, दरिद्र, अभावग्रस्त, भिक्षुक तथा आकांक्षी की सेवा करना। सही मायने में यही प्रभुसेवा है अन्य सभी दिखावे की श्रेणी में आते हैं।

सेवाधर्मे सन्नद्धाः हि प्राणाः
संस्कृतिः या अतिमनोरमा
जीवप्रीतिः सम्पत्तिः यदीया
विश्वहिते मतिः यस्याः
स्वकर्मणि सततं निमग्ना।[28]

विश्व में सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का आयोजन होता है। वहाँ स्वप्न सुन्दरियाँ अपनी केशसज्जा, मधुर लास्यमयी हास्य, सिंहकटी, कुरङ्गीनयन, गजेन्द्र के समान चाल तथा अङ्गलावण्य प्रदर्शित कर स्वयं को श्रेष्ठ सुन्दरी प्रकट कर रही है। किन्तु वास्तव में विश्वसुन्दरी तो वह है जो अकाल वृद्धावस्था से युक्त, चिन्ता से आतुर, जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों से युक्त, बढ़े हुए केश तथा काँपते हुए शरीर वाली है। जिनका मन विश्व दुःख को देखकर आन्दोलित है। स्वयं के परिवार तथा दाम्पत्य जीवन की उपेक्षा करके जिनका हृदय दूसरों के नयनजल के कारण आतुर है। जो प्राणियों की सेवा में तत्पर है। संसार के सभी प्राणियों से प्रेम ही जिसकी सम्पत्ति है। सर्वदा विश्व कल्याण के विषय में सोचने वाली तथा स्वकर्म में निमग्न है। ऐसी सभी प्राणियों की सेवा तथा हित में अपना सम्पूर्ण जीवन लगाने वाली महिला ही सुन्दरी है कोई और नहीं। सुन्दरता कर्मों से होती है। शारीरिक नहीं। जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य सेवापरायणता है वही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है।

(घ) शिक्षा

जीवन में शिक्षा का अहम् योगदान है क्योंकि शिक्षा बालक में से पाश्विक प्रवृत्ति हटाकर उसे भावना, संवेदना तथा सदाचार जैसे मानवीय गुणों से सराबोर करती है। मनुष्य में सीखने की

क्षमता सर्वाधिक मानी गई है। अतः शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का विकास होता है तथा समाजीकृत व्यक्ति समाज का योग्य तथा ज़िम्मेदार नागरिक बनता है।

सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या वह है जो मनुष्य को मुक्ति दिलाए। जब हम शिक्षा शब्द का प्रयोग करते हैं, तो यह दो अर्थों में लिया जाता है– संकुचित तथा व्यापक संकुचित अर्थ की बात करें तो एक निश्चित स्थान पर निश्चित समय में सुनियोजित ढंग से विद्यार्थी को दी जाने वाली सोद्देश्य प्रक्रिया अर्थात् विद्यालय तथा महाविद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा। व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलाने वाली सोद्देश्य प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों को परिमार्जित कर उसके ज्ञान तथा कौशल का विकास कर उसके व्यवहार का परिवर्तन किया जाता है ताकि वह सुसभ्य और योग्य नागरिक बन सके। इस प्रकार से सीखने का माध्यम भी अनौपचारिक होता है जैसे रेडियो, टेलाविज़न, पत्र–पत्रिकाएँ, विभिन्न समूह तथा इंटरनेट आदि।

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। व्यक्तिगत विकास तथा मानव कल्याण के लिए शिक्षा का योगदान अभूतपूर्व है। शिक्षा द्वारा ही सभ्यता व संस्कृति का हस्तान्तरण तथा अक्षुण्णता संभव है। समाज तथा राष्ट्र की प्रगति भी शिक्षा पर ही निर्भर है।

साहित्यकार प्रमोद कुमार की कृतियों में विभिन्न स्थलों पर शिक्षा के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है तथा शिक्षा के दोनों स्वरूप (1) औपचारिक तथा (2) अनौपचारिक के दर्शन होते हैं, जिनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

पथिक मार्ग में एकाकी जा रहा था। उसकी यह यात्रा कब समाप्त होगी वह स्पष्ट रूप से नहीं जानता था। कभी अल्पाहार द्वारा तो कभी उपवास द्वारा वह अपना समय व्यतीत कर रहा था। एक बार मार्ग में कुछ लोगों के साथ उसका साक्षात्कार हुआ। वे सभी विभिन्न शास्त्रों में पारङ्गत पण्डित थे। उनके सान्निध्य से पथिक सुखी हो गया। प्रारंभिक परिचय के पश्चात् किसी पण्डित ने पथिक से पूछा–क्या तुम वेद के विषय में जानते हो? उस पथिक ने उत्तर दिया नहीं। वह पण्डित हँसने लगा। कुछ समय के पश्चात् किसी अन्य पण्डित ने पूछा गीता का कौनसा अध्याय तुम्हें सर्वाधिक रूचिकर लगा? पथिक शान्त रहा। उस पथिक को गीता का ज्ञान नहीं है यह जानकर वह पण्डित कहने लगा कि तुम्हारा जीवन व्यर्थ है तुम वेद नहीं जानते। गीता को भी तुमने नहीं पढ़ा है तुम किस प्रकार के मनुष्य हो। पथिक पूर्ववत् चुप रहा। पुनः किसी पण्डित ने पूछा–क्या तुम हरिश्चन्द्र के चरित्र को जानते हो? जिनका त्याग आज भी प्रसिद्ध है। पथिक ने उत्तर दिया मैं नहीं जानता। सभी पण्डितों ने पथिक की मूर्खता को जानकर उपदेश दिया–तुम शास्त्रों को पढ़ो। शास्त्र ज्ञान के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है। अतः पूर्णरूप से शास्त्रों का

अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार से सभी जा रहे थे तभी मार्ग में एक उपवन आया। जिस उपवन में सुन्दर तथा मनोहर पके हुए फल सुशोभित हो रहे थे। स्वच्छ जलापूरित सरोवर मध्य भाग में शोभायमान था। पक्षी कलरव कर रहे थे। उस समय उपवन में कोई प्रहरी नहीं था।

पथिक ने देखा कि बिना सोच–विचार के सभी पण्डितों ने उपवन में प्रवेश किया। स्वेच्छापूर्वक उन्होंने शाखाएँ नष्ट कर दीं तथा फल खा लिए। फलोन्मुखी पुष्पों को उन्होंने अपने पैरों से कुचल दिया तथा सरोवर के जल को दूषित कर दिया। अचानक समीपस्थ घर के अन्दर से पात्रस्थित स्वर्ण मुद्राएँ चोरी हो गई। वे सभी पलायन कर गए। पथिक वहीं स्थित होकर विचार करने लगा–

जीवनमूल्यविषये बहुभाषिणां पण्डितानाम् इयं कीदृशी प्रवृत्तिः। कीदृशी एतेषां गतिः। शास्त्रप्रयोजनं कथं भवति? केवलम् अन्यस्मै उपदेशाय अथ स्वस्य चरित्रस्य संशोधनाय![29]

जीवनमूल्यों के विषय में अत्यधिक बोलने वाले पण्डितों की यह कैसी प्रवृत्ति है। इनकी यह कैसी गति है। शास्त्र प्रयोजन किस प्रकार का है, केवल दूसरों को उपदेश देने के लिए अथवा स्वयं के चरित्र संशोधन के लिए।

शिक्षा का एकमात्र तथा अन्तिम उद्देश्य व्यवहार का परिमार्जन है। अतः जो स्वयं को सुसंस्कृत न बना पाए ऐसी शिक्षा का क्या मूल्य। कहा भी गया है–

पुस्तके पठितः पाठः जीवने नैव साधितः।
किं भवेत् तेन पाठेन जीवने यो न सार्थकः।।[30]

अर्थात् पुस्तक में पढ़े हुए पाठ को यदि जीवन में न उतारा जाए तो उस ज्ञान से क्या प्रयोजन। आदर्शात्मक, उपदेशात्मक तथा ज्ञानात्मक शिक्षा यदि जीवन में प्रतिफलित नहीं होती है तो व्यक्ति मूढ़ ही है वास्तव में ज्ञानी तो वह है जो उस अर्जित ज्ञान का उपयोग स्वयं के जीवन में करे तथा दूसरों का भी मार्गदर्शन करे। वही वास्तविक शिक्षा भी है। पाण्डित्य प्रदर्शन करना अथवा वेदशास्त्रों का ज्ञान होना ही बुद्धिमत्ता नहीं है अपितु वास्तविक जीवन में व्यावहारिक ज्ञान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गुरु विश्वम्भर महान् शिल्पी थे। उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल में विभिन्न स्थानों से आए हुए छात्र पाषाण शिल्प कला का प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। उनके छात्र सर्वत्र ख्याति प्राप्त करते थे।

एक बार प्रशिक्षित छात्रों के दीक्षान्त समारोह से पूर्व गुरु ने अपने शिष्यों को आदेश दिया–कि सभी छात्र मिलकर उनकी एक प्रतिमा बनायें। इसके लिए उन्होंने स्वयं ही सभी छात्रों

में विभाग का आवण्टन कर दिया। कौनसा छात्र प्रतिमा के किस अंश का निर्माण करेगा। गुरु की इच्छापूर्ति में सभी छात्र निमग्न हो गए तथा यथासुन्दर अपने कर्त्तव्य के सम्पादन में लग गए। प्रतिमा के निर्माण कार्य के समाप्त होने पर किसी छात्र ने कहा–प्रतिमा निर्माण में मेरा दायित्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मैंने ही मुख का निर्माण किया है अतः सर्वाधिक प्रशंसा के योग्य मैं ही हूँ। उस छात्र के वचनों से उत्क्षिप्त दूसरे किसी छात्र ने कहा मैं भी आदर के योग्य हूँ क्योंकि जिन हाथें से गुरु हमें विद्या देते थे, उनका निर्माण मैंने किया है। अतः मैं श्रेष्ठ हूँ। इस प्रकार नेत्र, ग्रीवा, वक्षस्थल तथा चरणों का जिन्होंने निर्माण किया वे सभी अपनी उत्कृष्टता स्थापित करने लगे। उत्क्षिप्त वे एक दूसरे द्वारा निर्मित अङ्ग नष्ट करने लगे। पाँच मिनट के अंदर ही समग्र प्रतिमा चूर–चूर हो गई। तत्पश्चात् क्रुद्ध छात्रों ने उस पर पैरों से प्रहार किया।

एतावत् कालपर्यन्तम् एकस्मिन् निभृते स्थाने दण्डायमानः सन् गुरुः विश्वम्भरः चिन्तितवान्–स्वस्य अंशे मदमत्तैः एतैः शिल्पकलायाः सामग्रिकी सत्ता यदि नानुभूता तर्हि किमेतेषां विद्याग्रहणेन। किं वा मूल्यं मम विद्याप्रदानेन?[31]

कुछ समय के पश्चात् एकान्त स्थान पर गुरु ने विचार किया कि अपने द्वारा निर्मित अंश में मदमत्त इन शिष्यों ने शिल्पकला की समग्र सत्ता को यदि अनुभव नहीं किया जो इन छात्रों के विद्या ग्रहण से क्या लाभ अथवा मेरे द्वारा विद्या प्रदान करने का क्या मूल्य?

प्रस्तुत कथा में कथाकार का कथन है कि शिक्षा वह है, जिसकी प्राप्ति के पश्चात् छात्रों में सामाजिक प्रतिमानों तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना हो। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सभ्यता तथा शिष्टता का प्रभाव दृष्टिगोचर हो तथा ऐसे आवेग–संवेग जो मनुष्यता के लिए बाधक हों वे समूल नष्ट हों। कहा भी गया है–

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धममाप्नोति, धनात् धर्मं ततः सुखम्।।[32]

विद्या मनुष्य को विनम्रता प्रदान करती है विनम्रता से योग्यता आती है। योग्य व्यक्ति ही धन को प्राप्त करता है। धन से धर्म और फिर सुख प्राप्त होता है।

उद्योगप्रदाने असमर्था विद्या
निष्फला अनादृता जगति
न काऽपि पठति अथ स्पृहयति।
अतः यया सुगमायते धनागमः
समुपलभ्यते अखण्डितः अधिकारः

सा एव विद्यापदवाच्या

इदानीन्तनसंसारचक्रं तामेव अपेक्ष्यते।।[33]

उक्त कविता में कवि नायक जी ने वर्तमान शिक्षा–प्रणाली पर व्यंग्य किया है क्योंकि यह शिक्षा रोज़गारोन्मुखी नहीं है। उद्योग प्रदान करने में असमर्थ तथा निष्फल होने के कारण सम्मान के योग्य नहीं है। कोई भी इसे पढ़ने की इच्छा नहीं रखता। अतः जिस शिक्षा के द्वारा धन का आगम सुगम हो तथा अखण्डित अधिकार की प्राप्ति हो वही विद्या है। वर्तमान संसार ऐसी ही शिक्षा की अपेक्षा करता है। आज अविद्या विद्या पर हँस रही है। अविद्या के समान विद्या प्रत्यक्ष प्रमाण में उपलब्ध नहीं होती है और न ही मनोरंजन में संलग्न होती है। जबकि अविद्या अमृत तथा मुक्ति की प्रदात्री है। एक बार सांयकाल किसी व्यक्ति ने कहा–अन्य जनों के समान विद्या का भी भाग्य होता है, चक्र की पंक्ति के अधोभाग में विद्या स्थित रहती है। विभिन्न उपायों के द्वारा अविद्यार्थियों के विनोद के लिए विद्या की परीक्षा ली जाती है।

उच्च माध्यमिक परीक्षा का फल प्रकाशित होता है– प्रयत्नपूर्वक पढ़ाए गए छात्र प्रथम दस स्थानों में तीन स्थान प्राप्त करते हैं। अतः प्रधान शिक्षक राजेन्द्र महापात्र अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। उसके शिक्षक जीवन में जैसे सार्थकता आ गई थी, ये छात्र उससे (गुरु से) प्रेरणा प्राप्त कर देशसेवा के कार्य में संलग्न होंगे प्रधान शिक्षक को इस प्रकार का विश्वास था।

पूर्व वर्ष के समान उस वर्ष भी विभिन्न संवाद पत्रों में इन छात्रों का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ। जब उनसे पूछा गया कि वे भविष्य में क्या बनना चाहते हैं तो सभी ने आई.ए.एस., इंजीनियर तथा डॉक्टर बनकर देशसेवा करने की इच्छा अभिव्यक्त की।

यह पढ़कर आश्चर्यान्वित प्रधान शिक्षक ने अपने प्रिय छात्रों को बुलाकर पूछा–छात्रों। तुम सबने अपने भविष्य के स्वप्न के विषय में बताया किन्तु किसी ने भी शिक्षक बनने की बात नहीं की। इसका क्या कारण है ? क्या तुम्हें शिक्षकवृत्ति रूचिकर नहीं लगती है ? क्या शिक्षक बनना देश की सेवा करना नहीं है? निरुत्तर छात्रों से प्रधान शिक्षक ने वही प्रश्न बार–बार पूछा। तब किसी छात्र ने धीरकण्ठ से कहा–

शिक्षकाः अधिकं वेतनं नैव लभन्ते। शिक्षकेभ्यः यानं नैव प्रददाति सर्वकारः। शिक्षकवृत्तौ न तथाधिकारः विद्यते। भयेन न कोऽपि प्रकम्पते शिक्षकं दृष्ट्वा नापि जनाः कार्यसिद्धये द्वारदेशे विकलेन प्रार्थन्ते। अतः तस्यां पदव्यां स्थित्वा कथं वा देश सेवा भवेत्?[34]

शिक्षक अधिक वेतन प्राप्त नहीं करते हैं। सरकार शिक्षकों को गाड़ियाँ भी नहीं देती है। शिक्षकवृत्ति में अधिकार भावना नहीं होती। शिक्षक को देखकर कोई भी भय से काँपता नहीं है। शिक्षक के द्वार पर कार्य सिद्धि हेतु कोई भी आतुरहृदय प्रार्थना नहीं करता है। अतः उस पद पर

रहकर कैसे देशसेवा की जा सकती है। छात्रों के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर प्रधान शिक्षक दुःखी होकर महाशून्य में देखने लगे और विचार करने लगे कि क्षमताओं की लालसा से गुरु का आसन प्रतिदिन लघुता को प्राप्त होता जा रहा है।

आज की युवा पीढ़ी शिक्षक बनना नहीं चाहती है क्योंकि इस परम पवित्र पेशे में प्रभुत्व, अधिकाधिक धनार्जन, सरकारी सुविधाओं का लाभ नहीं है। सभी डॉक्टर, इंजीनियर तथा सरकारी अफसर बनकर लाभ उठाना चाहते है, जबकि इन सभी को बनाने वाला एक शिक्षक ही है। स्वार्थ तथा अर्थ परायणता ने शिक्षा के मायने ही बदल दिए हैं।

देश के मर्यादापूर्ण शिक्षा विभाग के सर्वोच्च पुरस्कार को प्राप्त करके वरिष्ठ शिक्षक हरिगोपाल खन्ना महोदय जब अपने नगर लौटे तो ग्रामवासियों ने उनके लिए बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। नागरिकों ने इस प्रकार से उनकी प्रशंसा की कि ऐसा शिक्षक न केवल उस नगर का अपितु समग्र राज्य का गौरव है। इस अवसर पर उनके साथ हुए साक्षात्कार के कुछ अंश निम्नलिखित हैं–

सांवादिक– आपके मतानुसार शिक्षक का कर्त्तव्य क्या है?

हरिगोपाल –**"मम मतेन शिक्षकः प्रतिदिनं शिक्षाधिकारिणः कार्यालयम् अवश्यं गच्छेत्। तत्र कर्मचारिभ्यः छायादिकं प्रदद्यात्। अधिकारिणः गृहं गत्वा कुशलं पृच्छेत् यदि अधिकारिणा किमपि कठिनं कर्म असाध्यं स्यात्, तस्य समाधानं स्वयं कुर्यात्।"**[35]

शिक्षकों को प्रतिदिन अवश्य ही शिक्षाधिकारियों के कार्यालय जाना चाहिए। वहाँ कर्मचारियों को छाया आदि प्रदान करना चाहिए। अधिकारियों के घर जाकर उनकी कुशलता के विषय में पूछना चाहिए। यदि कोई कठिन कार्य अधिकारी के लिए असाध्य हो तो उसका समाधान स्वयं करना चाहिए।

सांवादिक– परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कौनसा उपाय छात्रों के लिए उत्तम है ?

हरिगोपाल – मम मतेन परीक्षायाम् अनुकरणव्यवस्था बाध्यतामूलिका करणीया। सर्वे परिक्षार्थिनः छात्राः पुस्तकं खातिकाम् अन्यत् किमपि वा दृष्ट्वा लिखिष्यन्ति।[36]

वर्तमान में परीक्षा व्यवस्था कठिन हो गई है। छात्र परीक्षा का नाम सुनते ही भयभीत हो जाते हैं अतः अनुकरण व्यवस्था की पालना करते हुए सभी परीक्षार्थी छात्र पुस्तकों में से या अन्य कहीं से भी देखकर ही प्रश्न पत्र को हल करें। इससे उनका परीक्षाभय नष्ट हो जाएगा। वे निर्भय होकर मातृभूमि की सेवा में स्वयं को लगायेंगे।

सांवादिक– किस उपाय से शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होगी?

हरिगोपाल –"अस्मद्‌विचारे गृहपाठ्‌यदान (Tution) माध्यमेन यदि सर्वकारीयशिक्षकाः पाठ्‌यदानं करिष्यन्ति, तर्हि शिक्षाक्षेत्रे प्रगतिः अवश्यं भविष्यति।"[37]

हमारे देश में बहुत समय से गुरुकुल प्रथा प्रचलित है। उस प्रथा की रक्षा करना हम सभी शिक्षकों का कर्त्तव्य है। हमारे विचार में यदि ट्‌यूशन पद्धति द्वारा सरकारी शिक्षक यदि शिक्षा दान करेंगे, तो शिक्षा के क्षेत्र में अवश्य प्रगति होगी।

सांवादिक– वर्तमान समय में हमें कैसी शिक्षा की आवश्यकता है?

हरिगोपाल –"इदानीं वस्तुतः उत्कोचग्रहणशिक्षायाः भूयसी आवश्यकता अस्ति। एतस्याः शिक्षायाः अभावात् अधुनाऽपि केचन कर्मचारिणः सर्वकारीयकार्यालयेषु कार्यं, कुर्वन्ति, ये खलु सहजोपायेन उत्कोचं नेतुं न पारयन्ति। अतः यदि एतस्मिन् विषये स्वतन्त्रविश्वविद्यालयमाध्यमेन शिक्षादानं कृतं स्यात्, तर्हि ज्ञानं प्राप्य शिक्षिताः कर्मचारिणः विना विचारेण उत्कोचं नेष्यन्ति। फलतः देशः प्रगतिशीलः भविष्यति।"[38]

इस विषय में मैंने अनेक बार कहा परन्तु मेरी बात किसी ने नहीं सुनी। अतः देश की दुर्गति बढ़ती ही जा रही है। वस्तुतः उत्कोच ग्रहण (रिश्वत) शिक्षा की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस शिक्षा के अभाव से कुछ कर्मचारी सरकारी कार्यालयों में कार्य कर रहे हैं, वे सहज उपायों से उत्कोच लेने में समर्थ नहीं हो पाते। अतः यदि इस विषय में स्वतंत्र विश्वविद्यालय के माध्यम से शिक्षा दी जाए तो ज्ञान प्राप्त करके शिक्षित कर्मचारी बिना विचारे उत्कोच लेंगे। फलतः देश प्रगतिशील हो जाएगा। उच्चशिक्षित युवक विदेश में उद्योग के लिए नहीं जाएंगे।

सांवदिक– ग्रामीण अंचल के विद्यालयों के विषय में कुछ कहिए।

हरिगोपाल–**"ग्रामांचले पंचानां विद्यालयानां कृते एकः शिक्षकः पर्याप्तः। यतोहि ग्रामीयाः छात्राः अतीव कोमलमतयः।"[39]**

ग्रामीण अंचल में पाँच विद्‌यालयों के लिए एक ही शिक्षक पर्याप्त है क्योंकि ग्रामीण छात्र अतीव कोमल मति वाले होते हैं। यदि वे गुरुमुख से एक बार किसी बात को सुनते हैं तो वह पाठ उन्हें कण्ठस्थ हो जाता है। अतः पाँच ग्रामीण विद्यालयों के लिए एक ही शिक्षक पर्याप्त है अन्य शिक्षक नगर को जावें।

'आदर्श शिक्षकः' नामक इस कथा में कथाकार ने व्यङ्ग्य रूप में एक साक्षात्कार प्रस्तुत किया है, जिसमें शिक्षा के स्वरूप में वर्तमान में होने वाले परिवर्तनों पर कटाक्ष किया है। शिक्षा जैसे पवित्र कर्म में भी रिश्वतखोरी स्वार्थ और धनलाभ जैसे तत्त्व शामिल हो चुके। सरकारी

शिक्षक विद्यालय में शिक्षण कार्य न कर ट्यूशन पद्धति से शिक्षण की ओर प्रवृत्त हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा की रोशनी नहीं है, शिक्षक शहरी क्षेत्रों में (सुविधा संपन्न) रहना चाहते हैं। परीक्षाओं में अनुचित साधनों का प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षकों का रुझान नई शैक्षिक तकनीकों के प्रयोग से छात्रों का अधिकाधिक मार्गदर्शन न होकर उच्च अधिकारियों की चापलूसी हो गया है। समाज को दिशा देने का दायित्व शिक्षकों का है शिक्षक ही राष्ट्र का निर्माता है।

शिक्षा का वास्तविक अर्थ स्वयं की शक्ति तथा योग्यताओं को परख कर अपनी शारीरिक तथा मानसिक कमियों का निस्तारण कर समाज के लिए उपयोगी बनना है न कि रटन्त विद्या से डिग्री प्राप्त करना। सच्ची शिक्षा छात्र को चरित्रवान, विनम्र, सदाचारी एवं संस्कारी बनाती है।

"पथिकः तत्रैव स्थित्वा चिन्तयति–जीवनमूल्यविषये बहुभाषिणां पण्डितानां इयं कीदृशी प्रवृत्तिः। कीदृशी एतेषां गतिः। शास्त्रप्रयोजनं कथं भवति? केवलम् अन्यस्मै उपदेशाय अथ स्वस्य चरित्रस्य संशोधनाय।"[40]

शिक्षा मनुष्य के विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। वेदों तथा शास्त्रों का अन्य लोगों को उपदेश देने तक ही सीमित नहीं है, अपितु ज्ञान का प्रयोग अपने चरित्र निर्माण में किया जाना चाहिए।

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं का परिमार्जन कर व्यक्तित्त्व का विकास करने वाली प्रक्रिया है। ज्ञान का प्रयोग व्यवहारिक जीवन में करना ही जीवन की सार्थकता है।

सः गायति स्वस्य चरितं
स्वकीयाम् अनुभूतिं
जीवनमहाभारतस्य गाथां
जयं पराजयं अवशोषं
सर्वं गायति वृद्धः
अन्येषां श्रवणाय शिक्षणाय
जीवनयुद्धस्य सूत्रं
चक्रव्युह गोपनरहस्यं
समाजस्य कुरुक्षेत्ररणे।[41]

भारतीय संस्कृति में वृद्धजनों को समाज में उच्च तथा आदर्श स्थान प्राप्त है। वृद्ध व्यक्ति ज्ञान तथा अनुभव का खज़ाना माना जाता है। किन्तु वर्तमान समय में वृद्धों के साथ दोयम दर्ज़े का व्यवहार किया जाता है। उन्हें अनुत्पादक, पराश्रित तथा भारस्वरूप समझा जाता है। जीवन भर अपने परिवार पर स्नेह तथा देखभाल की छाँव फैलाने वाला, मन–कर्म तथा वचन से अपने

उत्तरदायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने वाला वृद्ध व्यक्ति एकाकी तथा उपेक्षित जीवन व्यतीत करने को विवश है।

कवि नायक जी ने उक्त कवितांश में इन्हीं भावों को अभिव्यंजित किया है। वे कहते हैं सायंकाल नदी तट पर काँपते हुए कदमों से कोई वृद्धजन उदात्त स्वर में गीत गाता है। वह अपने चरित्र का अपनी अनुभूति का गान करता है। जीवन रूपी महाभारत की गाथा को तथा जय–पराजय के गीत को गाता है। समाज रूपी कुरुक्षेत्र के रण में चक्रव्यूह गोपन रहस्य को तथा समाज के सभी लोगों को जीवन के युद्ध के सूत्र को बताने के लिए वह तीव्र ध्वनि में गीत गाता है। किन्तु फिर भी उसकी उपेक्षा होती है। उसके उपदेश की सर्वत्र अवहेलना होती है। न ही उससे कोई कुछ पूछता है, न ही वह समाज में आदर पाता है और न ही कोई प्राचीन में नवीन के संयोग के लिए प्रयत्न करता है।

गुरुकुल परंपरा भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों की महान् संवाहक है। गुरुकुल भारतीय संस्कृति को परिपुष्ट कर देश को ज्ञानी–विज्ञानी, चिन्तक, विचारक तथा समाजसेवी प्रदान करते है। इस परंपरा के कारण ही भारत को 'विश्वगुरु' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है–

"गुरुकुलमेव साधारणं शिशुं
मर्यादापुरुषोत्तमरामरूपेण
योगेश्वरकृष्णरूपेण
विनिर्माति, ते युगं संस्थापयन्ति
शान्तिवार्तां विश्वस्मिन् परिप्रचारयन्ति
गुरुकुलमेव एतस्य प्रमाणं
त्यागतपःसाधनार्थं परमं क्षेत्रम्।"[42]

गुरुकुल शिक्षा के प्राचीनतम केन्द्र थे गुरु के सन्निध्य में ब्रह्मचर्य में निवास करता हुआ छात्र जीवन के विविध पक्षों का ज्ञान प्राप्त करता था विद्यार्थी हर प्रकार के कार्य को यहाँ सीखता था। शिष्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाता था चाहे वह किसी भी वर्ण का हो। गुरुकुल शिक्षण व्यवस्था में साधारण शिशु को मर्यादापुरुषोत्तम राम के रूप में तथा योगेश्वर कृष्ण के रूप में निर्मित किया जाता है। वे संपूर्ण विश्व में शान्ति का प्रचार–प्रसार करते हैं। गुरुकुल त्याग, तपस्या तथा साधन का परं क्षेत्र है।

"अज्ञातस्य मानवस्य दुर्दशां विलोक्य

कदा प्रतिष्ठितः भविष्यति मानवस्य धर्मः

एकाकाशतले एकनीडे जीविष्यन्ति

विश्वश्रेष्ठजीवाः

वद रे प्रेयसि!

कदा हि त्वं गमिष्यसि

वन्दनीयं विश्वमातृपदम्।"[43]

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है पर दुःख कातरता। किन्तु आज का मनुष्य सब कुछ देखकर भी भावहीन होकर अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर रहता है। आर्त्तजन की सहायतार्थ किसी के पास भी समय नहीं है। इसके विपरीत काक समुदाय का उदाहरण देकर कवि कहते हैं कि एक कौए की मृत्यु का संवाद अन्य कौओं में विद्युत के वेग से बिना किसी माध्यम के प्रसारित हो गया। अपनी संवेदनाएँ प्रदर्शित करने के लिए तथा मृत कौए के अंतिम दर्शन हेतु लक्ष्य संख्या में परिचित तथा अपरिचित एकत्रित हुए काक जाति को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रदान नहीं की गई है, न ही साहित्य रचा गया और न ही भाषण तथा सभाएँ इत्यादि आयोजित की गई फिर भी वे परस्पर दुःखी तथा सहायक सिद्ध हुए हैं और मनुष्य एक–दूसरे से स्नेह नहीं करते, भ्रातृभाव नहीं रखते और न ही परस्त्री में माता का भाव रखते हैं। अतः कवि नायक जी कामना करते हैं कि एक ही आकाश के तल पर एक नीड में विश्व के श्रेष्ठ जीव रहें और मानव धर्म की प्रतिष्ठा संपूर्ण भूखण्ड पर हो।

(ङ) संस्कृति की समन्वयवादिता

कन्या का विवाह नहीं हुआ। पुत्र आज भी बिना किसी उद्योग के इधर–उधर घूम रहा है पत्नी भी अस्वस्थ रहती है। दरिद्रता का निर्मम प्रहार प्राणों को चारों ओर से बाधित कर रहा था। निराकरण का क्या उपाय करना चाहिए। चिन्ता में व्याकुल शेषदेव ने आकाश की ओर देखा उसी समय उसके कान में किसी ने कहा–शेषदेव। भगवान से प्रार्थना करो। सभी को सुख देने वाला एक वही तुम्हारे दुःख को दूर करने में समर्थ हैं। तब से लेकर शेषदेव यथाविधि भगवान से प्रार्थना करने लगा। अपनी सभी चिन्ताएँ भूलकर वह ईश्वरीय भक्ति में लीन हो गया। इसी अवस्था में कुछ दिन व्यतीत हुए। घर की दुरवस्था दिनोंदिन बढ़ती रही। चारों ओर अशान्ति फैल गई।

एक बार सायंकाल शेषदेव के सम्मुख भगवान प्रकट हुए। उन्होंने प्रणाम स्वीकारा तथा वर माँगने का आदेश दिया। चाहते हुए भी शेषदेव कुछ भी कहने में समर्थ न हो सका। उसके सम्मुख सम्पूर्ण विश्व का चित्र उद्भासित होने लगा। दरिद्रता से पीड़ित सभी मनुष्यों के शुष्क

वदन उसे दिखाई देने लगे। आर्त्त चीत्कार उसके हृदय की कन्दराओं को आन्दोलित करने लगा। उसी समय भगवान ने उससे पुनः कहा—वर स्वीकार करो। विलम्ब मत करो। मेरे पास समय नहीं है। जिसके लिए तुमने इतनी कठिन तपस्या की है, उसका लाभ प्राप्त करने में किसलिए विलम्ब कर रहे हो। तुम्हारा परिवार भी प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तुम उनके सुख की कामना करोगे। किन्तु शेषदेव उसी प्रकार से निश्छल रहा। उसकी दृष्टि उर्ध्वगामिनी रही। वह विचार करने लगा कि सम्पूर्ण विश्व उसी का है अतः सभी प्राणियों के दुःख दूर होने चाहिए। यह भावना बार—बार उसके अन्तर्मन को उद्वेलित करने लगी। स्वयं का कष्ट शेषदेव को तुच्छ से भी तुच्छ लगने लगा। पुनः अनुरोध करने पर वह भगवान से विनम्र निवेदन करने लगा—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्
ऊँ शान्तिः ऊँ शान्तिः ऊँ शान्तिः"[44]

भारतीय संस्कृति की विशेषता है— 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् संपूर्ण पृथ्वी ही एक परिवार है। अपने स्वार्थ, हित और सुख—दुःख को छोड़कर भारतीय संस्कृति में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के सिद्धान्त को अपनाया गया है। सभी प्राणी सुखी हो, निरोगी हों, सभी का कल्याण हो तथा कोई भी दुःख का भागी न हो। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में उदारता, समन्वयवादिता, सहिष्णुता तथा अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत कथा में कथाकार ने पात्र शेषदेव के माध्यम से लोकहित और विश्वकल्याण की भावना को अभिव्यक्त किया है। संसार के सभी सुखों से बढ़कर है मानवता से प्रेम करना यही सिद्धान्त भारतीय संस्कृति को निरंतर पल्लवित तथा पुष्पित करते हैं।

सामाजिकता, आदर्शात्मकता, समानता, प्रेम, सहिष्णुता तथा उदारता आदि गुणों की दृष्टि से भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी है। यह व्यक्ति में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसी भावना को निम्नलिखित कथा में स्पष्ट किया गया है।

भगवान् का जयन्ती उत्सव का समारोह चल रहा है। विभिन्न प्रकार के व्यंजन पाकशाला में प्रस्तुत किए गए हैं। सर्वश्रेष्ठ प्रकाश की व्यवस्था है। निरन्तर प्रवचन की धारा भक्तजनों को आनन्दित कर रही है विभिन्न प्रकार के वस्त्रों तथा दुर्लभ पदार्थों से भगवान की प्रतिमा मन्दिर में सुशोभित है। मठाधीश अतिथि सत्कार में निमग्न हैं। प्रसाद सेवन का समय आया। उपस्थित भक्त

आनन्दपूर्वक मठाधीश की प्रशंसा करते हैं, उसी समय कोई भिक्षुक आश्रम के द्वार पर आता है और अन्न के निमित्त प्रार्थना करता है। मठाधीश अतिथि सेवा में व्यस्त होता है अतः क्षुधा की अधिकता से भिक्षुक वहीं सो जाता है।

"हठात् तस्य शरीरे कश्चन करं संचाल्य कथयति–अहम् अतीव दरिद्रो भवामि। यदि अन्यथा नैव चिन्तयति, तर्हि आगच्छ मम गृहे भोजनं मिलिष्यति। आगत्य तेन सह भिक्षुकः गच्छति। दरिद्रकुटीरे असौ अतीवप्रेम्णा खादति। परिवारजनाः भिक्षुकस्य सेवायाम् आत्मानं विनियोजयन्ति। भिक्षुकः तत्रैव कानिचन दिनानि स्थातुं स्थिरीकरोति।"[45]

अकस्मात् उस भिक्षुक के शरीर पर कोई हाथ फेरता है और कहता है– मैं बहुत दरिद्र हूँ। यदि आप अन्यथा न सोचें तो आइए मेरे घर भोजन कीजिए।

भिक्षुक उस व्यक्ति के साथ जाता है। दरिद्र की कुटिया में वह भिक्षुक प्रेमपूर्वक भोजन करता है। परिवार के सभी लोगों ने स्वयं को भिक्षुक की सेवा में नियोजित कर दिया। भिक्षुक ने वहीं कुछ दिन रहने का विचार बनाया।

भारतीय संस्कृति में अतिथि को देवतुल्य माना गया है। अतिथि की सेवा–सत्कार और अभ्यर्थना अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति करता है। बचपन से यही संस्कार दिए जाते हैं कि अभ्यागत के साथ सज्जनतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए, उनके मान–सम्मान तथा सुख–सुविधाओं का ध्यान रखना चाहिए तथा यथासंभव उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति की अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें विभिन्न पर्वों, उत्सवों, रीति–रिवाजों तथा प्रथाओं का भी समावेश है। विभिन्न समारोहों का आयोजन संस्कृति को भव्यता और गरिमा प्रदान करता है। दुर्बल तथा असहाय जनों की सहायता करना, क्षुधातुरों के लिए भोजन की व्यवस्था करना सभी में समानता का भाव रखना तथा किसी भी आधार पर कोई भेदभाव न करना ही वास्तविक अर्थों में मानव धर्म है।

पुत्र दिनेन्द्र के पत्र को पढ़कर विषाद के कारण व्याकुल पत्नी को चारुशील भट्ट नागर इस प्रकार समझाता है।

"ईदानीन्तने युगे तादृशः आचारः न चलति। विवाहनिमित्तं यथा परिवारस्य मतं नापेक्ष्यते, तथैवापि कुलगोत्रयोः विचारणा नैव तिष्ठति। स्वस्य विवेकानुमोदितां कन्यां यथा युवकः चिनोति, तथैव हृदयजयकारिणं युवकं वरयति कन्या। अतएव अस्मिन् माङ्गलिके कर्मणि न कश्चन वाधकः भवेत्।"[46]

भारतीय संस्कृति में विवाह एक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है। विवाह कोई शारीरिक अथवा सामाजिक अनुबन्ध न होकर एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधना है। चारों आश्रमों में भी गृहस्थ आश्रम का महत्त्व सर्वविदित है इसीलिए कहा जाता है 'धन्यो गृहस्थाश्रमः'। भारतीय संस्कृति में शीलता तथा लचीलापन देखने को मिलते है। यह अन्य संस्कृतियों की विशेषताओं को सही समय पर अपना लेती है तथा अपने मूल अस्तित्व को भी सुरक्षित रखती है। समय के साथ चलते रहना ही भारतीय संस्कृति की अनूठी पहचान है।

भारत देश में प्राचीनकाल से ही कई प्रकार के विवाहों का प्रचलन रहा है परन्तु वर्तमान समय में अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन बढ़ा है, जो मूलतः विदेशों में ही प्रचलित था। किन्तु भारतीय संस्कृति ने इस परंपरा को सहर्ष स्वीकार किया है। जो इसके समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रकट करती है। अब विवाह में परिवारजनों के मत की अपेक्षा नहीं की जाती। कन्या अपनी इच्छानुसार वर का चयन करती है। कुल तथा गोत्र का भी विचार नहीं किया जाता अर्थात् समाज की चिर प्रचलित बुराईयों का भी धीरे–धीरे अन्त हुआ है जैसे–बाल विवाह, जातिवाद तथा दहेज प्रथा।

विधवा पुनर्विवाह से सतीप्रथा पर भी अंकुश लगा है।

"मार्गे आनन्दाभिभूता पत्नी वदति–दिनेन्द्रस्य बधूचयनबुद्धिस्तु अभिनन्दनीया। अस्माकं कुलानुरूपां बधूम् आनीय सः मम अधिकस्नेहभाजनं भवति। इदानीं मम दुःखं नास्ति।"[47]

चारूशील की पत्नी ने आनन्दित होकर कहा कि दिनेन्द्र ने हमारे कुल के अनुरूप वधू का चयन किया है अतः मुझे इस विवाह से किसी भी प्रकार का दुःख नहीं है, अपितु अब वह मेरे अधिक स्नेह का पात्र है।

लेखक की इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि समाज की सोच में परिवर्तन परिलक्षित होता है। अन्तर्जातीय विवाह को भी वर्तमान में स्वीकार किया जाने लगा है, जबकि यह पाश्चात्य संस्कृति की देन है।

प्रत्येक देश की अपनी ही अलग सभ्यता और संस्कृति होती है और हमारी परंपरा है 'सादा जीवन उच्च विचार'। परन्तु आधुनिकता की अंधी दौड़ और पाश्चात्य संस्कृति के जीवन में प्रवेश करने से हमारी जीवन शैली कुछ बदल सी गई है क्योंकि जिस समाज में हम रहते हैं, वहाँ का वातावरण, सभ्यता तथा नैतिक मूल्य कुछ और ही हैं।

प्रस्तुत कथा **'उवाच कण्डुकल्याणः'** में व्यंग्य के माध्यम से इन्हीं भावों का प्रस्तुतीकरण हुआ है।

"जीवनस्य वहुमार्गः अन्वेषितः मया। बहुजन्म परीक्षितम्। परन्तु न किमपि एतादृशं जन्म अस्ति। यत्र दुःखं नास्ति, यत्र श्रमः नास्ति। सर्वत्र..........परिपूर्णा यातना। परन्तु एकमेव तत् जन्म...... .....विदेशिकुक्कुरजन्म। यदा अन्यजन्म प्राप्स्यामि, तदानीं विदेशिकुक्कुरजन्मनिमित्तं प्रार्थितं मया।"[48]

कथा का नायक कण्डुकल्याण कहता है कि मैंने जीवन के बहुत से मार्ग ढूँढे। बहुत से जन्मों की परीक्षा की गई परन्तु ऐसा कोई भी जन्म नहीं है, जहाँ दुःख नहीं है, श्रम नहीं है। सर्वत्र कष्ट ही कष्ट है परन्तु विदेशी कुत्ते के रूप में जन्मग्रहण करना लाभप्रद है। अतः वृद्धावस्था को प्राप्त हुए इस शरीर को छोड़कर जब अन्य जन्म प्राप्त करुँगा, तो मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि मुझे विदेशी कुत्ते के रूप में जन्म दें क्योंकि न केवल मुझ जैसे मनुष्य बल्कि देवता भी नित्य इस स्वरूप को चाहते हैं। साधारण मानव ही नहीं बल्कि वित्तशाली, उच्च पदाधिकारी ज्ञानी जन यत्नपूर्वक विदेशी कुक्कुर का पालन करते हैं। जिस भी स्थान पर जाते है सर्वत्र इसी के विषय में वार्ता करते हैं। मिटु, पपु, डन्, जन् इत्यादि नाम रखे जाते हैं। प्रातः सायं भ्रमण हेतु ले जाते हैं। गाड़ी में कोई बैठे या न बैठे स्नेहपूर्वक पाला गया वह कुक्कुर अवश्य ही जाता है। गृह–स्वामिनी तो क्षणभर भी उसके अभाव में जीवित नहीं रह सकती। गृहस्वामिनी का प्रकोष्ठ भी उसके लिए उन्मुक्त होता है। महाविद्यालय में पढ़ने वाली गृहस्वामी की कन्या गमन–आगमन के समय अवश्य ही उस कुक्कुर के मुख पर चुम्बन देती है तथा उसका आलिंगन करती है। हमें भोजन में कभी–कभी रोटी भी नहीं मिलती परन्तु इसे प्रतिदिन मांस दिया जाता है। मेरे शरीर से असहनीय दुर्गन्ध आती है परन्तु विदेशी कुक्कुर को सुगन्धित द्रव्य से स्नान कराया जाता है। विदेशी कुक्कुर अपने स्वामी की सन्तानों के साथ खेलता भी है।

वर्तमान में जीवन स्तर, आचरण, शैली, भाषा, भोजन व पहनावे आदि प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता के दर्शन होते हैं। इस व्यंग्य कथा में विदेशी कुक्कुर को अत्यधिक सम्मान तथा सुख–सुविधाओं से युक्त दर्शाया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि किस तरह यह पश्चिम की सभ्यता हमारे मस्तिष्क पर विपरीत असर डाल रही है और अनुशासनहीन जीवन जीने को अग्रेसित कर रही है।

भारतीय संस्कृति का केनवास विशाल है, जिसमें सभी तरह के रंगों का प्रयोग किया गया है। यहाँ की संस्कृति जीवंत है। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय दिखाई देता है। आधुनिक शिक्षा पद्धति और प्राचीन शिक्षा प्रणाली में बहुत अंतर है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में बच्चे लगभग 25 वर्षों तक ब्रह्मचर्य आश्रम में निवास करते थे। गुरु के समीप रहकर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरु की आज्ञा का पालन करते थे। पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त व्यवहारिक ज्ञान अस्त्र–शस्त्र चलाने की विद्या, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा भी प्राप्त करते थे।

पूर्णतया सामाजिक बनकर छात्र ज्ञान तथा संस्कृति संरक्षण के योग्य बनता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण भारत को जगद्गुरु का दर्ज़ा प्राप्त है।

किन्तु आधुनिक शिक्षा प्रणाली विद्यालय केन्द्रित हो चुकी है तथा प्रतिस्पर्द्धा की इसी अंधी दौड़ में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का ही बोलबाला है। अभिभावक अपनी सन्तान को इन्हीं विद्यालयों में पढ़ाना चाहते हैं।

रात्रि बारह बजे पत्नी उलूकनयना अपने पति से कहती है पुत्र अयमारम्भ किसी सामान्य हिन्दी माध्यम विद्यालय में नहीं पढ़ेगा। अपितु, यह अंग्रेजी माध्यम विद्यालय में ही शिक्षा प्राप्त करेगा। उसके विद्यालाभ के ऊपर केवल हमारा जीवन ही आश्रित नहीं है अपितु देश की उन्नति भी आधारित है। अतः उसके लिए किसी उत्तम विद्यालय का चयन किया जाना चाहिए।

"मम पुत्रः अयमारम्भः अवश्यं इंग्लिस् मिडियम् विद्यालये पठिष्यति। तत्र जीवनमस्ति। आधुनिकशिक्षायाः प्रसारः भवति।"[49]

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में छात्र के सर्वाङ्गीण विकास पर बल दिया जाता है। विषयवस्तु के ज्ञान के अतिरिक्त विद्यालयों में संपूर्ण व्यक्तित्व विकास का अवसर छात्रों को प्रदान किया जाता है। विद्यालयों में विभिन्न प्रकार की सहशैक्षिक गतिविधियों का संचालन किया जाता है। इनडोर–आउटडोर खेल, नृत्य, वादन, गायन, नाट्यकला, भाषण, वाद–विवाद, कविता, विभिन्न आर्मी विंग्स का सफलतापूर्वक संचालन विद्यालयों में किया जाता है। शिक्षण की आधुनिक तथा नवीनतम तकनीकों का प्रयोग किया जाता है जैसे डिज़ीटल कक्षा–कक्ष आदि।

भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी दृष्टिकोण अन्य संस्कृतियों की विशिष्टताओं को सहज भाव से अपने आप में समाहित कर लेता है। केवल शिक्षण पद्धति ही नहीं भोजन, रहन–सहन, पर्व–त्यौहार, परंपराओं, प्रथाओं कला, शिल्प, नृत्य, संगीत, धर्म, भाषा तथा परस्पर संबंधों में विविधता का होना विविधता में एकता को दर्शाता है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को बहुत ही आदर–सम्मान प्राप्त है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नदी, पर्वत, वृक्ष तथा पशु–पक्षियों को मानव का चिर सहचर माना गया है। प्रकृति के विभिन्न अंगों को देवस्वरूप मानकर उसकी पूजा की जाती है। मनुष्य के जीवन की सुरक्षा प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा पर ही आश्रित है। संरक्षण की यह भावना प्राचीन काल में भी व्याप्त थी क्योंकि पर्यावरण और प्राणी एक दूसरे पर आश्रित हैं। भारतीय संस्कृति की इस विशेषता को निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है।

"समग्रः वनप्रदेशः वृक्षशून्यः
ये वृक्षाः तैः संपूजिताः आराधिताः
ते कर्त्तिताः उत्पातिताः नगरवासिभिः
खण्डिताः भवन्ति तेषां हिताय।"[50]

दुःखी शबरी आज चिन्ता में मग्न है कि आज कुटिया में श्रीराम आयेंगे तो वह उन्हें क्या समर्पित करेगी क्योंकि बहुत दिनों से जिस आम्रफल को संचित कर रखा था उसे रोगशय्या से उठकर क्षुधातुर पंचवर्षीय नाती द्वारा खा लिया गया। शबरी पुनः वन की ओर जाती है, जिससे परम पुरुष राम के प्रिय पदार्थ आम को वह ला सके किन्तु वन में वह विलाप करती है। समग्र वनप्रदेश वृक्षों से शून्य हो चुका है। जिन वृक्षों की पहले पूजा की गई थी, आराधना की गई थी आज नगरवासियों के द्वारा उन्हें काट दिया गया है, उखाड़ दिया गया है। कुछ स्वार्थीजनों ने वृक्षों के टुकड़े–टुकड़े कर दिए हैं। अब वह जगदीश्वर के आतिथ्य में क्या समर्पित करेगी। इस विचार से शबरी खिन्न है।

कवि इस कथा में पर्यावरण प्रदूषण की विकराल समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि विज्ञान तथा तकनीकि के इस युग में मानव जीवन को दिनोंदिन खतरा बढ़ता जा रहा है। कल–कारखानों तथा मोटरवाहनों से निकलने वाला धुआँ, वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई तथा ज़हरीली गैसों ने वायु को प्रदूषित कर दिया है, जिससे श्वसन संबंधी रोगों की समस्या उत्पन्न हुई है।

"तमसा तु प्रदूषिता
प्रदूषिताः लोकमातरः नद्यः
आर्यावर्त्तस्य सुधाधाराः
यन्त्र कवलितैः दानवैः।"[51]

नदी तथा कूप प्रदूषित हो चुके हैं। अमृत की ये धाराएँ औद्योगिकरण के फलस्वरूप आज विषाक्त हो चुकी हैं। आज जल में विचरण करने वाले जीव निर्भय होकर खेलते नहीं हैं। कोई भी पथिक इन जलाशयों के जल को नहीं पीता है। वाल्मीकि तथा याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि–मुनि पवित्र जल में स्नान करने के लिए नहीं आते हैं। शबरी विचारमग्न है कि जगत् के आधारस्वरूप श्रीराम की प्यास वह कैसे बुझाएगी। किस उपहार से वह उनका स्वागत करेगी। अपशिष्ट पदार्थों को जल में विसर्जित करने, तीव्र औद्योगिक विकास द्वारा, जलस्रोतों के दुरुपयोग तथा अन्य मानवीय तथा प्राकृतिक कारणों से जल प्रदूषण एक गंभीर समस्या बन गई है, इससे न सिर्फ जलीय जीवों का जीवन खतरे में है अपितु यह संपूर्ण मानव जाति के लिए भी गंभीर समस्या है।

ये प्राणिनः वने स्वेच्छया निर्भीकाः सन्तः विचरन्ति स्म, प्रथमतया ते प्राणिनः एभिः मारिताः। तेषां चर्म–शृङ्गादिकं विदेशं प्रेरयित्वा प्रभूतः अर्थराशिः उपार्जितः। फलतः कियत्सु दिनेषु समग्रं वनं प्राणिशून्यं जातम्।[52]

विदेश में उच्च शिक्षा सम्पन्न कोई युवक अपने नगर के समीप वनप्रदेश को देखकर चकित हो गया और कहने लगा अरे! कैसा दुर्भाग्य है। वैभवशाली वन के होते हुए भी लोग भूख से व्याकुल हैं कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सरकार से क्षमता प्राप्त कर वह युवक अपने मित्रों के साथ वनसंपदा पर इच्छानुसार कार्य करने लगा। जो वन्य प्राणी वन में पहले निर्भय होकर विचरण करते थे वे मार दिए गए। उनके चर्म तथा सींग आदि विदेश भेजकर अत्यधिक धनराशि अर्जित करने लगे। कुछ ही दिनों में संपूर्ण वन प्राणियों से शून्य हो गया। शेष जीव–जन्तु भी भयभीत होकर अन्यत्र पलायन कर गए। विशाल वृक्ष काट दिए गए उन्हें विक्रय कर धन प्राप्त किया गया। वृक्षों से परिपूर्ण वन वृक्षहीन हो गया फलस्वरूप प्रचण्ड ताप से जनजीवन जलने लगा।

परिशेषे तेषां दृष्टिः पर्वतेषु तथा च भूमेः अधोभागे स्थितेषु दुर्मूल्यप्रस्तरेषु अपतत्। येन गुल्मौषधिपरिपूर्णः पर्वतप्रदेशः परिध्वस्तः।[53]

अनादिकाल से स्थित पर्वतों के स्थान पर विशाल गर्त्त दिखाई दे रहे हैं। भूमि को खोदकर बहुमूल्य औषधियाँ, रत्न तथा धातुएँ निकाल ली गई हैं। पर्वत प्रदेश भी स्वार्थी तथा धन के लोभी मनुष्यों के द्वारा ध्वस्त किए जा चुके हैं।

प्रस्तुत कथा में कथाकार भारतीय संस्कृति के लिए खतरा बन चुकी समस्याओं का चित्रण करते हुए कहते हैं कि–

"इदानीं वनप्रदेशस्य दुर्दशा अवर्णनीया भवति। वृक्षाणां पर्वतानां च अनुपस्थितौ कदाचित् साक्षात्समये वृष्टिः न भवति। कदा अतिवृष्टिः कदा वा अनावृष्टिः परिपीडयति।

प्राणिनाम् अभावात् जीवमण्डलस्य भरसाम्यं न तिष्ठति। अत्यधिकभूमेः खननहेतोः बहुवारं भूस्खलनं जायते। गुल्मौषधिं विना जनाः रोगेण कम्पन्ते। फलादिकं नैव प्राप्य प्रायशः उपवासेन कालं नयन्ति। केचित् वा श्रमजीविनः भवन्ति नगरे।"[54]

वनप्रदेश की दुर्दशा इस समय वर्णन करने योग्य नहीं है। वृक्षों तथा पर्वतों की अनुपस्थिति में कभी–कभी वृष्टि समय पर नहीं होती फलस्वरूप कृषि प्रभावित होती है। कभी अतिवृष्टि (बाढ़) तो कभी अनावृष्टि (अकाल) पीड़ित करता है और जनजीवन प्रभावित होता है। जीवमण्डल पर सन्तुलन नहीं रह पाता। भूमि का अत्यधिक मात्रा में खनन करने से कई बार

भूस्खलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। औषधियों के अभाव में मनुष्य रोगाक्रान्त हो जाते हैं तथा काँपने लग जाते हैं। फल आदि खाद्य पदार्थों के अभाव में प्रायः लोग उपवास कर जीवनयापन कर रहे हैं अथवा नगर में जाकर श्रमिक का कार्य कर रहे हैं।

वृक्षों तथा वन्यजीवों का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। पारिस्थितिकी–तंत्र को सुचारू रूप से बनाए रखने में भी इनकी महती भूमिका है। अपने तुच्छ लाभ के लिए जानवरों के सींग तथा चर्म का विदेशों में निर्यात करना, वनों की विवेकहीनता के साथ कटाई करना, पर्यावरण को प्रदूषित करना तथा अत्यधिक खननकार्य भारतीय संस्कृति के लिए एक भयावह संकट है।

विश्व की सभी संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति प्राचीन, सर्वश्रेष्ठ तथा समृद्ध रही है। वर्तमान समय में जबकि सर्वत्र आधुनिकता का बोलबाला है, हमारी संस्कृति को सदाचार, सभ्यसंवाद, मानवीय मूल्य, संस्कार, परंपराओं तथा अन्य संस्कृतियों के महनीय तत्त्वों के समावेश ने इसे प्रतिक्षण नूतनता प्रदान की है। हमारे धर्म में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना सभी प्राणियों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करती है।

"पितामहः अहरहः शान्तिमन्त्रं समानतामन्त्रं च वाचयति। विश्वकल्याणार्थं श्लोकान् पठति। अथ च तस्य राज्यस्य नामश्रवणेन तस्य गात्रदाहः जायते। विश्वमेकनीडम् इति कक्षायां शिक्षकः वदति, परन्तु तद्राज्यमस्माकं शत्रुराज्यमिति सर्वथा कथयति। किमेतस्य समाधानसूत्रम्। कथमस्य भवेत् निराकरणम्। किं पक्षि भावनापेक्षया मनुष्याणां भावना नगण्या अस्ति।"[55]

पक्षियों के माध्यम से लेखक प्रमोद कुमार नायक ने विश्व बन्धुत्व तथा कल्याण की भावना को परिपुष्ट किया है साथ ही यह संदेश भी दिया है कि परस्पर शत्रुता तथा हिंसा का परित्याग कर शान्ति और समानता का व्यवहार करना चाहिए। जिस प्रकार पशु–पक्षी बिना किसी भेदभाव के एक साथ मिल–जुलकर रहते हैं उसी प्रकार सभी देश तथा देशवासी भी कलह तथा वैर को छोड़कर प्रेम तथा बन्धुता के भावों से रहें।

आतिथ्य–सत्कार भारतीय धर्म और संस्कृति का मूलाधार है। अतिथि को यहाँ देवतुल्य माना जाता है। अतिथियों के स्वागत–सत्कार तथा अभ्यर्थना में कोई कमी नहीं छोड़ी जाती है। 'अतिथि देवो भव' एक कथन न होकर जीवन जीने का सिद्धान्त है, एक कला है–

"परिवारजनाः भिक्षुकस्य सेवायाम् आत्मानं विनियोजयन्ति। भिक्षुकः तत्रैव कानिचन दिनानि स्थातुं स्थिरीकरोति।"[56]

पर दुःखकातरता, सेवाभाव, नैतिक मूल्य जैसे संस्कारों के बीज बालपन से ही रोपित किए जाते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतीय संस्कृति का परचम देश–विदेश में लहराता है।

"सर्वेषु घटेषु नारायणस्य अवस्थितिरपि समुपलब्धा। इह जन्मनः पापराशिम् आगामिनि जन्मनि प्राणी अवश्यं प्राप्स्यति इति सत्यवचनम्। पक्षिणां बन्धनं नितरां पापाय कल्पते। महापापभारः जीवनं दूषयति। एतदर्थं भवान् अस्मिन् अनुचितकर्मणि कथं प्रवर्त्तते। दुर्मूल्यमानवजीवने हरिभक्तिः अर्जनीया।"[57]

प्रस्तुत उद्धरण में भारतीय संस्कृति की कई विशेषताओं के दर्शन होते हैं। संसार के सभी प्राणियों में ईश्वर का वास है अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापी है। भारतीय संस्कृति कर्माधारित है, पाप–पुण्य तथा पुनर्जन्म में विश्वास करती है। इस जन्म की पापराशि को व्यक्ति आगामी जन्म में अवश्य प्राप्त करता है। पक्षियों को बँधन में रखने से पाप मिलता है और महापाप से जीवन दूषित होता है, अतः कभी भी अनुचित कर्म नहीं करना चाहिए क्योंकि जो जैसा कर्म करता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है। मानव जीवन अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है अतः इस जीवन को प्रभु की भक्ति में लगाना चाहिए। इस प्रकार आध्यात्मिकता, कर्मप्रधानता तथा नैतिकता के गुणों से युक्त भारतीय संस्कृति धर्म तथा कर्म का समन्वय है।

भारतीय संस्कृति में समन्वय का तत्त्व विद्यमान है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा विश्वकल्याण की कामना करने वाली भारतीय संस्कृति ने अन्य संस्कृतियों के गुणों को भी आत्मसात् किया है। भारत एक बहुभाषा–भाषी देश है। यहाँ विभिन्न भाषाओं को जानने, समझने तथा बोलने वाले लोग समवेत रूप में निवास करते हैं। ऐसी स्थिति में आधिकारिक रूप से किसी एक भाषा को सर्वसम्मति प्राप्त नहीं हुई है। अपितु जाति तथा प्रान्त के नाम पर मतभेद उत्पन्न हुए हैं।

"परिशेषे एवं स्थिरीकृतं, वनभाषा भवितुं वने काचिदपि सर्ववानरग्रहणयोग्या भाषा नास्ति। अतः विदेशं गत्वा सदस्याः कामपि भाषाम् आनयन्तु। सा एव विवादरहिता भाषा वनभाषा भवेत्। अनन्तरं तदेव जातम्। सदस्याः विदेशं गत्वा गौरभाषाशिक्षणं कृत्वा तत्र किष्किन्ध्यावने प्रचारितवन्तः। अनन्तरं सा एव भाषा वनभाषा रूपेण स्वीकृता आदृता च।"[58]

वनभाषा कथा में कविवर नायक जी की बिम्बात्मक लेखन शैली के दर्शन होते हैं। इस कथा में एक ओर तो आदिभाषा (संस्कृत भाषा) की शोचनीय अवस्था पर ध्यानाकृष्ट किया गया है और दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक प्रवृत्ति को दर्शाया गया है। गौर भाषा वर्तमान समय की आवश्यकता है। इसका ज्ञान प्राप्त करना तथा प्रयोग में लेना आज के समय की मांग है, जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

मनुष्य ईश्वर की सबसे अद्भुत रचना है। सोचने–समझने तथा तर्क करने की अप्रतिम शक्ति के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। वर्तमान में करोड़ों की संख्या में देवी–देवता,

अवतार पुरुष तथा ईश्वर मिलना सुलभ है किन्तु एकमात्र मनुष्य मिलना ही दुर्लभ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य इतिहास का कोई चर्चित प्रसंग है अथवा संग्रहालय का प्राचीन वैभव है–

> **"इह लोके**
> **निरीक्ष्यते उत्कटः अभावः।**
> **अभावस्तु नैव धनस्य**
> **नापि ज्ञानस्य**
> **नैव पुनः अधिकारस्य।**
> **इह लोके**
> **यः अभावः**
> **सः खलु मनुष्यत्वस्य**
> **अवलुप्ता जगतः**
> **मनुष्यस्य संज्ञा**
> **मानवीयचिन्ता**
> **आत्मचेतना, अथ विवेचना।"**[59]

कविवर नायक जी कहते हैं कि संसार में धन का, ज्ञान का और अधिकार का अभाव नहीं है, अपितु मनुष्यत्व का अभाव है। आज के परिवेश में मानव सिर्फ भौतिक सुख का लोभी बनकर रह गया है। उसके द्वारा किया गया व्यवहार कोरा अभिनय दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अभिनय करने वाली कठपुतलियाँ हैं। भारतीय संस्कृति में मानवता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जिसके प्रमुख तत्त्व है प्रेम, शान्ति, संतुलन, सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, त्याग, शुद्धता, नैतिकता, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि हैं।

(च) उच्छृङ्खलता

दुःखाभिभूता सरिता अपने पति मनोज से कहती है कि विवाह के सात वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी हमारी गोद शून्य है अर्थात् अभी तक सन्तान प्राप्ति नहीं हुई है। न जाने ईश्वर की दया कब प्राप्त होगी। दूसरों की सन्तानोत्पत्ति की कथाश्रवण से मन में खेद उत्पन्न हो जाता है। दिन–रात सन्तान का मुख देखने के लिए मन व्याकुल रहता है। मनोज सरिता को सान्त्वना देते हुए कहता है कि मातृत्व तो ईश्वर द्वारा प्रदत्त दान है किसी की इच्छा से वह संभव नहीं है।

इसी प्रकार से वे दोनों अपना जीवन व्यतीत करते हैं एक के लिए दूसरा सान्त्वना का केन्द्रबिन्दु बन जाता है। दोनों परस्पर धैर्य का स्थान बन जाते हैं। स्नेहपूर्ण वाक्य से सभी प्रकार की बाधाएँ दूर हो जाती है। एक बार अधिक धन अर्जित करने के लिए मनोज रेंगून प्रदेश गया।

रेंगून प्रदेश में निवास करता हुआ भी मनोज सरिता की क्रोड पूर्ति के विषय में चिन्तन करने लगा। परन्तु चाहकर भी वह अपने घर लौटने में समर्थ नहीं था और इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गए। कठिन परिश्रम करके मनोज ने धन अर्जित किया जिससे वह सरिता को मुख्य चिकित्सालय ले जाकर उसकी चिकित्सा करवा सकेगा।

"एकस्यां वर्षणमुखरितायां रजन्यां कामेशं समालिङ्ग्य क्रन्दन्ती सरिता वदति कामेश! इदानीम् अहं मातृत्वं प्राप्ताऽस्मि। मनोजस्य रेंगुनगमनं वर्षद्वयं जातम्। यदि एषा घटना ग्रामे प्रसारिता स्यात्, तर्हि मम मरणम् अवश्यम्।"[60]

मनोज के अन्य देश गमन करने पर पत्नी सरिता परपुरुषगामिनी हो गई। एक बार रात्रि के समय कामेश नाम के परपुरुष का आलिङ्गन करके विलाप करती हुई सरिता ने कहा कि वह माँ बनने वाली है और यदि यह घटना गाँव में फैल गई तो उसकी मृत्यु निश्चित है क्योंकि मनोज को गए हुए दो वर्ष हो गए हैं अतः हम नगरीय चिकित्सालय जाएँगे क्योंकि इस समय मैं मातृत्व सुख नहीं चाहती। यह देखकर मनोज का मन आज पूर्ण–रूप से अस्थिर हो गया। किसके लिए वह दूर विदेश में जाकर धन उपार्जित कर रह था? यह प्रश्न पुनः पुनः उसे व्यथित कर रहा था।

प्रस्तुत कथा में पात्र सरिता के माध्यम से उच्छृङ्खलता को अभिव्यक्त किया है। सरिता अपने पति के अन्यत्र जाने पर अपने सतीत्व की रक्षा नहीं करती। मातृत्व सुख के अभाव में असंतुष्ट वह परपुरुष से संसर्ग करती है। भारतीय समाज में जहाँ नारी की पूजा की जाती है वह अपने प्रत्येक रूप तथा भूमिका में आदर्श की स्थापना करती है तथा उदाहरण प्रस्तुत करती है। एक आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी, आदर्श माता, विदुषी महिला तथा सच्ची देशभक्त के रूप में नारी सदैव आदरणीय रही है। किन्तु इस प्रकार की चरित्रहीनता नारी की अनुशासनहीनता का ही प्रतीक है।

"घनान्धकाररजन्याः
निःशब्दप्रहरे
गृहकोणे
मम पदचुम्बिनः
आकुलप्रेमनिवेदकस्य
रूपमाधुर्याः प्रशंसायां
शतजिह्वपुरुषस्य (बिटपस्य)
भाषणेन

अहं विचकिता जाता
अयं मुख्यवक्ता
आदर्शपुरुषः
उपदिशति सर्वान्
युवकान् गृहस्थान्
एकपत्नीव्रतपालनाय।"[61]

रात्रि के घने अंधकार में निःशब्द प्रहर में घर के किसी कोने में मेरे चरणों का चुम्बन करने वाला व्याकुल होकर प्रेम का निवेदन करने वाला तथा सैंकड़ों प्रकार से रूप माधुरी की प्रशंसा करने वाले कामुक व्यक्ति के भाषण से मैं आश्चर्यचकित हूँ। लोगों की सभा में श्रोताओं के सम्मुख वही व्यक्ति मुख्य वक्ता के रूप में स्थित है। एक आदर्श पुरुष के समान सभी युवकों तथा गृहस्थियों को एकपत्नी व्रत का पालन करने का उपदेश दे रहा है। उसके भाषण में रूपजीवियों को दण्ड देने की बात कही गई है।

जनसमूहों में तथा विभिन्न प्रकार की सभाओं में आदर्शवादी भाषण देने वालों का यथार्थ कुछ और ही होता है। समाज के वे ही ठेकेदार विभिन्न प्रकार के व्यसनों में रत पाए जाते हैं। उनके उपदेश दूसरों के लिए होते हैं और वे स्वयं स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होते हैं। उनकी कथनी तथा करनी में सदैव अंतर रहता है।

"गृहकोशात्
धनं चोरयतः पुत्रस्य
करे धृत्वा पृच्छामि
कथमेतत् ? इति
उत्तरयति पुत्रः
एतत्तु गुरुदिवसाय।"[62]

वर्तमान के कोश से धन चुराते हुए पुत्र का हाथ पकड़कर पूछता हूँ कि यह क्या है? तो पुत्र उत्तर देता है यह तो गुरुदिवस या शिक्षक दिवस के लिए है।

वर्तमान समय में बालकों में भी उच्छृङ्खलता बढ़ती जा रही है। वे असत्य भाषण करने में अथवा चौरी जैसा घृणित कार्य करने में भी लज्जा का अनुभव नहीं करते बल्कि अपनी कुशलता से उसे छिपाने का प्रयास करते हैं। आज जो बालक हैं वे कल के कर्णधार होंगे। देश का भविष्य होंगे। यही छोटी–छोटी बुराईयाँ उनके व्यक्तित्त्व विकास में बाधा उत्पन्न करेंगी। अतः अनुशासनहीनता आज की पीढ़ी में कई स्थानों पर देखने को मिलती है जैसे–बड़ों का सम्मान न

करना, गुरुजनों की आज्ञा पालन न करना, अध्ययन से पराङ्गमुखी होना, अपना कार्य समय पर न करना, स्वेच्छाचारिता तथा प्रमाद।

"अपरिचितेन युवकेन सह
भ्रमित्वा गभीरे निशीथे
प्रत्यावर्त्तां पत्नीं
कारणं पृच्छामि
उत्तरयति पत्नी
सावित्रीव्रतद्रव्यक्रयणे
विलम्बो भवति।"[63]

किसी अपरिचित युवक के साथ आधी रात के समय घूमकर लौटी पत्नी से जब देर से आने का कारण पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि सावित्री व्रत का सामान खरीदने में देर हो गई।

अनुशासनहीनता समाज में प्रत्येक स्थान पर देखी जा सकती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज की नारी घर की चारदीवारी तक ही सीमित नहीं रही। स्वयं को अत्याधुनिक कहलवाने की होड़ में वह देर रात तक पार्टियों में व्यस्त रहने लगी, आधुनिक वस्त्र धारण करने लगी, मादकद्रव्यों का सेवन करने लगी तथा विवाहेतर संबंधों में भी लिप्त हो गई। अपने इन कार्यों पर कोई दुःख या पश्चाताप को अनुभव किए बिना अपनी भाषणकला के प्रदर्शन में भी सिद्धहस्त हो गई।

"कार्यालयात् कर्गजं लेखनीं
सहस्रं रूप्यकाणि
स्वस्य स्यूते संस्थाप्य
कथयति वरिष्ठलिपिकः
अहो! विशालेऽस्मिन् देशे
न कापि उन्नतिः भवति।"[64]

कार्यालय में कार्य करने वाला कर्मचारी/वरिष्ठ लिपिक भी तुच्छ स्वार्थ के लिए अनुशासनहीन हो गया। जो लेखन सामग्री कार्य करने के लिए दी जाती है उसमें से कुछ कागज़, लेखनी तथा हज़ार रुपये वह अपने बैग में रखकर कहने लगा कि इस विशाल देश में किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं होती।

कवि इस उदाहरण में यह व्यक्त कर रहे हैं कि छोटे–छोटे कार्यों में भी ईमानदारी दिखाई नहीं देती। बच्चों में ही क्या बड़ों में असत्य भाषण तथा चोरी जैसी बुरी आदतें अनुशासनहीनता को ही बढ़ावा देने वाली हैं।

अनादिकाल से ही निर्जनता सुशोभित है पवित्र प्रातः काल में ओंकार की मंत्रमुग्ध ध्वनि, मंद समीर का पुलकित स्पर्श पहाड़ी झरनों से सुशोभित क्षेत्र में ऐसा लगता है मानो स्वर्गीय संदेश प्रदान कर रहा है। पक्षियों का कलरव चारों वेदों को सुना रहा है तथा संगीत विद्या को निवेदन कर रहा है। वृक्षों का समवाय स्नेह, प्रेम तथा एकता का गीत गाने वाला है। प्रातः तथा सायं ऋषिगण वल्मीक के समान जहाँ गंभीर तपस्या में लीन रहते हैं। हरिणशिशु जहाँ निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं–

"प्रकृतिः विनष्टा साध्वी
तपोधना भुवनवत्सला
सभ्यतायाः उत्थानव्याजेन
अस्माभिः सुसभ्यैः (?)
मारितास्ते वनजीवाः प्रकृतिसन्तानाः
उत्सारिताः आदिजनाः सरलाः सुशान्ताः।"[65]

किन्तु आज निर्जनता को लूटा जा चुका है। शान्ति दग्धीभूता हो चुकी है। ऋषि–मुनियों की कथा इतिहास का प्रसंग बन चुकी है। न ही वृक्षों की शोभा दिखाई दे रही है, न ही शीतल पवन बह रही है, न ही मृगशिशु खेल रहे हैं, वृक्षों पर बैठकर पक्षी भी कूजन नहीं कर रहे हैं। आज पर्वत नष्ट हो चुके हैं तथा झरने विषैले हो चुके हैं। अपनी तृप्ति के लिए वैभवशाली मनुष्यों ने वन की भूमि को उखाड़ दिया गया है। जहाँ रात–दिन शान्ति थी (नीरवता) वहाँ ऊँची–ऊँची इमारतें खड़ी कर दी गई हैं। सर्वत्र तीव्र रूप से अधिकारस्थापना की भावना दिखाई देती है। अथवा इस क्षेत्र का स्वामी कौन है? वैदिक मन्त्रों का स्थान पाश्चात्य सङ्गीत ने ले लिया है। भ्रान्त पुरुष विदेशी मदिरा का पान करके निशाचर के समान विचरण कर रहे हैं।

सभ्यता के उत्थान के बहाने हम सुसभ्यों ने प्रकृति की आदिम सन्तान वन्य जीवों को मार दिया गया है। वन में निवास करने वाले सरल तथा शान्त लोगों को भी भगा दिया गया है। कवि कहते हैं कि मानव कब यह जानेगा कि प्रकृति के अभाव में शान्ति तथा वृद्धि संभव नहीं है। कौन इस संसार में निर्जनता के कष्ट को दूर कर सकता है? कब मनुष्य प्रकृति की उपासना करेगा?

मनुष्य की उच्छृङ्खलता इतनी बढ़ चुकी है कि वह प्रकृति–सुन्दरी के ही नाश में लग गया है, जिस प्रकृति के अभाव में जीवन की कल्पना ही व्यर्थ है।

प्राचीनकाल में वृद्धजनों की स्थिति उन्नत तथा सम्माननीय थी। परिवार की बागडोर तथा सत्ता उन्हीं के हाथों में थी किन्तु भौतिकवादी युग में नई तथा पुरानी पीढ़ी के बीच फासले बढ़ गए और व्यक्तिगत स्वार्थ हावी हो गए जिससे संयुक्त परिवार का विघटन हुआ तथा एकाकी परिवार का जन्म हुआ। अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में वृद्ध व्यक्ति अनेक शारीरिक तथा मानसिक कष्टों को झेलता हुआ स्वयं को अनुपयोगी, एकाकी तथा पराश्रित सा अनुभूत करने लगा–

"पितुः मरणात् परं पुत्रेषु स्थावरास्थावरसम्पत्तीनां समवण्टनं जातम्। ततः यस्याः वण्टनमधारीकृत्य तेषु मतभेदः परिदृश्यते, सा भवति मातृका। अथ च दिवङ्गते पितरि इदानीं मातृका कस्य सविधे स्थास्यति, तदर्थम् अयं विचारः। परिशेषे एषः निर्णयः जातः यत्– ग्रामक्लव्गृहाय भागवतमातृका गमिष्यति।"[66]

धन का महत्त्व बढ़ जाने से आज के युवा अपनी आधुनिक जीवन–शैली में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि वे अपने परिवार के वरिष्ठ नागरिकों की उपेक्षा करते हैं अथवा उनके प्रति उदासीन हो जाते हैं। आज की नई पीढ़ी अनुशासन में रहना नहीं चाहती बल्कि स्वच्छंदता चाहती है। अपने बुजुर्गों की सेवा केवल आर्थिक लाभ के लिए की जाती है। पश्चिमी सभ्यता ने ही भारत को वृद्धाश्रम जैसी अवधारणा दी है, जिसने भारतीय समाज के वर्तमान को ही कलंकित नहीं किया है अपितु भविष्य को भी खतरे में डाल दिया है।

अनुशासन संस्कृति का मेरुदण्ड है। समाज तथा राष्ट्र की नींव है ऐसा विकास का पथ है जिसके बिना सृष्टि का संचालन संभव नहीं हो सकता। संसार में सर्वत्र अनुशासन देखने को मिलता है। प्रकृति के सभी तत्त्वों में यथा सूर्य, चंद्र, पशु–पक्षी आदि संपूर्ण दृश्यमान जगत अनुशासन का पालन करता है। वैश्वीकरण के इस दौर में वर्तमान युवा पीढ़ी में उच्छृङ्खलता एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर कर हमारे समक्ष आई है, जिसमें विवाहेतर संबंध एक सामान्य समस्या है। इस समस्या ने सामाजिक व्यवस्था की नींव को हिलाकर रख दिया है।

कार्यालय में एक साथ कार्य करने वाले रतिकान्त तथा शशिकला दोनों ने पूर्वविवाहित होकर भी मर्यादाओं का उल्लंघन किया।

"येन उपार्जनरहितस्य तस्य पत्युः यथा त्यागमकरोत् शशिकला, तथा रतिकान्तोऽपि रुग्णां पत्नीं पुत्रद्वयं च त्यक्त्वा शशिकलां परिणीतवान् मण्डलविवाहपंजीकरणकार्यालये। अधुना न कश्चन आक्षिप्तुं शक्तोति नवदम्पतीम्। नापि परिवारस्य भारः अस्ति। मुक्ताकाशस्य विहङ्गमत्वेन स्वाधीनजीवनयापने कालः नैव पर्याप्तः भवति।"[67]

भारतीय संस्कृति में विवाह परं पवित्र संस्कार जन्म–जन्मांतर का संबंध समझा जाता है। मूल्यों, संस्कारों, परंपराओं, आदर्शों तथा रीति–रिवाज़ों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण है। आश्रम व्यवस्था में भी गृहस्थ आश्रम को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है किन्तु पाश्चात्यीकरण की आंधी ने युवाओं को भ्रमित कर दिया है। विवाहेतर संबंध तथा लिव–इन जैसी बुराईयों ने विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जन्म दिया है।

वर्तमान में भौतिकता की अंधी दौड़ में चिकित्सा जो परं सात्त्विक सेवाकार्य माना जाता था, वह एक व्यवसाय बनकर सिमट गया है। चिकित्सक का कार्य रोगी को शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करना है, किन्तु आज रुग्णजन के प्रति दया, सहानुभूति तथा करुणा के भाव चिकित्सक में शून्य हो गए हैं जिससे मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

अपने क्रीडाप्रेम के चलते एक चिकित्सक अपने कर्त्तव्य की अनदेखी करता। पुनः–पुनः सहायतार्थ पुकारने पर भी वृद्धजन के आर्त्तस्वर को वह नहीं सुनता है। अपने क्रिकेटक्रीडा के रसग्रहण में निमग्न रहता है।

"इदानीं चेतनाहीनः जायते नप्ता। आहुतोऽपि नैव शृणोति। वृद्धः दुःखेन विलपति। तस्य सम्मुखे सर्वम् अन्धकारः दृश्यते। सः चिकित्सकस्य कपाटम् आघातयति। परिशेष क्रीडादर्शने विघ्नहेतोः रुष्टः चिकित्सकः आयाति। नप्तुः शरीरे करं संचाल्य उद्घोषयति–एषः मृतः जातः।"[68]

समाज में चिकित्सक को भगवान् का दर्ज़ा प्राप्त है तथा उसके कार्यों को ईश्वरीय कार्य समझा जाता है किन्तु उक्त उद्धरण में चिकित्सक की कर्त्तव्यहीनता ने रोगी के प्राणों के ही हरण कर लिए, जो अनुशासनहीनता का प्रतीक है। देश की स्वास्थ्य सेवाओं का तथा व्यवसायी चिकित्सकों का हाल बयां करती यह कथा स्पष्ट करती है कि संवेदनाएँ मृतप्राय हो चुकी हैं।

भारतीय संस्कृति की आधारशिला 'सादाजीवन उच्च विचार' है। परन्तु पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति ने हमारे समाज को उच्छृङ्खल बना दिया है। पश्चिम के प्रभाव से जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है। फिर चाहे वह अंग्रेजी शिक्षा की बात हो, सामाजिक संरचना हो, विवाह पद्धति हो, रीति–रिवाज़ हो अथवा कला, भाषा, साहित्य या धर्म। **'पुनर्नवीकरणम्'** नामक व्यंग्य कथा में प्रतीकात्मक नायक–नायिका बुभुक्षा तथा दुर्भिक्ष के माध्यम से वर्तमान समय के पति–पत्नी की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया गया है।

"तदानीं गुरुगम्भीरकण्ठेन वदति बुभुक्षा–ईदानीं मम शय्यात्यागसमयः नैव आगतः। अस्मत् पाठ्यक्रमे एष निर्देशः अस्ति, अष्टवादने शय्यां विहाय चायपानं कर्त्तुम्। अतः भवान् शीघ्रं गत्वा चायं करोतु। यदि विलम्बः भविष्यति, तर्हि मम मस्तकपीडा स्यात्।

तदानीं वृष्टिसमयददुर्या इव गर्ज्जति बुभुक्षा–किम्! किं कथयति। अहं रन्धनं करिष्यामि? एषः किं सम्विधानप्रणीतनियमः? सन्तानोत्पादने मम यथा भूमिका, तथैव भवतोऽपि। अतः किमर्थं भवान् रन्धनादिकं नैव करिष्यति। इतः आरभ्य भवान् करोतु।"[69]

भारतीय संस्कृति नारी को जननी, भगिनी, पत्नी तथा पुत्री के आदर्श रूप में स्वीकार करती है, जो ममता, करुणा, क्षमा, दया तथा त्याग आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों से आवृत्त रहती है। प्रकृति ने नर तथा नारी की संरचना भिन्न–भिन्न प्रकार से की है अतः उनके कार्य भी अलग–अलग हैं। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने सामाजिक मूल्यों को ताक पर रख दिया है।

आधुनिक परिवेश में दहेज सामाजिक प्रतिष्ठा का स्वरूप बन चुका है। जिसके पास जितना धन होता है, समाज में उसे उतना ही सम्मान प्राप्त होता है। समृद्ध परिवार के द्वारा अपनी पुत्री के विवाह में किया गया व्यय निवेशस्वरूप होता है। अत्यधिक धन तथा बहुमूल्य उपहारों के साथ अपनी पुत्री को विदाई के समय दिया गया यह संदेश उच्छृंखलता का ही प्रतीक दिखाई देता है।

"पिता सगर्वमुपदिशति कन्यां
पतिगृहे निर्भीका भवितुं
यथाशीघ्रं श्वशुरादिकं त्यक्त्वा
पत्युः कर्मक्षेत्रे निवसितुं
सेविकया रन्धनं सन्तानलालनं च
सम्पादयितुम्।"[70]

गर्व के साथ पिता अपनी पुत्री को उपदेश देते हुए कहते हैं कि पतिगृह में निर्भीक रहो तथा शीघ्रातिशीघ्र अपने सास–ससुर को छोड़कर पतिगृह में निवास करो। क्योंकि तुम विशिष्ट जन की कन्या हो तथा उच्चशिक्षा संपन्न हो अतः गृहकार्य संपादित करने हेतु तथा संतान के लालन–पालन हेतु सेविका की नियुक्ति कर सदैव प्रसन्नता से निवास करो। एक पिता का यह उपदेश सामाजिक संबंधों पर आघात है, जिससे एकाकी परिवार, विवाहविच्छेद तथा मूल्यहीनता जैसी समस्याएँ जन्म लेंगी।

(छ) विविधता में एकता

विविधता में एकता अर्थात् अनेकता में एकता। भारत दुनिया का विशाल तथा घनी आबादी वाला देश है जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, संप्रदाय, प्रान्त, भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज़, वेशभूषा,

जीवनशैली तथा खान–पान वाले लोग शान्ति तथा सद्भाव से निवास करते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक, वैचारिक, राजनीतिक, धार्मिक, भाषिक, शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बाद भी एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। यह अवधारणा संपूर्ण विश्व को संदेश देती है कि प्रेमभाव के साथ मिल–जुलकर रहना ही जीवन का वास्तविक सार है। साथ ही इससे राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलता है और देश उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है।

भारत विविधता में एकता वाला देश और यह विविधता हमारे जीवन को कई प्रकार से समृद्ध करती है। व्यक्ति का जीवन कई रंगों से रंगीन हो जाता है तथा उसका व्यक्तित्व बहु आयामी हो जाता है। अलग–अलग संस्कृतियों को देखने, समझने तथा जानने का सुअवसर प्राप्त होता है। बुद्धि विकसित होती है, समझ का दायरा बढ़ जाता है तथा दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है।

'विविधता में एकता' महज़ कुछ शब्द नहीं है, बल्कि देवभूमि भारत देश के विशाल कैनवास पर इसकी झलक देखने को मिलती है। विविधताएँ तो बाह्य रूप से विद्यमान हैं जबकि भारतीयों के अन्तस में एकता की अजस्र धारा प्रवाहित होती है और यही एकता भारतीय संस्कृति का स्तम्भ है।

भारतीय संस्कृति यहाँ के निवासियों को आपस में बाँध कर रखती है। भारत एक अनोखा देश है, जहाँ अलग–अलग पृष्ठभूमियों के लोग परस्पर सहयोग तथा मैत्री भाव से निवास करते हैं। डॉ. नायक का साहित्य भी भारतीय संस्कृति का सम्मिश्रण है, जिसमें संस्कृति के विविध पक्ष, यथा–समानता, निरंतरता तथा विविधता में एकता का सुंदर चित्रांकन किया गया है। कवि कहते हैं कि विविधता केवल मनुष्यों में ही नहीं प्रकृति में भी पाई जाती है।

"एकस्मिन् वृक्षे उपविशति पक्षिद्वयम्
अनादिकालतः अनन्तयुगाय
एकः पक्षी सुवर्णनिर्मितनीडे निवसति
रत्नविजडि पात्रे खाद्यं खादति
अहरहः प्रजाकुलस्य जयनादेन
निद्राभङ्गः संजायते तस्य।
अपरः पक्षी तथैव
शून्याकाशतले दिनानि यापयति
नैव खादति, नापि स्पृहयति खाद्याय

तथा निराहारी नित्यनिर्लिप्तः पक्षी

केवलं पश्यति।"[71]

एक ही वृक्ष पर दो पक्षी सुशोभित हो रहे हैं। जिनमें एक पक्षी सुवर्ण निर्मित नीड में तथा रत्नजड़ित पात्र में भोजन करता है। रात–दिन प्रजा के जयनाद से ही उसकी निद्राभङ्ग होती है। जय तथा पराजय में वह दुःख अथवा आनन्द का अनुभव करता है। संसार के सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करके भी असंतुष्ट रहता है, जबकि दूसरा पक्षी शून्याकाश तल पर अपने दिन व्यतीत करता है। निराहारी, निर्लिप्त, निस्पृह निराकाङ्क्षी, निरालम्ब तथा अलंकार निर×जन केवल देखता रहता है। उसके लिए सभी काल, ऋतुएँ तथा मुहूर्त्त समान है। न ही वह सुख में उल्लसित होता है अथवा न ही वह दुःख में क्रंदन करता है।

राजकुमारः वा ब्राह्मणतनयः

अनयोः भेदः नास्ति

आभिजातस्य वा दारिद्र्यस्य

प्रश्नः नोदेति तत्र

अध्ययने पुष्पावचने अथ

हविःसमर्पणे वा गुरुसेवने।[72]

भारत में अनादिकाल से ही ज्ञान की उन्नत तथा अजस्र धारा प्रवाहित होती रही है और गुरुकुल परंपरा ने इस क्षेत्र में अपनी महनीय भूमिका का निर्वाह किया है। यही कारण है कि भारत को विश्वगुरु की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। सामाजिक मानकों के बावजूद गुरुकुल में हर छात्र के साथ एक समान व्यवहार किया जाता था। चाहे वह राजकुमार हो अथवा ब्राह्मणपुत्र। इन दोनों में कोई भेद नहीं किया जाता था। यहाँ पर सभी वर्णों के छात्र शिक्षा ग्रहण किया करते थे। अभिजात वर्ग हो अथवा दरिद्र सभी में समानता का भाव रखा जाता था। हवि समर्पण में, अध्ययन तथा गुरुसेवा जैसे कार्यों में किसी भी प्रकार से छात्रों में भेद नहीं किया जाता। गुरुकुल का उद्देश्य ज्ञान विकसित करना तथा शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित करना होता था।

विभिन्न धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक विषमताओं का गुरुकुल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। गुरुकुल में छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। जीवन के प्रत्येक पद की शिक्षा प्रदान कर आचार्य छात्रों का चरित्र निर्माण करते थे जिससे राष्ट्रीय भावना को बल मिलता था।

"कस्मिश्चिद् राज्ये एकदा महावात्या प्रवाहिता। समग्रं राज्यं जलप्लावितम् अभवत्। व्याकुलितं च जनजीवनम्। लक्ष्यसंख्यकाः जनाः मृताः। निहतोऽपि पशुसमवायः। ये वा जीविताः विना खाद्यं विना पानीयं तेषां दुर्दशा नैव वर्णनीया। क्षुत्पिपासाकुलिताः ते मृतवत् जीवन्त्येव। एषः संवादः यदा अन्येषु राज्येषु प्रचारितः, तेन उद्वेलिताः सन्तः तैः प्रतिवेशिराज्यवासिभिः विपुलं साहाय्यं प्रेरितम्। वहवः स्वेच्छासेवकाः अपि समागतः। वस्तुतः मानवप्रेमिणां तेषां परमः परिचयः परिदृष्टः।"[73]

प्राकृतिक आपदा की चपेट में आने से एक राज्य पूर्ण रूप से जलप्लावित हो गया, जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया। लाखों की संख्या में मनुष्य तथा पशु मारे गए। भोजन तथा पानी के अभाव में सभी प्राणियों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई थी। वे सभी मृतप्राय थे। ऐसी स्थिति में प्रतिवेशी राज्यों द्वारा तथा बहुत–सी स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा की गई सहायता विविधता में एकता की प्रतीक है। यह घटना स्पष्ट करती है कि हमारे देश के किसी भी स्थान पर यदि कोई संकट गहराता है तो ऐसी परिस्थितियों में हम एक–दूसरे का साथ नहीं छोड़ते हैं। सब कुछ विस्मृत कर हम एकजुट होकर किसी भी समस्या का समाधान करने में समर्थ हैं। भारतीय संस्कृति सभी प्राणियों से प्रेम करना सिखाती है।

संपूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की मिसाल दी जाती है। विदेशी ताक़तों ने भारतीय एकता को कमज़ोर करने की पुरज़ोर कोशिश की, किन्तु भारतीय एकता और अखंडता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अलग–अलग असमानताओं के बाद भी अखण्डता का अस्तित्त्व ही हमें दूसरों से अलग करता है।

धन के आधार पर भी किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता। निम्न पंक्तियों में एक आदर्श लोकतंत्र की छाप दिखाई देती है–

दारिद्रयं देशस्य शत्रुः। येन प्रगतिः वाध्यते। जनाः गणतन्त्रस्य स्वादम् आसादयितुं न समर्थाः भवन्ति। फलतः शासने नैव विश्वसन्ति जनाः। अतः यथाशीघ्रं देशात् दारिद्रयस्य विनाशः करणीयः इति वदति तद्दिने शासनमुख्यः। एतदर्थं एका उपसमितिः विनिर्मिता। तस्यां देशस्य प्रमुखाः नागरिकाः, समाजशास्त्रविदः पण्डिताः, युवप्रतिनिधिप्रभृतयः सदस्यरूपेण स्वीकृताः।[74]

भारतीय संविधान अपने नागरिकों का न्याय समानता तथा स्वतंत्रता का अधिकार देता है तथा आपस में बन्धुत्व से व्यवहार करने की प्रेरणा देता है। यही कारण है कि आर्थिक स्तर पर भी समानता लाने का प्रयास किया जाता है। देश से दरिद्रता को निष्कासित करने पर ही अर्थात् सभी को समानता के स्तर पर लाने पर ही देश तथा देशवासी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे और वास्तविक अर्थों में एक सच्चे गणतंत्र की स्थापना हो सकेगी।

मनुष्य आदिकाल से ही समूह बनाकर रहता है। यह समूह अथवा समुदाय उसे सहयोग, अपनापन तथा बाह्य तत्त्वों से रक्षा प्रदान करता है। साथ ही सुख–दुःख के समय प्राणी एकाकीपन का अनुभव नहीं करता। वर्तमान में परिवार तथा समाज जैसी संस्थाएँ अस्तित्त्व में आ चुकी हैं। हमारे आस–पास रहने वाले लोग विभिन्न जाति, धर्म, प्रान्त, भाषा तथा रीति–रिवाज़ वाले होते हैं, बावजूद इसके वे दुःख अथवा कष्ट के समय हमारे साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होते हैं। विविधता में एकता की सुन्दर भावना को कवि नायक ने कौए के मृत्युसंवाद के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

काकस्य मृत्युसंवादः
प्रचारितः अन्येषु काकेषु
विद्युद्वेगेन, विना दूरभाषेण
लक्ष्यसंख्यकाः परिचिताः
अपरिचिताः समागताः काकाः
मृतकस्य निकटं
समवेदनाज्ञापनाय
अथ शेषदर्शनाय।[75]

एक कौए की मृत्यु का संवाद अन्य कौओं में विद्युत के वेग से बिना किसी दूरभाष यंत्र के फैल गया। लाखों की संख्या में परिचित तथा अपरिचित कौए मृतक के निकट संवेदना ज्ञापित करने तथा अन्तिम दर्शन हेतु एकत्रित हुए। भारतीय संस्कृति की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि सभी प्राणी शोक के अवसर पर एकजुट हो जाते हैं तथा शोकसंतप्त परिवार के दुःख को दूर करने का प्रयास करते हैं तथा ऐसी परिस्थिति में अधिकाधिक सहयोग प्रदान करने का प्रयास करते हैं, तथा मानवीयता और अपनत्व का परिचय प्रदान करते हैं।

एकस्य मरणे दुःखितः भवति अन्यः
एकस्य दुःखे सहायकः भवति अन्यः।[76]

अर्थात् एक के मरने पर अन्य दुःखी होते हैं तथा एक के दुःख में अन्य सहायक होते हैं विविधता में एकता के परिचायक मेघ के विषय में डॉ. नायक का कथन है–

मेघः कदा नैव अपेक्ष्यते
प्रार्थिनः धैर्यसीमाम्
अथ तस्य प्रार्थनायाः गभीरतां परीक्षणाय।
कुत्र तस्य निन्दुकाः प्रशंसकाः वा

जलाकाङ्क्षिणः भवन्ति

इति विचारे नैव निमग्नः मेघः

नाऽपि जाति–गोत्रादिकं विचारयति कदाचित्

जलवितरणे

सन्तप्तहृदयानां क्लेशविनाशने।[77]

सन्तप्तहृदयजनों के क्लेश का नाश करने में तथा जलवितरण में मेघ कभी भी प्रार्थी की धैर्यसीमा तथा उसकी गंभीर प्रार्थना की अपेक्षा नहीं करते हैं। जल की याचना करने वाले निंदक हैं अथवा प्रशंसक इसका विचार किए बिना मेघ सामग्रिक भाव से वर्षा कर सभी को आनन्दित कर देते हैं, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी जाति–गोत्र जैसे क्षुद्र तत्त्वों का विचार किए बिना सभी को एकता के सूत्र में पिरोती है। भारत देश एक सुंदर वाटिका के समान है, जिसमें विभिन्न रंगों तथा सुगंध वाले पुष्प जड़े हुए हैं। इन सबके मिलने से ही यह सुंदर तथा सबल बनता है।

कहावत है कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लिए परिश्रम तथा खेलों की महती भूमिका है। खेलों से रक्त संचरण सुचारू रहता है तथा मानसिक तनाव दूर होता है। वर्तमान में विभिन्न स्तरों पर खेल–प्रतियोगिताओं का आयोजन होने लगा है। जो खेल–भावना तथा टीम–वर्क को प्रोत्साहन देते हैं साथ ही राष्ट्रीय एकता के भी पोषक है। यथा–

"प्रतियोगितायाः लक्ष्यं नहि पुरस्कारप्राप्तिः। अपितु वनेषु मैत्रीभावप्रतिष्ठा। अस्माकं वनं सर्वदा तत्रैव मतिं ददाति। अतः पुरस्काराणाम् अप्राप्तिविषये वयं नितरामेव दुःखरहिताः।"[78]

जीवन में विपरीत परिस्थितियों तथा चुनौतियों का डटकर सामना करने के लिए प्रतियोगिताएँ सभी को तैयार करती है। मानवीय मूल्य, भावनात्मक विकास, प्रतिस्पर्धा एवं नेतृत्व शक्ति का विकास करती है। प्रतियोगिता का लक्ष्य कदापि पुरस्कार प्राप्त करना नहीं है, अपितु मैत्री भाव की स्थापना करना है। अतः यह एक रचनात्मक प्रवृत्ति है।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी खेल–प्रतियोगिताएँ यथासमय आयोजित होती है, जिसमें विभिन्न जाति तथा प्रान्त के खिलाड़ी एक ही ध्वज के नीचे टीम भावना से खेलते हैं। उन सभी के हित तथा उद्देश्य एक समान होते हैं।

दर्पणस्य आत्मीयभावः एव

एकत्रीकरोति सर्वं

लोकचरित्रं सुखं दुःखं

सृष्टिं स्थितिं लयं, स्वस्य प्रतिबिम्बे

स्वागतीकरणे तस्य द्विधा नास्ति
भ्रुकुंचनमपि न करोति कदा
एतदर्थं मनोरमायाः प्रकृतेः यथा
तथैवापि गलितशवस्य स्वरूपं
प्रतिबिम्बितं भवति दर्पणे
इत्येव तस्य महान् गुणः।[79]

प्रकृति का मनोरम रूप हो अथवा गलित शव का स्वरूप दोनों को ही दर्पण समान भाव से प्रतिबिम्बित करता है। अपने प्रतिबिम्ब में वह सभी का स्वागत करता है, कदापि भ्रुकुंचन को प्रदर्शित नहीं करता। तथैव भारतीय संस्कृति भी सभी में समता का भाव रखती है। सभी को सहजता से अपनाती है। किसी भी कारण से द्विधा का भाव नहीं रखती।

तत्र न कस्यापि गुरुत्वं
न कस्यापि प्रभुत्वं तिष्ठति
कस्यापि मुखं अधिकतेजसा
उज्ज्वलितं न भवति कदा
अन्धकारे सर्वे समानाः
क्षितिपालपुत्रः वा दरिद्रब्राह्मणः
सर्वेषाम् एक एव परिचयः
अन्धकारः।[80]

जिस प्रकार अंधकार के लिए सभी समान होते हैं। चाहे राजपुत्र हो अथवा दरिद्र ब्राह्मण सभी का एक ही परिचय है अंधकार। वहाँ गुरूता अथवा प्रभुता का कोई स्थान नहीं है। अंधकार किसी के भी मुख को अधिक तेज के साथ आलोकित नहीं करता है, उसी प्रकार अनेक भौगोलिक विशेषताओं के होते हुए भी भारत की पृथक् सांस्कृतिक सत्ता रही है। जहाँ जाति, वर्ण, भाषा, प्रान्त, खान–पान, वेशभूषा के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। सभी को समान समझा जाता है।

सृष्टि में सभी प्राणियों की दृष्टि भिन्न–भिन्न होती है। जो शरीर से ऊर्ध्वगमन करता है वह वस्तुतः ऊपर स्थित नहीं है, अपितु जिसकी दृष्टि ऊर्द्धगामिनी है, जिसके कर्म कल्याणप्लावित हैं वही सबके ऊपर स्थित रहता है–

धरित्र्याः बहुदूरे उड्डीयमानस्य
श्येनस्य दृष्टिः किन्तु उपरि न गच्छति

दूरस्थस्य तस्य चक्षुः

सर्वथा अधः पतति

दुर्गन्धायिते मांसखण्ड़े।

आकाशस्य अधोभागे

वनप्रदेशे तिष्ठति तपस्वी

कटु–कषायफलादिकं गृह्णति कदाचित्

शरीरधारणाय।

अथ च तपस्विनः दृष्टिः

सर्वथा उपरि गच्छति

जगतः कल्याणे व्रती तपस्वी

विश्वयज्ञे आत्मानं जुहोति

जीवकल्याणमेव तस्य धर्मः

तस्य महामन्त्रः परमसमाधिः।[81]

धरती से बहुत दूर उड़ते हुए बाज़ की दृष्टि ऊपर नहीं जाती है, अपितु दुर्गन्ध वाले मांसखण्ड पर सर्वथा नीचे ही पड़ती है तथा आकाश के अधोभाग वनप्रदेश में स्थित तपस्वी केवल शरीर धारण करने के लिए ही कटु–कषाय फलादि को ग्रहण करता है। उसकी दृष्टि सदैव ऊपर जाती है। संसार के कल्याण में व्रती तपस्वी विश्वकल्याण में स्वयं की आहूति दे देता है। सभी प्राणियों का कल्याण ही उसका धर्म है।

भारत में अलग–अलग प्रान्त हैं, जिनमें रहने वाले लोग विभिन्न भाषाभाषी हैं। यहाँ सभी लोग एक–दूसरे के धर्म, भाषा, परंपरा तथा रीति–रिवाज़ों का सम्मान करते हैं जो अपने आप में अद्वितीय है इससे न केवल राष्ट्रीय एकता तथा देशप्रेम को बल मिलता है, बल्कि 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की स्थापना भी होती है।

"अस्माकम् आदिभाषा सर्वदा वसुधैवकुटुम्बकम् इति प्रचारयति। अतः तेनैव मन्त्रेण प्रचोदिताः वयं विश्वं कुटुम्बीकुर्मः। यदर्थं वैदेशिकसंस्कृतौ अनुदिनं प्रबलः आग्रहः अस्माकं परिलक्ष्यते।"[82]

भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, उदारता तथा ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति पाई जाती है। अतः अन्य संस्कृतियों की विशेषताओं को स्वाभाविक रूप से आत्मसात् कर यह आज भी अविरल गतिमान प्रतीत होती है।

भारत में आर्थिक दृष्टि से भी विविधता व्याप्त है। यहाँ धन का असमान वितरण देखा जाता है। समाज में मुख्य रूप से दो वर्ग दिखाई देते हैं। प्रथम वर्ग वह है, जो अथक परिश्रम करके भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तक नहीं कर पाता है तथा दूसरी ओर वह वर्ग है जो आर्थिक रूप से सुदृढ़ है, जिसके पास किसी भी प्रकार का कोई अभाव नहीं है।

सत्यपि ए, पजिटिभ् रक्ते,
दरिद्रधनिकयोः रक्तं नैव समानम्
उभयोर्मानो द्रव्यगुणो नैव एकः
सत्यपि समाने अङ्गे,
दरिद्रधनिकौ नैव समानौ
नैव उभयोर्जीवनं समानम्।
दरिद्रो भारतवासी, धनिकस्तु इण्डिआधिवासी
दरिद्रः पृथिवीवासी, धनिकस्तुबार्ल्डाधिवासी।[83]

उपर्युक्त व्यंग्य अवतरण में कविवर नायक जी कहते हैं कि दरिद्र तथा धनिक एक समान नहीं होते हैं। उनका जीवन भी समान नहीं होता। दरिद्र भारतवासी और धनिक इण्डियावासी होता है। दरिद्र पृथ्वीवासी तथा धनिक वर्ल्डवासी होता है अर्थात् एक ही स्थान पर निवास करने के पश्चात् भी आर्थिक असमानताओं के कारण दोनों जीवनशैली में भिन्नताएँ देखने को मिलती है।

बाह्य रूप से भारतीय समाज, संस्कृति एवं जनजीवन में विविधताओं के दर्शन होते हैं परन्तु भारत की संस्कृति, धर्म, भाषा, विचार एवं राष्ट्रीयता मूलरूप से एक ही है। यह भिन्नता हमें सिखाती है कि हम अपने राष्ट्र की बेहतरी के लिए एकजुट रहते हैं।

♦♦♦♦

सन्दर्भ

1. रुचिरा–भाग 2– त्रयोदशः पाठः, अमृतं संस्कृतम्, पृ.सं.–71
2. गर्त्तः–पुत्तलिका, पृ.सं.–6
3. स्वर्गादपिगरीयसी (लोकभाषा), पृ.सं.–8
4. उवाच कण्डुकल्याणः डङ्किप्रस्तावः, पृ.सं.–57
5. उवाच कण्डुकल्याणः डङ्किप्रस्तावः –58, रा.भाः–5
6. उवाच कण्डुकल्याणः डङ्किप्रस्तावः, पृ.सं.–58
7. शबरी–जयन्ती, पृ.सं.–21
8. उवाच कण्डुकल्यणः–वनभाषा, पृ.सं.–83
9. कथासप्ततिः–सेवा, पृ.सं–5
10. शबरी–निर्जनता, पृ.सं.–63
11. शबरी–यन्त्रणा, पृ.सं.–17
12. शबरी–कविः, पृ.सं.–24
13. शबरी–मधुमयम्, पृ.सं.–32
14. शबरी–मधुमयम्, पृ.सं.–33
15. कथासप्ततिः–ममता, पृ.सं–10
16. रंजिनी, कक्षा 7, पाठ 10, अमृत बिन्दवः, श्लोक सं.–7
17. कथासप्ततिः, सत्यव्रतः, पृ.सं.–26
18. नीतिशतकम्–श्लोक संख्या–71
19. शबरी–मेघः, पृ.सं.–83
20. शबरी, मेघः, पृ.सं.–85
21. गर्त्तः–गर्तः, पृ.सं.–31
22. शबरी–विश्वसुन्दरी, पृ.सं.–71
23. कथासप्ततिः–भागशेषः, पृ.सं.–10
24. रुचिरा–भाग 3, दशमः पाठः, श्लोक संख्या–2
25. कथासप्ततिः आदर्शचिकित्सकः, पृ.सं.–9
26. कथासप्ततिः–क्रीडाप्रेम, पृ.सं.–5
27. कथासप्ततिः–माधवसेवा, पृ.सं.–18
28. शबरी–विश्वसुन्दरी, पृ.सं.–70
29. कथासप्ततिः–पाण्डित्यम्, पृ.सं.–11

30. रुचिरा–भाग 1, पाठ–8, सूक्ति स्तबकः, श्लोक संख्या–2

31. कथासप्ततिः–शिक्षा, पृ.सं.–26

32. हितोपदेश–श्लोक संख्या 4

33. शबरी–विद्या, पृ.सं.–9–10

34. कथासप्ततिः–स्वप्नः, पृ.सं.–22

35. कथासप्ततिः–आदर्शशिक्षकः, पृ.सं.–51

36. कथासप्ततिः–आदर्श शिक्षकः, पृ.सं.–51

37. कथासप्ततिः–आदर्श शिक्षकः, पृ.सं.–51

38. कथासप्ततिः–आदर्श शिक्षकः, पृ.सं.–51

39. कथासप्ततिः–आदर्श शिक्षकः, पृ.सं.–51

40. कथासप्ततिः–पाण्डित्यम्, पृ.सं.–11

41. गर्त्तः – वृद्धः, पृ.सं.–47

42. गर्त्तः–गुरुकुलम्, पृ.सं.–57

43. शबरी–गुरुः, पृ.सं.–44

44. कथासप्ततिः–ऊँ शान्तिः, पृ.सं.–55

45. कथासप्ततिः–जयन्ती, पृ.सं.–8

46. कथासप्ततिः–बधूः, पृ.सं.–42

47. कथासप्ततिः–बधूः, पृ.सं.–42

48. उवाच कण्डुकल्याणः, उवाच कण्डुकल्याणः, पृ.सं.–31

49. उवाच कण्डुकल्याणः, वाए डाडिवाए, पृ.सं.–35

50. शबरी–शबरी, पृ.सं.–29–30

51. शबरी–शबरी, पृ.सं.–30–31

52. कथासप्ततिः–सदुपयोगः, पृ.सं.–30

53. कथासप्ततिः–सदुपयोगः, पृ.सं.–30

54. कथासप्ततिः–सदुपयोगः, पृ.सं.–30

55. कथासप्ततिः–संकल्प, पृ.सं.–22

56. कथासप्ततिः–जयन्ती, पृ.सं.–8

57. कथास्पतिः–मुक्तिदाता, पृ.सं.–14

58. उवाच कण्डुकल्याणः–वनभाषा, पृ.सं.–84

59. गर्त्तः–पुत्तलिका, पृ.सं.–6–7

60. कथासप्ततिः—मातृत्वम्, पृ.सं.—31
61. गर्त्तः—उपदेशः, पृ.सं.—16
62. गर्त्तः— लघुपदचतुष्टयम्, पृ.सं.—42
63. गर्त्तः—लघुपदचतुष्टयम्, पृ.सं.—42
64. गर्त्तः—लघुपदचतुष्टयम्, पृ.सं.—42
65. शबरी—निर्जनता, पृ.सं.—64
66. कथासप्ततिः—परित्यक्ता, पृ.सं.—25
67. कथासप्ततिः—परकीया, पृ.सं.—32
68. कथासप्ततिः—क्रीडाप्रेम, पृ.सं.—5
69. उवाच कण्डुकल्याणः—पुनर्नवीकरणम्, पृ.सं.—77
70. शबरी—नवोढा, पृ.सं.—8
71. शबरी—द्वा सुपर्णा, पृ.सं.—79
72. गर्त्तः—गुरुकुलम्, पृ.सं.—56
73. कथासप्ततिः – उपदेशः, पृ.सं.—35
74. कथासप्ततिः—दारिद्रयहरणाय—47
75. शबरी—गुरुः, पृ.सं.—41
76. शबरी—गुरुः—42
77. शबरी—मेघ, पृ.सं.—84
78. उवाच कण्डुकल्याणः—प्रतियोगिता, पृ.सं.—72
79. गर्त्तः—दर्पणः, पृ.सं.—54
80. गर्त्तः—अन्धकारः, पृ.सं.—68
81. शबरी—दृष्टिः, पृ.सं.—14—15
82. लोकभाषा सुश्रीः—आदिभाषाप्रसंग, पृ.सं.—13
83. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—91

चतुर्थ अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में राजनीतिक मानवीय मूल्यबोध

यतोहि सिंहासनं कस्यचित् शासकस्य नहि

उत्तराधिकारेण नहि परिप्राप्यते कमपि

तदस्ति अखिलप्रजाकुलस्य विभवम्

आत्मविश्वासस्य गोपनीयं पीठम्

निराश्रयस्य आश्रयस्थलम्।

चतुर्थ अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में राजनीतिक मानवीय मूल्यबोध

राजनीतिक मूल्यों का अभिप्राय यह है कि राजनीति के क्षेत्र में जो मूल्य नैतिकता, सामाजिकता तथा धर्म की कसौटी पर खरा उतरे तथा जिसमें स्वतंत्रता, समानता तथा शांति समाहित हो। हमारे देश में भगवान राम तथा कृष्ण जैसे श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ रहे हैं। उनकी शासन प्रणाली में सभी प्रकार के मूल्यों के दर्शन होते हैं। स्वयं उन्होंने भी समाज पर अपने आदर्शों की अमिट छाप छोड़ी। मूल्यों से ओत–प्रोत भारतीय संस्कृति में राजनीति सदैव से ही मानव धर्म की पोषक तथा आदर्श लोकतंत्र की प्रतिष्ठापक रही है। राजनीतिक मूल्यों तथा आदर्शों को अपनाकर ही कोई देश समृद्ध तथा विकसित हो सकता है।

परन्तु आज की राजनीति साम, दाम, दण्ड तथा भेद की रह गई है। येन केन प्रकारेण स्वार्थसिद्धि सर्वोपरि मानी गई है। वर्तमान समय में राजनीति के मूल्य अवसरवाद, भाई–भतीजावाद, परिवारवाद, गठबंधन, भ्रष्टाचार, पाखण्ड तथा वोट बैंक रह गए हैं। महात्मा गाँधी, पटेल, जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस जैसे राजनेताओं की छवि को आधुनिक राजनेताओं ने झूठे भाषण, आश्वासनों से तथा धन–बल के दुरुपयोग से धूमिल कर दिया है। राजनीति में मूल्यों का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है।

साहित्य समाज का वह दर्पण है, जिसमें वह यथार्थ रूप से प्रतिबिम्बित होता है। अतः साहित्य राजनीति से अछूता नहीं रह सकता। साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से एक ओर तो स्वस्थ एवं आदर्श लोकतंत्र की स्थापना का प्रयास करता है दूसरी ओर सत्ता के लोभी एवं षड्यंत्रकारी राजनेताओं का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

साहित्य को साधन बनाकर समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों से जनसाधारण को अवगत कराने में कुशल डॉ. नायक कहते हैं–

"असदुपायेन यो निर्वाचितः
तमनुगच्छति लोकः
स्तुतिं गायति देशः,

असावेव नीतिनिर्धारकः,

राष्ट्रियपुरुषः।"[1]

असद् उपायों से निर्वाचित जन का ही सभी अनुकरण करते हैं तथा देश स्तुति के गीत गाता है। वही नीति निर्धारक तथा राष्ट्रीय पुरुष कहलाता है।

दरिद्रता को आधार बनाकर राजनेता किस प्रकार अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं। इस संबंध में कवि का कथन है–

"दारिद्यं विना गणतन्त्रे,

असफलं मतदानम्,

निर्वीर्या जननायकाः,

विफलः सर्वकारः,

किंकर्त्तव्यविमूढं विपक्षदलम्,

उद्योगेषु वीतस्पृहाः कर्मचारिणः,

युगे युगे शासने शासने।

दारिद्र्यं हि

निर्वाचने वसन्तमलयः,

तप्तह्रदयस्य कृते चन्दनप्रलेपः,

अनेककोटिपतीनां सोपानारोहणहेतुः

शासनसदनस्य प्रथम प्रस्तरखण्डम्।"[2]

राजनीति एक प्रकार का व्यापार बन गया है। पद तथा प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए किसी भी सीमा तक जाया जा सकता है।

निर्वाचन के समय उम्मीदवार जनता को भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रलोभन देते हैं, धन का तथा शक्ति का दुरुपयोग करते हैं और सत्ता प्राप्त कर लेने के पश्चात् स्वयं का हित साधने में तत्पर दिखाई देते हैं। **'प्रगतिपथ'** नामक कथा में कथाकार इस प्रकार कहते हैं–

"ग्रामजनतायाः महान् असन्तोषः। सर्वेषां मनसि घृणाभावः। ऐषमः सर्वकारः यदि ग्रामपथस्य निर्माणं न कारयिष्यति, तर्हि आगामिनि निर्वाचने सुनिश्चितः एव तस्य पराजयः। अतः चिन्तितः मन्त्री विगतनयनः। येन केनापि उपायेन जनानाम् उपकारः करणीयः। अवश्यं करणीयः। नोचेत् कुफलं फलिष्यति।"[3]

राजनीति एक संपूर्ण व्यवस्था कहलाती है, जिसका मूल उद्देश्य लोकहित होता है। चुनाव जीतकर सत्ताधारी जितना हो सके अपनी ही स्वार्थसिद्धि में लीन रहता है और जब पुनः चुनाव का समय आता है तो मतदाताओं को विभिन्न उपायों से लुभाने का प्रयास किया जाता है। राजनेताओं का वास्तविक चित्रण करते हुए कवि कहते हैं–

"श्रम एव मूर्खाणां प्रवृत्तिः। अधमाः श्रमं कुर्वन्ति। ये खलु सुखकामिनः तेषां श्रमस्य आवश्यकता नास्ति। केवलम् आसने उपविश्य भाषणप्रदानेन तेषां सुखमायाति। समाजे पूजा लभ्यते। इतिहासे नाम तिष्ठति।"[4]

अशिक्षित तथा आपराधिक प्रवृत्तियों से संबंध रखने वाले लोग जब सत्ता में आते हैं तो विकास के नाम पर सरकारी पैसे हड़प लेते हैं। उनकी योजनाएँ तथा आश्वासन केवल भाषणों में तथा घोषणापत्रों में ही देखन को मिलती हैं उनकी कार्यरूप में परिणति नहीं होती।

'हासयोगाणकार्यक्रमः' में भी कथाकार ने स्पष्ट किया है–

"मुख्यमन्त्री तु क्षुब्धो विव्रतश्र। निर्वाचनं मासत्रयमतीतम्। परन्तु नैकापि प्रतिश्रुतिः परिपालिता। जनानां तर्हि कः प्रभावः पतिष्यति? एतत्तु दलस्य कृते महदपमानम्। उपनिर्वाचने कर्मिणः केन प्रकारेण जनसाधारणानां द्वारस्थाः भविष्यन्ति। अतः शीघ्रमेव प्रतीकारः करणीयः।"[5]

मुख्यमंत्री इस विचार से क्षुब्ध है कि निर्वाचन के समय जो घोषणाएँ की गई थी। चुनाव में विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे पूर्ण नहीं हो सकीं। इससे जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह तो हमारे दल का घोर अपमान है। आगामी निर्वाचन में किस प्रकार जनसाधारण का सामना कर सकेंगे। अतः शीघ्र ही इस समस्या का प्रतीकार किया जाना चाहिए।

इस अध्याय में हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत डॉ. प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में राजनीतिक मानवीय मूल्यबोध के विषय में अध्ययन करेंगे।

(क) प्रजातान्त्रिकता

प्रजातन्त्र अर्थात् ऐसा तंत्र जो जनता अथवा प्रजा के लिए शासन की व्यवस्था करता है। इस तंत्र में किसी भी दल या व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं होता अपितु जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य ही शासन संबंधी व्यवस्था को क्रियान्वित करते हैं। प्रजातन्त्र में वास्तविक शक्ति जनता के हाथ में निहित होती है। अब्राहम लिंकन के अनुसार– यह जनता का, जनता के लिए तथा जनता के द्वारा किया जाने वाला शासन है। राष्ट्रहित तथा विकास की दृष्टि से प्रजातन्त्र एक सशक्त माध्यम है किन्तु तुच्छ स्वार्थों ने शासन की इस विधा को भी दूषित कर दिया है।

तैलविमर्दक वन में बहुत से पशु निवास करते थे। वहाँ गणतन्त्र नियम प्रचलित था। विभिन्न दलों की व्यवस्था होने से निर्वाचन में विजयी दल को शासन का अधिकार प्राप्त था परन्तु एक निर्वाचन में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। बहुनायक दल के साथ अन्य बाईस दलों ने मिलकर मिलितमन्त्रिमण्डल का गठन किया। मिलितमन्त्रिमण्डल का नाम सुनकर वन्य पशुओं ने नासिका को सिकोड़ा अर्थात् प्रारंभ में तो यह प्रस्ताव उन्हें बुरा लगा किन्तु बाद में इसे स्वीकार कर लिया गया। इस मण्डल के नेतृत्व का दायित्व बहुनायक दल के ऊपर आ गया। बहुनायक दल केवल नाम से ही बहुनायक नहीं था अपितु कर्म से भी बहुनायक था। प्रधानमन्त्री के नाम को चयन करते समय बहुत राजनीति हुई। इस दल से कौन प्रधानमन्त्री के पद को अलङ्कृत करेगा यह बहुत बड़ा संकट उपस्थित हो गया। जिसका नाम कार्यकारिणी समिति में नहीं लिखा होगा वह नवीन दल की स्थापना करेगा यह भी घोषणा कर दी गई। वचनवीर नामक कोई नेता मिलितमन्त्रीमण्डल के प्रधानमन्त्री के रूप में आधिष्ठित हुआ।

वचनवीर को विश्राम नहीं था क्योंकि आगामी गुरुवार को नवीनमन्त्रिमण्डल द्वारा शपथ ली जानी थी। वह मित्र दलों के लिए मन्त्री पद आवण्टन के कार्य में प्रवृत्त हो गया। शासन की मिलित प्रक्रिया में सर्वहारि दल ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था अतः उस दल पर विशेष दृष्टि रखना आवश्यक था। इसलिए उस दल के हरणप्रिय को अर्थ विभाग प्रदान किया गया, तब किसी अपने दल के सदस्य ने वचनवीर से पूछा–

"महाभाग! अयं हरणप्रियः साधारण वित्तहरणे अतीव समर्थः। सः कथं विशालस्य गणतन्त्र परिचालितस्य वनस्य अर्थदायित्वं निभालयिष्यति? वनवीरेण उक्तम् अयं हरणप्रियः यदा साधारणधनं हरति स्म। किन्तु अधुना मन्त्रिपदे नियुक्तः सन् अन्यस्मात् वनात् धनं हृत्वा अस्माकं वनं सवलीकरिष्यति इति।"[6]

महोदय! यह हरणप्रिय हो साधारण वित्त हरण करने में समर्थ है, वह किस प्रकार से विशाल गणतन्त्र वाले वन के अर्थदायित्व को निभाएगा? यह सुनकर वचनवीर ने कहा–आप नहीं जानते। यह हरणप्रिय जो साधारण धन का हरण करता है, वह मन्त्रिपद पर नियुक्त होता हुआ अन्य वन से धन का हरण करके हमारे वन को सबल करेगा।

"नारीसुरक्षार्थं कामासक्तदलसदस्यः रमणप्रियः तद्विभागमन्त्रिपदे, सदारोगिदलस्य उर्द्धश्वासशर्म्मा क्रीडामन्त्रिपदे, अक्षरविवर्जित त्रिपाठी शिक्षामन्त्रित्वेन नियुक्तः।"[7]

इसी प्रकार से कामासक्त दल के सदस्य रमणप्रिय को नारी सुरक्षा हेतु गठित विभाग में मंत्रीत्व पद की प्राप्ति हुई सदा रोगीदल के सदस्य उर्द्धश्वासशर्मा क्रीडामन्त्री पद पर नियुक्त हुआ तथा अक्षर विवर्जित त्रिपाठी शिक्षामन्त्री पद पर नियुक्त हुआ। वस्तुतः मिलितमन्त्रिमण्डल में सभी

दलों से जो मन्त्री नियुक्त हुए वे पूर्ण सदस्य संख्या का 50 प्रतिशत था। अतः शपथ ग्रहण उत्सव में सर्वप्रथम वचनवीर ने प्रधानमन्त्री के रूप में शपथ ग्रहण की। कुछ असन्तुष्ट सदस्य जो मन्त्रीपद न मिलने से दुःखी थे, उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया। किन्तु इस समय भी वचनवीर किसी मिलन प्रक्रिया के विषय में ही विचार कर रहा था।

प्रस्तुत प्रतीकात्मक व्यङ्ग्य कथा में कथाकार ने वर्तमान गणतंत्र व्यवस्था पर कटाक्ष किया हैं आधुनिक समय में गठबंधन सरकार का स्वरूप अधिक प्रचलन में है क्योंकि किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो पाता है। जब प्रधानमन्त्री पद पर चयन किया जाता है तो उस समय कुटिल नीतियों का प्रयोग किया जाता है। मन्त्रीपद आवण्टन के समय भी मित्रदलों को लाभ दे दिया जाता है। अयोग्य व्यक्तियों को महत्त्वपूर्ण पद तथा विभाग दे दिए जाते हैं। यही कारण है कि ये मन्त्री कई घोटालों तथा अपराधों में दोषी पाए जाते हैं। जो नेता उच्च पद–प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाते वे उस दल का त्याग कर या तो अन्य दल स्वीकार कर लेते हैं या अपनी स्वतंत्र पार्टी बना लेते हैं। इस कथा में लेखक ने प्रजातन्त्र की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है।

रामेश्वर उच्च विद्यालय की परीक्षा में प्रथम स्थान पर आया। इस बात ने केवल विद्यालय का गौरव ही नहीं बढ़ाया अपितु समग्र नगर इस गौरव से लाभान्वित हुआ। सभी रामेश्वर की अतिशय प्रशंसा करने लगे। उसी विद्यालय का एक अन्य छात्र गोवर्धन था जो जैसे–तैसे तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

दोनों भाई निकट स्थित सरकारी महाविद्यालय में पढ़ने लगे। रामेश्वर के आचरण तथा ज्ञान से सभी मोहित थे परन्तु गोवर्धन का दुर्व्यवहार सभी को दुःख देता था। सभी उसकी निन्दा करते थे। अतः दुर्विनीत गोवर्धन को महाविद्यालय से बाहर निकाल दिया गया। महाविद्यालय में अध्ययन को समाप्त कर रामेश्वर प्रशासनिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया, जबकि अत्याचारी गोवर्धन अपने दोषों के कारण कारावास गया।

"निर्वाचनसमयः। हठात् एकसुप्रसिद्धराजनैतिकसंगठनेन गोवर्धनः प्रार्थित्वेन स्वीकृतः भवति। संगठनधनेन स्वस्य असाधुमित्रवलेन च गोवर्धनः विजयी जायते। अचिरेणाऽपि विधायकः गोवर्धनः राज्यशिक्षामन्त्रित्वेन शपथं नयति।

तद्दिने राज्यसचिवालये शिक्षासचिवः रामेश्वरः शिक्षामन्त्रिणः गोवर्धनस्य आदेशमपेक्ष्यते राज्ये नूतनशिक्षा–नीतिप्रणयनाय।"[8]

धन तथा अपने असाधु मित्रों के बल से गोवर्धन चुनाव में विजयी रहा और शीघ्र ही उसने राज्य के शिक्षामन्त्री के रूप में शपथ ली।

राज्य में नवीन शिक्षानीति के प्रणयन हेतु राज्य सचिवालय में शिक्षासचिव रामेश्वर शिक्षामन्त्री गोवर्धन के आदेश की अपेक्षा में प्रतीक्षारत है।

प्रस्तुत कथा में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रजातंत्र अथवा लोकतंत्र की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया चुनाव है, जिसके माध्यम से आमजनता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। मतदाता की सक्रिय भूमिका ही लोकतंत्र को मजबूती तथा स्थायित्व प्रदान करती है। मतदाताओं को समानता का अधिकार प्राप्त होता है अतः स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के माध्यम से ही वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना की जा सकती है। पात्र गोवर्धन जैसे कई उदाहरण हमारे समाज में व्याप्त हैं जिन्होंने संपूर्ण जीवन अनुचित मार्ग का आश्रय लिया तथा अपने दुराचरण से सभी को पीड़ित किया। धनबल के प्रयोग से ऐसे लोग राजनीति में उच्च पद प्राप्त कर लेते हैं और देश को पतन की ओर धकेल देते हैं।

गाँव की जनता में बहुत अधिक असंतोष था। सभी के मन में घृणा का भाव था। उनका मानना था कि यदि सरकार ग्रामपथ का निर्माण नहीं करवाएगी, तो आगामी निर्वाचन में उसकी पराजय सुनिश्चित है। अतः मन्त्री विगतनयन चिन्तित हो गए। वह जिस किसी भी उपकार से जनता पर उपकार करना चाहते थे। ताकि अगले चुनाव में असफलता प्राप्त न हो। अतः योजना के प्रस्तुतीकरण के लिए ग्रामसमिति प्रारंभ की गई। सभापति तथा संपादक आदि के साथ नारीनेता, हरिजनसभा तथा विकलांग आदि प्रतिनिधि उपस्थित हुए।

ग्रामपथ निर्माण की योजना में सर्वप्रथम विरोधी सदस्य के हटबुद्धि ने आपत्ति को प्रदर्शित किया। हतबुद्धि ने कहा कि यदि क्रीडाप्रान्त से मार्ग आएगा तो कुछ दरिद्र जनों का कृषिक्षेत्र नष्ट हो जाएगा अतः मार्ग का प्रारंभ वहाँ से न होकर वटवृक्ष से होवे, जिससे किसी की हानि नहीं होगी। तत्पश्चात् नारीनेता ने कहा इस प्रस्ताव से तो मेरा सर्वनाश हो जाएगा क्योंकि अध्ययन से परांगमुखी अपने पुत्र के लिए वह स्थान मत्स्य कृषि हेतु चयन किया गया है। अतः ग्रामपथ का प्रारंभ तो श्मशान मार्ग से होना चाहिए। उसी क्षण विरोधी दल ने कक्षत्याग कर दिया उनके अनुसार उस ग्रामपथ से ब्राह्मण जाति के लोग तो लाभान्वित होंगे किन्तु अन्य जन इस सुख लाभ से वञ्चित रहेंगे।

अतः शासक दल का समय आया। दल के नेता हरणप्रिय ने धीमे स्वर में कहा कि ग्रामपथ निर्माण में मेरी कोई रूचि नहीं है। यदि उसका निर्माण होगा तो हमारी बहुत हानि होगी।

"ग्रामपथः नास्ति इति हेतोः वृष्टिसमये ग्रामचतुःपार्श्वस्य जलमग्नत्वात् सर्वकारसहाय्यलाभाय एकं रूप्यकमपि न मिलिष्यति। सर्वे शिक्षिताः भविष्यन्ति, येन न कस्मिश्चित् विषये कः अस्मान्

प्रक्ष्यति। सभापतिः वदति मदनन्तरं मम जामाता राजनीतौ अंशं ग्रहिष्यति इति मे चिन्ताधारा। कमाधारीकृत्य सः नेता भविष्यति?"[9]

ग्रामपथ नहीं होने से वर्षा के समय ग्राम चारों ओर से जलमग्न हो जाता है और सरकार से मिलने वाली सहायता की राशि में से एक रूपया भी नहीं मिलेगा यदि ग्रामपथ का निर्माण हो जाएगा। सभी शिक्षित हो जायेंगे तो किसी भी विषय में कोई भी हमसे कुछ नहीं पूछेगा। इससे हमारा जीवनयापन कठिन हो जाएगा।

"हठात् सभापतेः शय्याशायिनः स्वरः तदानीं श्रुतः। मदनन्तरं मम जामाता राजनीतौ अंशं ग्रहिष्यति इति मे चिन्ताधारा। यदि अधुना ग्रामस्य निर्माणं स्यात् तर्हि कमाधारीकृत्य सः नेता भविष्यति? जनान् उत्तेजयिष्यिते?"[10]

उसी समय सभापति का स्वर सुनाई दिया कि मार्ग का निर्माण हो इस विषय में मेरी भी इच्छा नहीं है। मेरे बाद मेरा जामाता राजनीति में अपना स्थान ग्रहण करेगा। यदि ग्राम का निर्माण कार्य हो जाए तो किसे आधार बनाकर वह नेता बनेगा? लोगों को उत्तेजित करेगा?

अंत में यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि सरकार को पत्र लिखकर यह सूचित कर दिया जाए कि मार्ग का निर्माण करने से ग्रामवासियों की बहुत अधिक स्वार्थहानि हो जाएगी।

कथा में इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि प्रजातन्त्र में सभी के विकास तथा उन्नति के लिए बहुत–सी योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को उसका लाभ मिल सके। पिछड़े हुए लोग समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकें किन्तु कुछ स्वार्थी जननेता अपने निजी लाभ के लिए विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा अशिक्षा को बढ़ावा देते हैं ताकि वे वंश परंपरा से उन पर शासन करते रहें।

आज हम जिसे आज़ाद देश में साँस ले रहे हैं, वह आज़ादी हमें यूँ ही नहीं मिली। देश को गुलामी की ज़ंज़ीरों से मुक्त कराने के लिए अनगिनत देशभक्तों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। यह स्वतंत्रता एक कठिन राह से गुज़र कर हमें प्राप्त हुई है। देश की सेवा तथा मातृभूमि पर मर–मिटने की जो भावना उस समय थी, वर्तमान समय में उसका ह्रास हुआ है इन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति निम्नलिखित कथा में दृष्टिगत होती है–

राजनैतिक दल के सम्मुख हरिसिंह गरज रहा था। यह कैसा अन्याय है? पृथ्वी कैसे इन सबको सहन करेगी? क्या इसीलिए स्वाधीनता प्राप्त की है? अपने यौवन की अवहेलना करके क्या इसीलिए उसने स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया था? उसके गणतन्त्र देश में निर्वाचन में धन का आवण्टन होगा? वह भी उसके ग्राम में ? स्वतंत्रता सेनानी हरिसिंह ने विचार किया कि यह ग्राम

उसी का है। यह देश उसी का है। यहाँ किसी भी प्रकार का कुकर्म नहीं होना चाहिए। वह जब तक जीवित है तब तक इसी भावना का प्रचार–प्रसार करेगा। युवकों को बोध कराएगा क्योंकि उन्हीं के ऊपर ही रामराज्य प्रतिष्ठित है। सायंकाल हरिसिंह गाँव के युवक संघ सदन में आया। वहाँ अपनी भावना प्रकट करने के लिए सुंदर अवसर है यह मानकर पूर्व राजनैतिक दल के विषय में जब हरिसिंह ने कहना प्रारंभ किया तो उसी समय युवक संघ संपादक ने हरिसिंह को गिराकर डाँटते हुए कहा–

"गणतन्त्रे अस्माकं किम् अधिकारः नास्ति? इदानीं मतदानाय को वा धनं न स्वीकरोति। भवतः आदर्शवाक्येन महाक्षतिः विहिता अस्माकम्। भवान् जानति गणतन्त्रे निर्वाचनं धने प्रतिष्ठितं भवति। गान्धिः मृतः इत्युक्ते तस्य मार्गोऽपि गतः।"[11]

क्या गणतंत्र में हमारा अधिकार नहीं है? वर्तमान में मतदान के लिए कौन धन को स्वीकार नहीं करता है। आपके आदर्शवाक्य से हमारी अत्यधिक क्षति हुई है। गाँधी जी मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं अतः उनके द्वारा बताया गया मार्ग भी अब जा चुका है अर्थात् भुलाया जा चुका है। समय परिवर्तित हो चुका है। परिवर्तित समय के साथ स्वयं को नियोजित करने पर ही लाभ की प्राप्ति होगी।

प्रजातंत्र में मतदाता की जागरुकता का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। मतदाता के पास यह शक्ति होती है कि वह सरकार बना भी सकता है और उसे गिरा भी सकता है। प्रजातंत्र अथवा लोकतंत्र शासन का सर्वाधिक हितकारी स्वरूप है किन्तु चुनाव के समय विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ धन आवंटन द्वारा तथा उपहार व शराब बाँटकर मतदाताओं को आकर्षित करती हैं। चुनाव में जीत हासिल करने के लिए वे अनुचित साधन अपनाने से भी नहीं चूकते हैं।

इन्हीं भावों का स्फुटन **'परीक्षा'** नामक कथा में भी दिखाई देता है। जहाँ लेखक कहते हैं कि विकासोन्मुखी गणतन्त्र राष्ट्र भारत में निर्वाचन–विजय हेतु धन से कोई भी प्रयोजन नहीं है।

अस्माकं देशे सर्वे नेतारः दरिद्राणां परीक्षा प्रतिनिधयः भवन्ति इत्युक्ते तेऽपि दरिद्राः भवन्ति। लोकभाषा यदर्थं स्वकीयं दारिद्यमेव निर्वाचनकाले प्रदर्शयन्ति। तत्र सुश्रीः कुतः पुनः कोटि–कोटि परिमाणस्य धनस्य प्रसङ्गः।[12]

हमारे देश में सभी नेता दरिद्रों के प्रतिनिधि हैं अतः वे भी दरिद्र हैं। निर्वाचन काल में वे अपनी दरिद्रता ही प्रदर्शित करते हैं। करोड़ों रूपयों के व्यय का तो प्रश्न ही कहाँ?

प्रजातंत्र में सभी को समान अधिकार प्राप्त है अतः आरक्षण – व्यवस्था का तो प्रश्न ही कहाँ उपस्थित होता है।

"अनेन योग्याः न केवलं वंचिताः भविष्यन्ति, अधिकन्तु शिक्षानामके पवित्रक्षेत्रे अयोग्यानां प्रवेशः स्यात्। फलतः देशः दुर्दशां प्राप्नुयात्। अतः अस्य प्रतिरोधः सर्वैः करणीयः।"[13]

आरक्षण से योग्य जन न केवल नौकरी से वंचित हो जाएंगे अपितु अयोग्य उम्मीदवार चयनित होकर आयेंगे। फलतः देश दुर्दशा को प्राप्त हो जाएगा अतः सभी को मिलकर इसका प्रतिरोध करना चाहिए। सफल प्रजातंत्र के लिए यह आवश्यक भी है।

स्वतंत्रता वह स्थिति है, जिसमें सभी प्राणी अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। उन पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध या मनाही नहीं होती है। भारतीय संविधान में भी स्वतंत्रता के अधिकार को मूल अधिकारों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 19 से लेकर 22 तक स्वतंत्रता के अधिकार (Right to freedom) का उल्लेख किया गया है। स्वाधीनता के महत्त्व को एक शिला के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्ति किया गया है–

नभश्चुम्बिनि पर्वते
तस्याः स्थितिः
प्रखरे सूर्यातपे वृष्टिपाते वा
तस्याः परमसन्तोषः।
शिला।
विमुग्धीकरोति यस्याः
अन्तःप्रदेशं गगनचारिपक्षिणः
कण्ठस्वरः
आनन्दयति यस्याः मनः
वनवासिजीवानां गर्ज्जनं
सा एव शिला
स्वातन्त्र्यस्य प्रतिनिधिरूपा। [14]

गगनचुम्बी पर्वत पर स्थित शिला तीक्ष्ण सूर्यातप तथा वृष्टिपात से भी संतुष्ट रहती है। उसका अन्तःप्रदेश गगनचारी पक्षियों के मधुर स्वर से प्रसन्न रहता है और उसका मन वनवासियों की गर्जना से आनंदित रहता है शिला का सुख अथवा कल्याण मन्दिर या राजमहल में नहीं है। वह नहीं चाहती कि देवत्व के बहाने उसकी स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया जाए।

संतुष्टि तथा पूर्णता की भावना का अनुभव होना ही स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता की अवधारणा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा असहमति की स्वतंत्र निहित है। लोकतंत्र की नींव भी स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों पर ही रखी गई है–

मृत्युवत् पीडां प्रददाति पराधीनता
यस्यां जीवनस्य परिवर्त्तते रूपरेखः
यन्त्रणायाः विग्रहत्वेन।
प्रतिपदक्षेपम् अन्तराले
लुक्कायितः अन्यस्य आदेशः
अन्यस्य अयथार्थ हस्तक्षेपः
व्याकुलीकरोति मानवस्य मूल्यबोधं
समानतामहामन्त्रम् अथ अन्यत् सर्वम्।
स्वकीयं गृहमपि भवति कसंस्य वन्दिशाला
अरुणकिरणः यत्र स्वप्नस्य प्रसङ्गः
अहरहः संश्रूयते खड्गस्य झनत्कारः।
आरक्षिणां क्रूरः अट्टहासः
सहृदयानाम् आर्त्तनादः एव भवति सम्बलम्।[15]

पराधीनता मृत्यु के समान पीड़ा देती है। व्यक्ति को स्वयं अपना घर भी कंस की बन्दीशाला के समान प्रतीत होता है। जहाँ सूर्य की किरण मानो स्वप्न का कोई प्रसंग हो। दिन–रात तलवार की झंकार तथा आरक्षियों का अट्टहास सुनाई देता है। जीवन में अन्य जन का अयथार्थ हस्तक्षेप होने लगता है। मानवीय मूल्यों को भी पराधीनता व्याकुल कर देती है।

कोष व्यक्तिगत हितों के लिए नहीं होता वह प्रजा का ही धन है। अतः उसका प्रयोग प्रजा के कल्याणकारी कार्यों में होना चाहिए।

कोषः नहि शासकस्य
कोषः नहि स्मृतिरक्षणाय
प्रजाहितं तत्रैव निहितं
प्रजाधनं प्रजाकल्याणाय।[16]

प्रजातंत्र में प्रजा के धन का उपयोग जनता के हित के लिए ही होता है। कोई भी राजनैतिक कार्यकर्त्ता अपने निजी स्वार्थों के लिए राजकीय कोष से धनग्रहण नहीं कर सकता।

यतोहि सिंहासनं कस्यचित् शासकस्य नहि
उत्तराधिकारेण नहि परिप्राप्यते कमपि
तदस्ति अखिलप्रजाकुलस्य विभवम्

आत्मविश्वासस्य गोपनीयं पीठम्

निराश्रयस्य आश्रयस्थलम्।।[17]

प्रजातंत्र में सिंहासन अर्थात् उच्च पद उत्तराधिकारस्वरूप प्राप्त नहीं होता है, अपितु संपूर्ण प्रजा जिस पर विश्वास प्रदर्शित करता है वही प्रतिभागी चुनकर सत्ता में आता है।

(ख) राजतान्त्रिकता

"सखि रे!
राष्ट्रस्य सर्वोच्चोपाधिस्तमेवालङ्करोति
योऽसौ प्रतिदिनं
वनं खनिम् अथ सागरगर्भं
निः शेषीकरोति सहजेन।
राष्ट्रकोशः शून्यायते येन,
गोपनीयं तथ्यं शत्रवे प्रदाय,
सुइस्व्याङ्के प्रभूतं धनं
संस्थाप्यते येन,
स इदानीं महनीयो राष्ट्रस्य नायकः।
असदुपायेन यो निर्वाचितः
तमनुगच्छति लोकः,
स्तुतिं गायति देशः,
असावेव नीतिनिर्द्धारकः,
राष्ट्रियपुरुषः।"[18]

राष्ट्र की सर्वोच्च उपाधि से वही अलङ्कृत होता है, जो प्रतिदिन वन का खनन करता है। सहजता से सागर के गर्भ को रिक्त करता है। राष्ट्र के कोश को शून्य कर देता है। देश के गोपनीय तथ्य अपने लाभ के लिए शत्रु को प्रदान कर देता है। जिसने अपने पास अत्यधिक मात्रा में धन को एकत्रित कर लिया है वही राष्ट्र का महान् नायक है।

असद् उपायों से जो निर्वाचित हुआ है लोक उसी का अनुकरण करता है, देश उसी की स्तुति में गीत गाता है, वही नीतियों का निर्धारण करने वाला राष्ट्रियपुरुष है।

प्रस्तुत कविता में कवि प्रमोद कुमार नायक जी ने देश की शासन व्यवस्था पर व्यङ्ग्य किया है क्योंकि लम्बे संघर्ष तथा अनगिनत त्याग और बलिदान के बाद हमने स्वतंत्रता का स्वाद

चखा। एक लम्बी यात्रा के बाद संविधान का निर्माण हुआ और देश गणतन्त्र कहलाया। किन्तु वर्तमान में इस प्रजातान्त्रिक देश में राजतन्त्र जैसी परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। सत्ता प्राप्त करने के पश्चात् नेता विश्वबन्धुत्व तथा राष्ट्रसर्वोपरि की भावना का परित्याग करके स्वार्थपूर्ति में ही लिप्त हो जाता है। सार्वजनिक सम्पत्ति का प्रयोग लोककल्याणकारी कार्यों में नहीं करके वह अपने व्यक्तिगत तथा निजी हित में करने लगता है। धन तथा शक्ति के बल पर एवं अनुचित साधनों का प्रयोग कर निर्वाचित हुए नेता राष्ट्र के कोश को लूट लेते हैं तथा देश का सौदा करने से भी नहीं चूकते हैं।

प्रजातन्त्र की सफलता जनता की खुशहाली पर निर्भर करती है और नेता जनता का सेवक होता है परन्तु वर्तमान राजनीति में राजतंत्र के समान निरंकुशता व्याप्त है।

एक समय किसी राज्य में बहुत अधिक झंझावात आया और सम्पूर्ण राज्य जल से प्लावित हो गया। जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया। लाखों की संख्या में लोग मारे गए। पशुसंपदा भी नष्ट हो गई और जो प्राणी बच गए, बिना खाद्य पदार्थ और जल के वे मृतप्राय हो गए। यह संवाद जब अन्य राज्यों में फैल गया, तो वे सहायता देने के लिए आगे आए। बहुत से स्वयंसेवक भी सहायतार्थ उपस्थित हुए। सहायता के रूप में प्राप्त पदार्थों के आवण्टन हेतु राजा ने अपने राज्य के मुख्य उपदेष्टा को बुलाया।

राजा ने आदेश दिया कि शीघ्र ये पदार्थ प्रजाजन के समीप पहुँचायें। परन्तु राजा के आदेश से विचलित होते हुए मुख्य उपदेष्टा ने कहा–राजन्! विपत्ति में धैर्य धारण करना ही महान् लक्षण है। अतः इस महान् विपत्ति में अस्थिर न होवें अथवा जो कार्य किया जाना चाहिए वह सब उत्तम प्रकार से विचार करके करना चाहिए। महाराजा अन्य राज्यों से जो भी सहायता आयी है, वह सब उत्कृष्ट खाद्य है। जो कम्बल आए हैं, वह भी बहुमूल्य हैं। यदि इस समय प्रजाजन उत्तम पुष्टिकारक खाद्य पदार्थ खायेंगे अथवा बहुमूल्य कम्बलादि का प्रयोग करेंगे तो इस प्राकृतिक आपदा के प्रभाव के समाप्त होने पर पुनः वे साधारण खाद्य पदार्थ नहीं खायेंगे और न ही साधारण वस्त्रों का व्यवहार करेंगे। अतः मेरा विचार है कि वे उसी अवस्था में रहें।

"अस्माकं राज्यखाद्यभण्डारात् ये खाद्यपदार्थाः वृष्टिजलेन विनष्टाः सन्ति, तानेव तेभ्यः वण्टयतु। येन साहाय्यखाद्यपदार्थस्य अदर्शनात् ते परस्मिन् काले कोलाहलं न करिष्यन्ति। न वा तेषां राज्यानां प्रशंसा करिष्यन्ति।"[19]

हमारे राज्य के खाद्य भण्डार में जो खाद्य पदार्थ वर्षा के जल से नष्ट हो गए हैं, उन्हीं को जनता में आवण्टित करवा दें। सहायता के रूप में प्राप्त हुए पदार्थों को न देख पाने से वे बाद में किसी भी प्रकार का कोलाहल नहीं करेंगे और न ही अन्य राज्यों की प्रशंसा करेंगे। मुख्य

उपदेष्टा के उत्तम विचार के अनुसार कार्य सम्पादित करके राजा ने उसे 'परमजनसेवक' की उपाधि से अलङ्कृत किया।

राजतन्त्र में राजा शासन का सर्वेसर्वा होता है, इसी कारण वह निरंकुश हो जाता है और जनता के हितों को देखे बिना उन पर अत्याचार करता है। राजा के सलाहकार तथा मन्त्रिपरिषद् भी अनुचित तर्क देकर राजा को कुमार्गगामी बना देते हैं। ऐसे चाटुकार पुरस्कार तथा विभिन्न उपाधियों से अलङ्कृत होते हैं।

बहुत समय पूर्व प्रबल राज्य तथा प्रमत्त राज्य के मध्य युद्ध हुआ। दोनों ही अपरास्त थे। दोनों पक्षों की धन हानि तथा सैन्य क्षति को देखकर कुछ सज्जनों से शान्ति का प्रस्ताव रखा, जिसे दोनों ही पक्षों ने स्वीकार कर लिया। शान्ति पालन के समय दोनों राज्यों के राजाओं ने शान्ति स्मारक के रूप में एक कदम्बवृक्ष राज्यसीमा पर लगाया तथा उसकी रक्षा के लिए एक उद्यानपाल की भी नियुक्ति कर दी, जिससे प्रतिदिन वह वृक्ष बढ़ने लगा।

वैशाख माह के सांयकाल के समय बहुत तेज़ आंधी–तूफान आया। विशाल कदंब वृक्ष धराशायी हो गया और दुर्भाग्य से किसी कृषक ने उस समय उस कदम्ब वृक्ष के मूल में आश्रम लिया था। वृक्ष गिरने के समय वह वृक्ष के नीचे स्थित होता हुआ सहायता के लिए प्रार्थना करने लगा परन्तु अशान्त रात्रि में उसकी प्रार्थना को कौन सुने ? अतः कृषक प्रातः काल की अपेक्षा करने लगा।

प्रातः काल जब उद्यानपाल आया तो किसान ने स्वयं को निकालने की प्रार्थना की। परन्तु उद्यानपाल किंकर्त्तव्यविमूढ़ था क्योंकि यह साधारण वृक्ष नहीं था। इस वृक्ष के ऊपर दोनों राज्यों की शान्तिप्रक्रिया आधारित थी, इसलिए सामान्य उद्यानपाल उस वृक्ष को काटकर किसान का मुक्त कराने का कार्य नहीं कर सकता था। अतः एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय में पत्रलेखन का कार्य चलने लगा। एक कार्यालय दूसरे कार्यालय के निकट अनुमति की याचना करने लगा। सभी कृषक के दुःख से दुःखी थे परन्तु उपायरहित थे क्योंकि यह कोई साधारण वृक्ष नहीं था। इस प्रकार एक मास व्यतीत हो गया। जब यह घटना प्रबल राज्य के समीप गई तो यहाँ भी राजा निरूपाय ही रहा। अतः प्रमत्त राज्य के लिए पत्र लिखा गया।

उस पत्र को प्राप्त करके प्रमत्त राज्य में मन्त्रिस्तरीय आलोचना हुई। वृक्ष काटने में किसी की भी असहमति नहीं थी, फिर भी उसके लिए एक उच्चस्तरीय समिति प्रबल राज्य जाकर प्रकृत तथ्य का अवलोकन करने गई तथा वृक्षतल में मुमूर्षु कृषक को देखा। निर्दिष्ट समय पर राजा को तथ्य प्रदान किए गए राजा ने वृक्ष काटने का आदेश दे दिया।

महाभाग – वृक्षतले कृषकः अस्ति इति तु सत्यम्। किन्तु मम सन्देहः वर्त्तते कृषकः स्वेच्छया तत्र आश्रयं नीतवान् अथवा झ×जया वृक्षपतनाशङ्कया तस्य विरोधिजनाः इमं तत्र भाययन्तः शायितवन्तः।[20]

राज्य के गृहमंत्री कुष्माण्डबुद्धि द्वारा आपत्ति की गई– महोदय! वृक्षतल में कृषक है यह तो सत्य है किन्तु मुझे सन्देह है कि कृषक ने स्वेच्छा से वहाँ आश्रय लिया था अथवा आँधी में वृक्ष के गिरने की आशङ्का से विरोधी जनों ने इसे वहाँ सुला दिया था। अतः इसका पर्यवेक्षण किया जाना चाहिए। यह युक्ति सभी के द्वारा स्वीकृत की गई। पुनः कमिशन आया तथा यह तथ्य प्रमाणित किया गया कि कृषक निर्दोष है। प्रमत्त राज्य द्वारा वृक्षछेदन हेतु प्रबल राज्य को एक पत्र लिखा गया–

"तस्य कदम्बवृक्षस्य समीपे एकः अपरः कदम्बवृक्षः रोपितः भवतु। यदा नवीनः वृक्षः एतादृशस्य वृक्षस्य इव भविष्यति, तदानीं यदि प्रथमवृक्षस्य छेदनेन कृषकस्य जीवनरक्षा स्यात्, तर्हि तेषामापत्तिः नास्ति।

किन्तु परितापस्य विषयोऽयं यत्–एतस्य आदेशपत्रकस्य श्रवणात् प्रागेव कृषकःदिवङ्गतः।"[21]

उस कदम्ब वृक्ष के समीप एक अन्य कदम्ब वृक्ष लगाया जावे। यदि नवीन वृक्ष भी इस वृक्ष के समान होगा तो प्रथम वृक्ष को काटकर कृषक के जीवन की रक्षा होगी, इसमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु परिताप का विषय यह है कि इस आदेश पत्र को सुनने से पूर्व ही कृषक दिवङ्गत हो गया था।

राजतंत्र में राजा निरीह जनता पर अत्याचार करते हैं। चूँकि इस प्रथा में राजा वंशानुगत होता है अतः उसकी योग्यता पर भी प्रश्नचिह्न है। उचित समय पर निर्णय न हो पाने से प्रजाजन को कष्ट उठाना पड़ता है।

जन्मनियंत्रण देश के संसद भवन में देश के अर्थमन्त्री ने आगामी वर्ष के लिए आय–व्यय पत्रक अर्थात् बजट को प्रस्तुत किया। उसी समय विरोधी दल की ओर से बजट के ऊपर वित्तमन्त्री से विभिन्न प्रश्न किए गए और मन्त्री महोदय प्रश्न करने वाले सदस्यों के उत्तर देने के लिए बाध्य थे अतः वित्तमन्त्री ने यथारीति प्रश्नों के उत्तर दिए।

सर्वप्रथम लुण्ठकदल के सदस्य विशालकोशी ने प्रश्न किया कि इस आयव्यपत्रक में विदेशों से ऋण ग्रहण करने की योजना है। इससे पूर्व का जो ऋणभार है, उसके परिशोधन के लिए हमारे पास धन नहीं है। पुनः मान्यवर मन्त्री महोदय किसलिए ऋण लेने का प्रयत्न कर रहे हैं कृपया उत्तर दीजिए। मन्त्री महोदय ने उत्तर दिया कि आपने सत्य कहा–

"कथमिति चेत् विदेशस्य ऋणस्य स्वादः अतीव रूचिकरः। अस्य मधुपानं यः देशः करोति, स एव जानाति अस्य माहात्म्यम्। भवन्तः पश्यन्तु इतः पूर्वं ये ये वित्तमन्त्रिणः आसन् प्रायशः ते सर्वे विदेशात् ऋणं गृहितवन्तः। अतः प्राचीनमतमाश्रित्य अहमपि तस्य पथस्य पथिको भवामि। एतदपि परिष्करोमि यत्–अस्माकं देशः विदेशात् ऋणग्रहणं केवलं जानाति, तदर्थं कृतसङ्कल्पोऽस्ति। न तु परिशोधने।"[22]

विदेशी ऋण का स्वाद बहुत रूचिकर होता है। जो देश इसका मधुपान करता है वही इसके महत्त्व को जानता है। आप देखें इससे पूर्व भी जो–जो वित्तमन्त्री थे उन सभी ने विदेशों से ऋण लिया। अतः प्राचीन मत का आश्रय लेकर मैं भी उसी पथ का पथिक हो गया हूँ। हमारा देश केवल विदेश से ऋणग्रहण करना जानता है, उसके लिए कृतसङ्कल्प है न कि परिशोधन में। अतः आप इस विषय पर अन्यथा विचार न करें।

तत्पश्चात् आत्मघातक दल के सदस्य गतप्राण ने पूछा कि गेहूँ चावल आदि खाद्यान्न पदार्थों के मूल्य में अतिशय वृद्धि क्यों की गई है इससे दरिद्र जन तो मर ही जायेंगे। टी.वी. –फ्रिज आदि का मूल्य पूर्व की अपेक्षा बहुत कम कर दिया गया है। क्या यह उपयुक्त है?

"यदि तण्डुल–गोधूम–प्रभृतीनां मूल्यं नगण्यं स्यात् अस्मद् देशजनाः यदि निम्नमानखाद्यं खादिष्यन्ति तर्हि विदेशे वयमुपहासिताः भविष्यामः। टि.भि.–फ्रिज् मूल्यह्रासः क्रियते। एतेषां पदार्थानां मूल्यहानौ सर्वे जनाः अवश्यं क्रेतुं समर्थाः भविष्यन्ति। छात्राः, शिक्षकाः व्यवसायिनः श्रमजीविनोऽपि स्वस्य गृहे उपविश्य क्रिकेटखेलं द्रक्ष्यन्ति। य एव खेलः इदानीं देशस्य गौरवाय भवति।"[23]

वित्तमन्त्री ने उत्तर दिया कि इस विषय पर मैं बहुत अधिक चिन्तन कर चुका हूँ। हमारा देश आगे बढ़ रहा है। हम सर्वत्र यह घोषणा करेंगे कि खाद्य पदार्थों में हम भी उन्नत हैं। यदि गेहूँ तथा चावल आदि का मूल्य नगण्य रहा तो हम विदेश में उपहास के योग्य होंगे क्योंकि हम निम्न कोटि के खाद्य पदार्थों का उपयोग कर रहे हैं। अतः इस कारण इन द्रव्यों की मूल्यवृद्धि की गई है तथा टी.वी. – फ्रिज के मूल्य को कम किया गया है। ताकि सभी लोग इन पदार्थों को क्रय करने में समर्थ हों तथा अपने घर में बैठकर क्रिकेट का खेल देखें जो वर्तमान में देश का गौरव है।

तदनन्तर आत्मसंयमि दल के सदस्य विधवारंजन चट्टोपाध्याय ने प्रश्न किया कि बजट में स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए स्वल्प धनराशि की ही व्यवस्था की गई है। इसका क्या कारण है?

जनाः स्वशरीरशक्तिद्वारा तस्य सहनं कुर्वन्तु। ते खलु शक्तिशालिनः भवन्तु इति अस्माकं लक्ष्यम्।[24]

सर्वथा औषधि का सेवन करने से हमारे देश के लोगों के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता न्यून हो गई है। यह किसी भी विकासशील राष्ट्र के लिए शुभ लक्षण नहीं हैं अतः हमारी सरकार ने बहुत अधिक विचार करके स्वास्थ्य सुरक्षा के विषय में बहुत अधिक धन प्रदान नहीं किया है। यदि रोग हो तो मनुष्य अपने शरीर की शक्ति द्वारा उसे सहन करें। वे निश्चय ही शक्तिशाली हों यह हमारा लक्ष्य है। इस प्रकार वित्तमन्त्री के उत्तर अपने दल के सदस्यों द्वारा समर्थित किए गए।

उसी प्रकार शिक्षा के लिए भी बहुत कम धनराशि बजट में रखी गई है ऐसा किसी सदस्य द्वारा प्रश्न किया गया–

"शिक्षायाः अधिक प्रसारः अस्याः अकरसमस्यायाः मूलकारणम्। एतदर्थं शिक्षाप्रसारस्य संकोचनं करणीयम्। येन शिक्षितानाम् अभावात्, यदा एकस्य कृते एकमेव आवेदनपत्रम् आगमिष्यति, तदानीमेव एतस्याः समस्यायाः दूरीकरणं भविष्यति। देशः सुसमृद्धः भविष्यति इति अस्मद् विश्वासः।"[25]

देश में रोज़गार की समस्या बढ़ती जा रही है। कोई भी इसके निराकरण के विषय में विचार नहीं करता है कि इसका निराकरण कैसे होगा? एक पद के लिए हज़ारों की संख्या में आवेदन पत्र आते हैं। शिक्षा का अधिक प्रसार इस अकर समस्या का मूल कारण है। इसके लिए शिक्षा का प्रसार संकुचित किया जाना चाहिए। अतः शिक्षित जनों का अभाव होने से जब एक पद के लिए एक ही आवेदन पत्र आएगा, तो उसी समय यह समस्या दूर होगी तथा देश समृद्ध होगा यह हमारा विश्वास है।

संसद्सदस्यानां यः मासिक पारिश्रमिकः धनराशिः आसीत् तस्य चतुर्गुणात्मकं धनराशिम् इतः आरभ्य भवन्तः प्राप्स्यन्ति। एवमपि यदा सदस्यपदस्य लोपः भविष्यति, तदानीम् एषः नियमः प्रचलिष्यति।[26]

संसद सदस्यों को जो मासिक पारिश्रमिक रूप में धनराशि प्राप्त होती थी अब से उससे चार गुना अधिक धनराशि प्राप्त करेंगे। इस प्रकार जिस भी सदस्य के पद का लोप होगा, उस समय भी यह नियम चलेगा।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था वाले भारत देश में राजतान्त्रिकता का बोल–बाला है। हर तरफ स्वार्थ की ही राजनीति छायी हुई है। वर्तमान नेतागण अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे हैं। येन–केन प्रकारेण चुनाव जीतकर वे पाँच वर्षों में अधिकाधिक धन एकत्रित करना चाहते हैं। योजनाएँ तथा नीतियाँ लोकहित तथा देश की उन्नति के लिए नहीं बनती अपितु राजनेता अपनी प्रयोजनसिद्धि ही करते हैं।

अपनी प्रियतमा के विरह से व्यथित राजा राज्यकार्य की अवहेलना करके प्रियतमा की स्मृति संरक्षित करने के लिए मन्दिर निर्माण के कार्य में लग जाता है।

स्मृतिस्थानग्रहणाय
दूरीभूताः कुटीरवासिनः
तथैव तिष्ठन्ति यत्र बहुपुरुषेभ्यः,
क्षुधाजर्ज्जरितः शिशुः
यदा याति मरणसदनं
युवकोऽपि परिदृष्टः वृद्ध इव
दुर्भिक्षस्य तीव्रताऽनेन
आर्त्तरवः व्याकुलीकरोति यदा
विभीषिकारूपं नीत्वा समग्रं नगरम्
तदा मग्नः महाराजः
स्मृतिसौधनिर्माणकर्मणि
अहर्निशं सहचरगणैः।[27]

जब संपूर्ण दुर्भिक्ष की तीव्रता से आर्त्तस्वर में त्राहि–त्राहि कर रहा था। उस समय राजा दिन–रात अपने सहचरों के साथ स्मृतिसौध के निर्माण कार्य में लगा हुआ था। स्मृति स्थान के लिए कुटीरवासियों को आश्रयहीन कर दिया गया। शिशु क्षुधा से जर्जर हो मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो गए थे। युवक समयपूर्व वृद्ध के समान दिखाई दे रहे थे।

यत्र प्रजाः आकुलिताः
उष्मश्वासः यत्र दीर्घतरः
दरिद्रः म्रियते यत्र
अन्न चीत्कारेण भग्नच्छदतले
विनश्यति स्मृतिः नूनं भवतु वा यस्य।[28]

इस नश्वर जगत में देह तथा स्मृति असीम युग के लिए स्थित नहीं रहेंगी। राजकोष शासक के लिए न होकर प्रजाकल्याण के लिए होता है। प्रजा व्याकुल होकर भोजन के अभाव में मृत हो रही है ऐसी अवस्था में अधिकार के दुरुपयोग से हे राजन्! रमणीय प्रियतमा स्मृतिपुर नष्ट हो जाएगा।

(ग) पाखण्डिता

महात्मागान्धिनः जयन्त्युत्सवसभामण्डपे
सः एव उपदिशति अद्य
येन राष्ट्रधनम् अपहृतम्।
सत्यस्य अनुसरणार्थं
सः एव प्रभाषते
यः असदुपायेन निर्वाचनं जितवान्
जातिप्रथायाः यः परमसमर्थकः
अथ स्वार्थसाधनं यस्य जीवनस्य लक्ष्यम्।
कुष्ठरोगिणाम् आश्रममध्ये
सः एव फलवण्टनं करोति
यः गृहं गत्वा तीर्थोदकं पास्यति
अनाथशिशुम् आलिङ्ग्य सः अद्य क्रन्दति
यस्य गृहं परितः शतशः अनाथशिशवः
भिक्षां याचन्ते अथवा रोगेण प्रकम्पन्ते।
महात्मागान्धिनः जयन्त्युत्सवपालनं भवति
सभामण्डपे मुख्यातिथिः स्वदेशप्रसङ्गमुत्थापयति
यस्य खाद्यं प्रतिदिनं विदेशादागच्छति
यस्य वस्त्रं परिष्करोति विदेशस्य वस्त्रक्षालकः
विदेशसंस्कृतौ यस्य महीयसी श्रद्धा
सः अद्य उपदिशति अस्मान्।।[29]

महात्मा गाँधी के जयन्ती उत्सव के सभामण्डप में आज वही व्यक्ति उपदेश दे रहा है, जिसने राष्ट्र के धन का अपहरण किया है। सत्य के मार्ग का अनुसरण करने के लिए आज वही भाषण दे रहा है, जिसने अनुचित उपाय से चुनाव को जीता था। जाति प्रथा का जो परम समर्थक है वह वही व्यक्ति है, जिसके जीवन का लक्ष्य स्वार्थ की सिद्धि करना रहा है। कुष्ठरोगियों के आश्रम के मध्य वही जन फल का आवण्टन कर रहा है, जो अपने घर जाकर तीर्थ के जल को पीयेगा अर्थात् शुद्धिकर्म करेगा। अनाथ शिशु का आलिङ्गन करके आज वही रो रहा है, जिसके घर के चारों ओर सैंकड़ों अनाथ बच्चे भिक्षा माँग रहे हैं अथवा रोग से काँप रहे हैं।

महात्मा गाँधी का जयन्ती उत्सव कार्यक्रम चल रहा है। सभामण्डप में मुख्य अतिथि स्वदेश की महिमा का बखान करते हैं तथा सभी को स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का उपदेश देते हैं, जिनका स्वयं का खाद्य पदार्थ प्रतिदिन विदेश से आता है, जिनके वस्त्र विदेश के वस्त्रक्षालक परिष्कृत करते हैं और जिनकी स्वयं की अत्यधिक श्रद्धा विदेशी संस्कृति में है।

प्रस्तुत काव्य पाखण्ड का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। कवि का कथन है कि दोहरे चरित्र वाले लोग पाखण्डी होते हैं। वह एकान्त में कुछ और होते हैं किन्तु दूसरों के सम्मुख स्वयं को अलग ही रूप में प्रस्तुत करते हैं। आदर्शों की बात करना अलग बात है किन्तु स्वयं उन्हीं सिद्धान्तों पर चलकर अपने जीवन को ही आदर्श बना देने का साहस सभी में नहीं होता। पाखण्ड में व्यक्ति अपने पास श्रेष्ठ चारित्रिक गुणों, सिद्धान्तों, मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता के होने का मात्र दिखावा ही करता है, वास्तविकता में वे उसके पास होते नहीं है। इस कविता में कवि ने इस तथ्य को भी उजागर किया है कि जो व्यक्ति जितना अधिक सदाचरण का दिखावा करता है, वह उतना ही अधिक भ्रष्ट होता है। यह पाखण्ड वह अपने निजी हितों के लिए करता है।

सैंकड़ों की संख्या में विरल पक्षियों को पिंजरों में रखकर कोई कीरात विक्रय हेतु राजधानी आ रहा था। जब कीरात (शिकारी) ने मार्ग के समीप स्थित वृक्ष के मूल में पक्षियों को रखा, उसी समय किसी संन्यासी ने वहाँ आकर शिकारी से कहा–

वत्स! बहुत दिनों तक हिमालय पर तपस्या करके अब राजधानी के समीप आश्रम का निर्माणकर निवास करता हूँ। मैंने अपने जीवनावधि में शान्ति के स्वरूप तथा मुक्ति के मार्ग का अनुभव किया है। सभी घटों में नारायण का वास है। इस जन्म में किए गए पापराशि को प्राणी आगामी जन्म में अवश्य ही प्राप्त करेगा यह सत्य वचन है। पक्षियों को बंधन में रखने से व्यक्ति पाप का भागी बनता है। अत्यधिक पाप का भार जीवन को दूषित करता है। इसलिए इस अनुचित कर्म में किसलिए प्रवृत्त हो इस बहुमूल्य मानवजीवन में हरिभक्ति करनी चाहिए।

संन्यासी के वचनों से विचलित कीरात ने कहा– महाशय! यह तो हमारा पैतृक कर्म है। फिर भी किसी महात्मा ने इस विषय में इससे पहले मुझे उपदेश नहीं दिया था। सर्वप्रथम आपने ही इस कार्य के कुपरिणाम के विषय में मुझे सूचित किया है। आप ही मेरे गुरु हैं अतः आदेश दीजिए कि मुझे क्या करना है। संन्यासी ने कीरात को अपने आश्रम में जाने का आदेश दिया तथा वहाँ जाकर जनशून्य स्थान पर पक्षियों को मुक्त करने को कहा। कीरात ने वैसा ही किया। सभी पक्षी आनन्दपूर्वक आकाश में उड़ने लगे।

परन्तु क्षणभर में ही अधिकांश पक्षी पुनः जल में फँस गए। यह देखकर कीरात उच्च स्वर में चीत्कार करने लगा–नहीं नहीं यह नहीं करना चाहिए। पक्षियों को बाँधने से पाप मिलता है।

इस विषय में शिकारी ने जब संन्यासी से कुछ कहना प्रारंभ किया, तब उसने देखा कि संन्यासी वहाँ नहीं था।

आश्चर्यः भूत्वा कीरातः यदा आश्रमं प्रति गच्छति, तदानीम् द्वारपालेन असौ वारितः, तत् स्थानात् च निष्कासितः।

कथन बाहुल्यमेतत् तस्य सन्न्यासिनः परामर्शेन प्रान्तरस्य पार्श्वप्रदेशे सूक्ष्मजालं तिष्ठति। एवम् उपायेन सः विहगान्, पशूनाम् अङ्गप्रत्यङ्गादिकं विदेशं संप्रेष्य बहुधनोपार्जनं करोति।[30]

आश्चर्यचकित होकर शिकारी जब आश्रम की ओर गया, तो द्वारपाल द्वारा उसे रोक दिया गया तथा उस स्थान से उसे निकाल दिया गया।

उस संन्यासी के परामर्श से ही आश्रम के समीप स्थान पर सूक्ष्मजाल बिछाकर वह (संन्यासी) पक्षियों तथा पशूओं के अगं–प्रत्यंग आदि विदेश भेजकर अत्यधिक धन का अर्जन करता था।

समाज तथा राष्ट्र की प्रगति में साधु–सन्तों तथा धर्मगुरुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इनका प्रमुख कार्य समाज को दिशा प्रदान करना तथा उच्च आदर्शों की स्थापना करना रहा है। किन्तु धर्म की आड़ लेकर ये साधु–संन्यासी लोक कल्याण का मार्ग छोड़कर समस्त प्रकार के व्यसनों से ग्रस्त है। अत्यधिक धनार्जन तथा शक्ति की लालसा में ये न सिर्फ मनुष्य का अपितु जीव–जन्तुओं का भी शोषण कर उनका व्यापार करते हैं।

ग्रामसभा में आज अभियोगकारी स्वयं सिद्धमठाधीश आजन्म ब्रह्मचारी है। उसका यह कथन निश्चय ही व्यङ्ग्य तथा पाखण्ड से परिपूर्ण है।

अहमाजन्मब्रह्मचारी। मम पिता बालब्रह्मचारी। तस्य पिता शिशु ब्रह्मचारी।[31]

अपने पिता ग्राम के मुखिया से सभी कुछ सुनकर तथा उनकी (अपने पिता की) चिन्ता को भी स्पष्ट रूप से जानकर द्वादशवर्षीया कन्या विचारपति के आसन पर बैठकर आजन्मब्रह्मचारी से पूछने लगी– आप सभी ब्रह्मचारी हैं। तो फिर विवाह किस प्रकार किया गया? यदि विवाह करके पुत्रों को उत्पन्न किया गया, तो फिर कैसे ब्रह्मचारी हैं? इस प्रश्न के उत्तर में आजन्म ब्रह्मचारी द्वारा दिया गया उत्तर साधु–सन्तों के आडम्बर तथा पाखण्ड को प्रदर्शित करने वाला है।

वयं प्रकृतमेव ब्रह्मचारिणः। अस्माभिः न केनापि विवाहः विहितः। मम पिता यथा अविवाहितः, पितामहोऽपि तथैव। अहमपि अविवाहितः अस्मि। एषा खलु अस्मदीया परम्परा। सर्वं खलु ईश्वरस्य इच्छा। सः सर्वशक्तिमान् ईश्वरः स्वकीयां सृष्टिं परिवर्द्धयितुं अस्मानेव निमित्तीकरोति। वयं खलु

निमित्तमात्रम्। यदर्थं मदीयाः अष्टौ पुत्राः अधुना मठे एव ब्रह्मचारीरूपेण तिष्ठन्ति। तेषां चतस्रः मातरः तान् यत्नपूर्वकं परिपालयन्ति।[32]

आजन्मब्रह्मचारी कहता है सब कुछ ईश्वर की इच्छा है। वह सर्वशक्तिमान है ईश्वर से अपनी सृष्टि के परिवर्द्धन हेतु हमें निमित्त बनाया है। हम सब स्वभाव से ही ब्रह्मचारी हैं। हमारे द्वारा किसी के साथ भी विवाह नहीं किया गया है। मैं, मेरे पिता तथा पितामह सभी अविवाहित है। यही हमारी परंपरा है। मेरे आठ पुत्र मठ में ब्रह्मचारी के रूप में स्थित हैं। उनकी चार माताएँ प्रयत्नपूर्वक उनका पालन कर रही हैं। नारी का मुख देखना मुझ जैसे ब्रह्मचारियों के लिए पापकर्म है।

प्रस्तुत कथा में वर्तमान समय में प्रचलित संन्यासियों के आडम्बर को लेखक ने प्रकट किया है। भगवा वस्त्र धारण कर ये स्वार्थ में लिप्त रहते हैं। विषयों में अत्यधिक आसक्ति रखते हुए भी स्वयं को आदर्श रूप में उपस्थित करते हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में भी साधु–सन्तों का पाखण्ड दृष्टिगोचर होता है।

एते पंचविंशति पुत्रकन्यकाः वस्तुतस्तु पंचविंशतितत्त्वानि एव। तथैव यत् किमपि पश्यसि, तत् सर्वं ममैव स्मारकीभूतम्। लोकशिक्षार्थं यदेव खलु गृहितं मया। अतः वत्स! संशयात्मा विनश्यति। विना सन्देहं मम शरणं याहि इति खलु त्वदर्थम् उपदेशः मदीयः।[33]

निरन्नब्रह्मचारी ने एक माह के अन्दर अपहृत, परित्यक्ता, विधवा तथा गणनायिका चारों कन्याओं से विवाह कर पत्नीमण्डल का निर्माण किया तथा अपनी 25 संतानों को पच्चीस तत्त्वों की संज्ञा दी। अपने इस कार्य को लोकशिक्षा कहा। इस प्रकार लोकजागरण की आड़ लेकर सर्वथा स्वार्थ सिद्धि की गई।

कौतुकेन वरयति का रमणी
रूपवती विभवशालिनी,
गोपनेन प्रणयलिप्सया
परित्यज्य पतिदेवं,
स्वेच्छया परपुरुषान् यापयितुं रात्रीः।
का वा रुष्टा धनिकनन्दिनी
विहाय निजसंसारं स्वामिनं तनयं,
रमते नृत्यशालायां मदिरापायिनी
समुल्लङ्घ्य परम्परां नारीत्वं सकलम्।[34]

संपूर्ण शास्त्र, धर्मनीति तथा पण्डितजनों के उपदेश दरिद्र महिला के लिए ही होते हैं। दरिद्र अहिल्या तो सतीत्व विहीन है, उसका नामोच्चारण भी पापकर्म है। उसके विपरीत रूपवती वैभवशाली स्त्री गुप्त रूप से प्रेम में लिप्त रहती है। अपने पति का त्याग कर स्वेच्छा से परपुरुषों के साथ रात्रि व्यतीत करती है। अपने संसार, अपने पति तथा पुत्र को छोड़कर सम्पूर्ण नारी परंपरा का उल्लंघन करके नृत्यशाला में मदिरापान करती है। सतीत्व परंपरा का बखान करते समय विद्वानों तथा सज्जनों के द्वारा प्रमुख रूप से इन धनवती स्त्रियों का महान् पुण्यकारी नामोल्लेख किया जाता है। चरित्र निर्माण में यह अन्यों के समक्ष आदर्शरूपा होती है। इनकी चरणवन्दना से गौरव प्राप्त होता है।

कवि प्रस्तुत अंश में धनवानों के पाखण्ड का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि सर्वत्र धन की ही महिमा होती है। धन से युक्त मनुष्य के सभी अपराध अथवा दोष उसके गुण बन जाते हैं। ऐसा व्यक्ति समाज में आदर्श बन जाता है तथा दरिद्र व्यक्ति का जीवन तो मृत्युतुल्य होता है।

दारिद्र्ये एव निहितं गणतन्त्रम्।
तदेव आश्रित्य
परिवर्धन्ते नेतारः,
अभिवर्धन्ते दलानि
आविर्भवन्ति मतवादाः,
प्रतिवर्षं प्रतिमासं प्रतिदिनं
देवभूमौ भारतवर्षे।
स्वाधीनता सुन्दरी मन्दगामिनी
दारिद्र्यस्य सुकोमलकरदेशे
पदं संस्थाप्य,
इदानीं यौवने उपनीता।
तदेव तस्या विचरणक्षेत्रत्वेन विवेचितं,
तेनैव अनुदिनं विवर्धते सा।[35]

प्रस्तुत काव्यांश में कविवर श्री प्रमोद कुमार नायक ने राजनीति में व्याप्त पाखण्ड का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि गणतन्त्र का परम स्तम्भ दरिद्रता है। दरिद्रता में ही गणतन्त्र निहित है। नेतागण तथा राजनीतिक दल दरिद्रता का आश्रय लेकर ही फलते–फलते हैं अर्थात् वृद्धि को प्राप्त करते हैं। देवभूमि भारतवर्ष में विभिन्न मतवाद अभिव्यक्त होते हैं। स्वाधीनता सुन्दरी मन्द गति से दरिद्रता के अत्यन्त कोमल कर में अपना चरण रखकर इस समय युवावस्था को प्राप्त हो गई है। दरिद्रता ही गणतंत्र का विचरण क्षेत्र है, उसी से वह प्रतिदिन बढ़ता है।

अर्थात् आज चहुँ ओर वोट की ही राजनीति है। राजनीतिक पार्टियाँ तथा नेतागण दरिद्र निरीह प्रजा का लाभ उठाते हैं। दरिद्रों की उन्नति के लिए नेतागण विभिन्न योजनाएँ बनाकर अधिक से अधिक लाभ अर्जित करते हैं। दरिद्र जनता को आकर्षण देकर निर्वाचन के समय नेतागण चुनाव जीतते हैं और पद प्राप्त होने पर इन्हीं का शोषण करने लगते हैं।

"दरिद्राणामधिकार
इति कथां समुल्लिख्य
विख्यातो भवति लेखकः।
नवीनस्य प्रसङ्गस्य उद्घाटकत्वेन
भवति सः पुरस्कृतः।"[36]

कवि का कर्म लोकजागरण है। समाज का यथास्थिति चित्रण करना है। वह लेखक दरिद्राणामधिकार कथा को लिखकर प्रसिद्धि पाता है। नवीन प्रसङ्ग की खोज से पुरस्कृत होता है। सर्वत्र प्रशंसा पाता है। इतिहास को अपने नाम से सुशोभित करता है। कवि की दृष्टि में यह सभी कार्य पाखण्डपूर्ण हैं क्योंकि वास्तविक रूप में दरिद्र अधिकार से रहित है।

"मृत्युदण्डस्य स्वल्पसमयात् प्रागेव
अन्तिमेच्छाप्रसङ्गे सति प्रश्ने
उत्तरयति सविनयं वन्दी
एकवारं मन्त्रित्वेन शपथं नेष्यामि।"[37]

मृत्युदण्ड के कुछ समयपूर्व ही अपराधी से अन्तिम इच्छा के विषय में प्रश्न किया गया तो उसने (बन्दी ने) विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि एक बार मंत्रीत्व पद की शपथ लूँगा। यह उदाहरण राजनीति में फैले हुए भ्रष्टाचार तथा पाखण्ड की कथा कहने में पूर्णरूपेण सक्षम है। कविवर ने इस प्रसङ्ग के माध्यम से यह भी अभिव्यक्त किया है कि राजनीति में कई नेता आपराधिक पृष्ठभूमि वाले भी हैं। बन्दी इस तथ्य को भी भली–भाँति जानता है कि मन्त्रीत्व पद की प्राप्ति होने पर वह दण्ड से भी बच जाएगा।

खाद्य पदार्थ को खोजता हुआ कोई सियार जब अपनी असावधानता के कारण रजक के कुण्ड में गिर गया तो उसके शरीर का वर्ण नीलवर्ण में परिवर्तित हो गया। उसी समय उसके मन में नवीन उपाय आया–

"तत्रापि स्वकीयवाक्पटुतामाध्यमेन विश्वासं जनयित्वाधर्मसंस्थापनाय सृष्टिकर्त्ता प्रेषितः अस्ति इति प्रोक्तवान्। अधिकं किमु तदारभ्य नीलवर्णः शृगालः तस्य वनप्रदेशस्य धर्मगुरुपदेन

महाडम्बरेण अभिषिक्तः। शासने तस्मिन् स्थितेऽपि सिंहे धर्मभीरुणा तेन धर्मगुरोः वचनं सर्वथा ग्रहणीयं भवति। सोऽपि नीलवर्णः शृगालः धर्मनाम्ना यत् किमपि कर्त्तुम् अकर्त्तुं प्रभवति।"[38]

धर्म की स्थापना के लिए सृष्टिकर्त्ता के द्वारा उसे भेजा गया है। अपनी वाक्पटुता से ऐसा कहकर वह सियार वनप्रदेश का धर्मगुरु बन गया तथा धर्म के नाम पर किसी भी प्रकार के कार्य करने लग गया। सिंह भी उस धर्मगुरु के वचन पूर्णरूप से स्वीकार करने लगा।

किसी युवा शृगाल ने जब सियार के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया तो सभी ने मिलकर रहस्योद्घाटन हेतु एक गुप्त योजना का निर्माण किया, जिसे गुप्तचर के द्वारा नीलवर्ण सियार ने जान लिया।

पूर्ववत् नीलवर्णः शृगालः राजसभां गतवान्। परन्तु तस्य गाम्भीर्यं दृष्ट्वा कारणं यदा राजा अपृच्छत्, तदानीं सः उवाच – कारणं तु नैव शुभप्रदायकम्। गतरात्रौ ध्यानेन मया ज्ञातम् राज्याय अशुभयोगः आयाति। समग्रः वनप्रदेशः अवश्यं ध्वस्तः भविष्यति। राजपरिवारस्य विनाशः भविष्यति। यदि अद्य गुरुवासरे सर्वेषां शृगालानां वद्धः स्यात्, तर्हि एतादृशः अशुभयोगः शान्तः भविष्यति।[39]

सियारों के पापभार से राजपरिवार नष्ट हो जाएगा, इस प्रकार का भय दिखाकर नीलवर्ण शृगाल ने व्याघ्र तथा भल्लुकादि के द्वारा संपूर्ण शृगालकुल को नष्ट कर दिया और सियार इसका कारण जानने में भी समर्थ नहीं हो सके।

(घ) भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार अर्थात् भ्रष्ट, बिगड़ा हुआ या बुरा आचरण। स्वीकृत मूल्यों के विरुद्ध किया गया आचरण ही भ्रष्टाचार है। समाज तथा शासन की व्यवस्था सुचारू एवं व्यवस्थित रूप से संचालित की जा सके। इस हेतु सार्वजनिक हित के लिए आचरण के आदर्श प्रतिमानों की स्थापना की गई, जिनमें नैतिकता, कर्त्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी तथा सत्य के साथ अपने पद व शक्ति का प्रयोग भी सम्मिलित है। ये प्रतिमान ही सामाजिक सुदृढ़ व्यवस्था के आधारभूत तत्त्व हैं तथा इनका पालन करना नैतिक आचरण अथवा सदाचार कहा जाता है तथा इनके विरुद्ध किया गया व्यवहार भ्रष्टाचार की श्रेणी में परिगणित होता है।

न्याय व्यवस्था के स्वीकृत सिद्धान्तों अथवा नियमों के विरुद्ध जाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किया गया गलत आचरण ही भ्रष्ट आचरण है। अपने दैनिक जीवन में हम अपने पास कई ऐसे उदाहरण देखते हैं जैसे–रिश्वत, काला–बाज़ारी, चुनावों में धांधली, अनैतिकता, असहिष्णुता, कर्त्तव्य उपेक्षा, पद तथा सत्ता का दुरुपयोग आदि।

डॉ. प्रमोद कुमार नायक की रचनाओं में व्यंग्य के माध्यम से भ्रष्टाचार जो वर्तमान में महाव्याधि का रूप ले चुका है, के उदाहरण कई स्थानों पर देखने को मिलते हैं। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है और यह अपनी जड़ें दिनोंदिन फैलाता जा रहा है।

आज के युग में अपनी योग्यता के आधार पर पद पर नियुक्ति पा लेना सहज नहीं है क्योंकि योग्यता का मूल्य गौण हो गया है। पद की प्राप्ति में सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला है। विशेषकर साक्षात्कार के समय घूसखोरी का भी प्रचलन बढ़ा है। **'साक्षात्कारः'** कथा में विश्वविद्यालय में व्याकरण प्राध्यापक का साक्षात्कार लिया जा रहा है तथा उसमें 500 परिक्षार्थियों को अयोग्य घोषित किया जा चुका है क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ताओं के प्रश्न विषय से संबंधित नहीं है अपितु अनुचित, अनुपयोगी एवं तर्कहीन है। अंत में चंपकवर्णा नाम की परिक्षार्थिनी कक्ष में प्रवेश करती है।

परीक्षकेषु उपविष्टः युवतिरङ्कः पृष्टवान् – भवती कृपया कथयतु भारतवर्षस्य क्रिकेट्क्रीडा किमर्थम् अधुना समग्रे विश्वस्मिन् सुपरिचितः?

चम्पकवर्णा उक्तवती – मान्याः। भारतवर्षस्य क्रिकेटक्रीड़ा अधुना 'म्याच् फिक्सि' हेतोः पृथिव्यां ख्यातिं लभते। एतादृशस्य उत्तरस्य श्रवणेन सर्वे परीक्षकाः आनन्दिताः संजाताः। पुनः प्रश्नः पृष्टः – व्याकरणेन किं तावत् प्रयोजनम्? सा उक्तवती – पपसङ्गीतस्य तालसुरक्षा एव व्याकरणशास्त्रस्य मुख्यं प्रयोजनम्।

परीक्षकाः पृष्टवन्तः – कस्तावत् पाणिनिः?

चम्पकवर्णा उक्तवती – सः एकः स्वाधीनतासंग्रामी। भारतवर्षस्य मुक्तिसंग्रामे असौ योगदानं कृत्वा आङ्ग्लशासकेन मारितः। अधुना तस्य पत्नी स्वाधीनभारते राजनीतिं करोति।

तत्क्षणादेव प्राध्यापकपदव्यां स योग्या अस्ति इति उद्घोषः विहितः। कुलपतिमहोदयः मन्दहास्येन उक्तवान्–चम्पकवर्णे। स्वस्याः असामान्यव्याकरणज्ञानेन भवती एव अत्र नियुक्तिं लभते। अद्य सायंकाले समीपस्थं पंचतारकाभोजनालयम् आगत्य मम समीपात् स्वनियुक्तिपत्रं कृपया ग्रहीष्यति।[40]

प्रस्तुत उदाहरण प्रश्नकर्त्ताओं तथा उत्तरदाताओं की वास्तविक स्थिति का परिचायक है। यही कारण है कि अयोग्य जन नियुक्ति का लाभ उठाते हैं। दूसरी ओर नौकरी के नाम पर पांच सितारा होटल में बुलाकर महिलाओं का शोषण किया जाता है।

अन्य कथा में कथाकार ने सामाजिक विषमताओं को प्रस्तुत किया है। 'चौरः' इस कथा में बारह वर्षीय बालक चोरी करता हुआ जब पकड़ा जाता है, तो वह कहता है कि मेरे पिता नहीं है।

माता ज्वर से पीड़ित है कहीं भी जाने में असमर्थ है। मेरे तीन अन्य भाई भी हैं। अतः भूख से व्याकुल होकर मैंने भोजनालय से अन्न चोरी किया। अतः मुझे नहीं मारे मुझे छोड़ दें क्योंकि घर में सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे है किन्तु मुख्य आरक्षी ने उसे वन्दीशाला में भेज दिया।

देशस्य गोपनीयतथ्यसम्वलितं पत्रकं नीत्वा विदेशिनागरिकः निर्दोषः सन् विमुक्तः। मन्त्रिणः पुत्रः ऐश्वर्यः सहस्राणां रूप्यकाणां वन्यपदार्थान् विक्रीय सगौरवं गृहं गतः। अथ च एषः बालकः कथं दण्डितः भवति। किमेतस्य कारणम्।[41]

प्रभावशाली तथा उच्च पद पर आसीन व्यक्ति राष्ट्रद्रोह करके भी निर्दोष बनकर मुक्त हो जाता है और धनहीन व्यक्ति सदैव अपराधी सिद्ध होता है। धन और बल के प्रभाव से व्यक्ति न्याय व्यवस्था को भी अपने अधीन कर लेता है।

शास्त्रानुसार –

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम्।

गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान माता–पिता से भी बढ़कर है, किन्तु आज के समय में जबकि भ्रष्टाचार ने सब ओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। ऐसे समय में एक शिष्य भी अपने गुरु का काम बिना रिश्वत लिए नहीं करता है।

प्राथमिक शिक्षक चन्द्रमोहन ने दो वर्ष पूर्व ही अपने पद से अवसर ग्रहण कर लिया, किन्तु अवसरकालिक धनराशि उसे प्राप्त नहीं हुई। उसने कई बार निवेदन किया किन्तु सब कुछ व्यर्थ रहा। अतः उसके पारिवारिक जीवन का कष्ट प्रतिदिन बढ़ता रहा। एक बार वृद्ध चन्द्रमोहन ने सुना कि उसका पूर्व छात्र नटवर शिक्षामण्डलाधीश की पदवी पर नियुक्त हो गया है तब आनन्दपूर्वक कार्यालय जाकर चन्द्रमोहन ने अपनी असुविधा को शिक्षामण्डलाधीश से निवेदन कर दिया। नटवर ने भी शीघ्रता से कार्य संपन्न करवाने का आश्वासन अपने गुरु को दे दिया। किन्तु चन्द्रमोहन अभी भी अपने प्रयास में असफल रहा। तदनन्तर चन्द्रमोहन के भागिनेय बिम्बाधर ने अपने मातुलग्रह आकर संपूर्ण वृत्तान्त सुना तथा शिक्षामण्डलाधीश के कार्यालय जाकर अपने मातुल के विषय में बात की।

पूर्ववत् नटवरोऽपि कार्यालये कर्मचारिणाम् अभावात् एतत् कर्म विलम्बं भवति इति यदा सूचयति, तदानीम् विम्बाधरः तस्य सम्मुखे एकसहस्रं रुप्यकाणि स्थापयति। तद् दृष्ट्वा नाड़ीकुर्वन् स्वकोषे स्थापयति नटवरः। अधिकं किमु तस्मिन् क्षणे एव सर्वं कर्म सम्पादितं भवति शिक्षामण्डलाधीशेन नटवरेण।[42]

एक हज़ार रूपये की रिश्वत लेकर शिक्षामण्डलाधीश ने उसी क्षण संपूर्ण कार्य संपादित कर दिया। कथाकार नायक जी ने इस कथा के माध्यम से इस तथ्य की पुष्टि की है कि कार्यालयों के असंख्य चक्कर लगाने से भी कोई कार्य पूर्ण नहीं होता। किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए पहले घूस देनी पड़ती है, चाहे किसी भी प्रकार का कार्य हो। बिना देवताओं को भोग लगाए फलप्राप्ति असंभव प्रतीत होती है।

रिश्वतखोरी का एक अन्य उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है। महाराज यशोधन ने अत्यधिक कष्ट तथा प्रयत्न के परिणामस्वरूप शत्रुओं की अधीनता से अपने राज्य को मुक्त करवाया तथा जिस दिन राज्य पर उसका सम्पूर्ण अधिकार हुआ उसे स्वाधीनता दिवस के रूप में मनाया गया। पंचम स्वाधीनता दिवस पर उसने निर्णय लिया कि राज्य के प्रत्येक विद्यालय को स्वाधीनता दिवस मनाने तथा छात्रों में राज्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए एक हज़ार रुपये दिये जाएँ, किन्तु यह निर्णय किस रूप में फलित हुआ वह वास्तव में दर्शनीय है–

राज्यकोशमुख्यः चिन्तितवान् विद्यालयाः एतादृशं विपुलम् अर्थराशिं नीत्वा किं करिष्यन्ति? अतः सः तस्मात् शतद्वयं कर्त्तयित्वा अष्टशतपरिमितं धनं दत्तवान्। परन्तु आकलनपुस्तिकायाम् एकसहस्रमिति विलिखितवान्।

प्रादेशिकशासकः धनं दृष्ट्वा अचिन्तयत्–अहो! सामान्यानां विद्यालयानां कृते पुनः विपुलः अर्थराशि! नहि तथा स्यात् चेत् छात्राः विद्यालयेषु नैव पठिष्यन्ति। अतः सोऽपि अवशिष्टात् धनात् शतकत्रयं स्वकोषे संस्थाप्य शिक्षामण्डलाधीशाय पंचशतरूप्यकाणि तदधीनेभ्यः विद्यालयेभ्यः दत्तवान्। सोऽपि चतुरविनोदः प्रत्येकस्मात् विद्यालयात् दत्तवान्। सोऽपि चतुरविनोदः प्रत्येकस्मात् विद्यालयात् शतकत्रयं कर्त्तयित्वा प्रधानशिक्षकेभ्यः शतकद्वयं कृत्वा ददाति स्म।

कश्चन प्रधानशिक्षकः स्वाधीनतादिवसस्य पूर्वस्मिन् दिने विद्यालयस्य वरिष्ठशिक्षकाय तस्मात् एकशतं रूप्यकाणि प्रदाय अवदत् – श्वः छात्रेषु अवश्यं मिष्टान्नवण्टनं करणीयम्। दायित्ववान् शिक्षकः विंशतिरूप्यकैः विस्कुट आनीय छात्रेषु वण्टयित्वा उपदिशति – छात्राः। सर्वे उच्चस्वरेण कथयत – अस्माकं राज्यं–विजयताम् अस्माकं स्वाधीनताविजयताम्।[43]

प्रस्तुत कथा का केन्द्रीय भाव भ्रष्टाचार है। उच्चपदारूढ़ जन से लेकर निम्न पद पर आसीन सभी व्यक्ति स्वार्थपूर्ति में लगे रहते हैं। स्वयं अपना आर्थिक लाभ देखते हैं। साथ ही यह तथ्य भी उजागर किया गया कि आम जनता को सरकारी योजनाओं का पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता। यही कारण है कि देश में सर्वत्र आर्थिक असमानता देखने को मिलती है।

अपनी अभिलाषाओं और स्वप्नों को साकार करने के लिए राष्ट्रधन का हरण तक कर लिया जाता है। इस संबंध में प्रस्तुत उदाहरण द्रष्टव्य है–

विदेशात् धनम् आनीय शिल्पस्थापनं करिष्यति। एतदर्थं राजकोशे यत् किमपि अवशिष्टं धनमासीत् तत् सर्वम् एकीकृत्य तस्य यात्रा प्रारब्धा व्योमयानेन।[44]

राज्य की उन्नति के लिए इस्पात शिल्प केन्द्र की स्थापना हेतु कामिनीरङ्क ने राजकोश से विदेश भ्रमण किया और अन्त में असत्य भाषण के द्वारा धन के व्यय को निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर दिया गया।

भूमिपूजनोत्सवे पंचाशत् कोटिमुद्राः यन्त्रक्रयणे शतकोटिमुद्राः व्ययिताः।[45]

प्रस्तुत कथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य का ही प्रतिबिम्ब है। दुःखी–पीड़ित प्रजाजन भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर सदैव करुण क्रन्दन करते रहते हैं तथा शासक वर्ग और अधीनस्थ अधिकारी केवल अपने अभीष्ट की सिद्धि में कृतप्रयत्न रहते हैं।

भ्रष्टाचार रूपी धुन आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है। राजनीति के क्षेत्र में भी विभिन्न दल भ्रष्टाचार में लिप्त दिखाई देते हैं। इसी संबंध में प्रस्तुत उदाहरण दर्शनीय है।

प्रार्थिनः दलीयकर्मिणश्च विभिन्नमाध्यमैः मतदातृणां मनांसि हरन्त्येव। कः धनैः को वा प्रतिश्रुतिभिः। सर्वत्र परिवेशे नवमादकता, नवीना प्रचेष्टा।[46]

मतदाताओं को विभिन्न माध्यमों से आकर्षित किया जाता है। धन, शराब तथा अन्य पदार्थो का लोभ दिखाकर मतों को खरीदा जाता है।

भगवन्! यदि अस्मिन् निर्वाचने मम जयलाभः स्यात्, तर्हि अवश्यं भवतः दुःखं हरिष्यामि। एतस्य प्राचीनमन्दिरस्य पुनरुद्धारं निश्चितं करिष्यामि। नवीनमन्दिरे भवतः पूजादिकं कृत्वा धन्यो भविष्यामि। अतः मयि दयस्व प्रभो! मयि दयस्व।[47]

निर्वाचन में जयलाभ के लिए ईश्वर को भी रिश्वत का लालच दे दिया जाता है। असत्य वचन तथा प्रतिज्ञा से केवल जनता को ही नहीं भगवान को भी छला जाता है।

मन्दिरनिर्माणे यावान् धनव्ययो भविष्यति, तस्मात् प्रतिशतं रूप्यकद्वये स्थपतीनामधिकारः, एतदर्थं यदि महादेवः अग्रीमत्वेन द्विसहस्ररूप्यकाणि दास्यति तर्हि ते कार्यारम्भं करिष्यन्ति इति वचनं श्रुत्वा विचकितः दिगम्वरः।[48]

गतबुद्धि जो महादेव की कृपा दृष्टि से न केवल चुनाव में विजयी हुआ अपितु प्रभुप्रसाद से संस्कृति विभाग में मंत्रीत्व पद पर आरुढ़ हुआ किन्तु अपने राजनीतिक व्यवहार के अनुरूप अपने

द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं को वह भूल गया तथा बिना किसी घूस को प्राप्त किए कार्य संपन्न करने को अस्वीकृत कर दिया।

अन्येषां राक्षसानामिव अस्य मन्त्रिणः वधं करिष्यामि इति उच्चैः कथयन् यदा स्वत्रिशूलमानेतुं मन्दिराभ्यन्तरं प्रविशति, तत्क्षणादेव स्वत्रिशूलं परगृहे बन्धकत्वेन तिष्ठति इति स्मृत्वा असौ वहिरागतः। तृतीयनयनवह्निना मन्त्रिगतकद्धेः सर्वनाशं विधास्यामि इति कथयन् तदेव नयनमुन्मोचयितुं चेष्टते स्म। परन्तु सर्वाः चेष्टाः विफलीभूताः महादेवस्य। तृतीयनयनं नैव उन्मोचितम्।[49]

अन्य राक्षसों के समान मंत्री गतबुद्धि का वध करने का संकल्प जब भगवान शंकर ने किया तो उनके त्रिशूल तथा तृतीय नेत्र दोनों ही विफल हो गए। जब भगवान ही इस प्रकार की विसंगतियों और व्यवस्थाओं के आगे असहाय हो गए तो आजमन की स्थिति के विषय में तो कहना ही क्या?

यदि अस्माकं राज्ये पशुसुरक्षानिमित्तं विचारो भवति, तर्हि प्रथमतः शृगालानां कृते भवतु। तदनन्तरम् अन्येषां गवादीनां पशूनां विषये चिन्तयिष्यामः।[50]

वर्तमान में राजनीति एक प्रकार का व्यापार बन गया है। देश में चहुँ ओर कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, जातिवाद एवं सांप्रदायिकता का ज़हर फैल रहा है। देश की राजनीति में दिनोंदिन आपराधिक प्रवृत्तियाँ प्रबल हो रही हैं।

प्रस्तुत कथा भ्रष्टाचार तथा स्वार्थसिद्धि की परिचायक है। राज्य में 'पशुपालननीति' के अन्तर्गत पशूओं की सुरक्षार्थ सर्वप्रथम शृगालों की सुरक्षा व्यवस्था की गई। गौ आदि पशूओं के विषय में विचार को त्याग दिया गया। शृगालों को राज्य का गौरव बताया गया।

यतोहि एकस्य शृगालस्य दैनिकं खाद्यं भवति द्विसहस्ररुप्यकाणाम्। इतोऽपि आश्चर्यं भवति, तेषां तीर्थस्थानभ्रमणनिमित्तं रेलयानव्ययत्वेन शतकोटि रूप्यकाणि व्ययितानि। शृगालानां जीवनबीमाकरणे पंचशतकोटिरूप्यकाणि उल्लिखितानि। एवं चापि वस्त्रौषधादिषु तद्वदर्थव्ययः दर्शितः।[51]

शृगाल पालन में व्यय धनराशि की जब समीक्षा की गई तो समीक्षक आश्चर्यचकित हो गए क्योंकि शृगालों की उन्नति के लिए एक उपसमिति का गठन किया गया था। समिति के प्रमुख घातक श्रीसामन्त ने कुटिलतावश व्ययराशि को अधिकतम प्रदर्शित किया। यही वास्तविकता भी है सरकार द्वारा विभिन्न नीतियाँ और योजनाएँ संचालित की जाती हैं, किन्तु उनका लाभ जनसामान्य को नहीं मिल पाता है। धूर्त जन स्वयं ही धन–सम्पत्ति का हरण कर लेते हैं तथा व्यय का असत्य

चित्रांकन कर स्वयं को निर्दोष सिद्ध कर देते हैं। इस कथा में भी घातक श्रीसामन्त ने असत्य व्ययराशि को प्रदर्शित किया।

प्रकृतपक्षे तु ते शृगालाः अत्र न सन्ति। शीतकाले तेषां भ्रमणनिमित्तं ते ऐषमः स्वर्गराज्यं गच्छन्ति। तत्रत्यैः शृगालैः सह एषां वन्धुमिलनं भविष्यति। यदा तस्मादागमिष्यन्ति, अहं तान् द्रक्ष्यिष्यामि। भवन्तः अन्यथा न चिन्तयतु।[52]

समीक्षकों द्वारा शृगालों के विषय में पूछने पर घातक श्री सामन्त ने अपनी कुटिलता से उन्हें भ्रमणार्थ स्वर्गगामी सिद्ध कर दिया। इस प्रकार प्रस्तुत कथा में कथाकार नायक ने जी स्पष्ट किया है कि एक सामान्य कर्मचारी से लेकर शीर्षस्थ व्यक्ति भी भ्रष्टाचार में लिप्त है। यही कारण है कि व्यवस्थाएँ प्रतिदिन जर्जर हो रही हैं। नैतिक मूल्यों का उपहास करती ये कथाएँ वर्तमान जीवन का वास्तविक प्रतिरूप उपस्थित करती हैं।

भ्रष्टाचार के मकड़जाल में सभी विभाग जकड़े हुए हैं और देश उन्नति में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। भ्रष्टाचार एक लाइलाज रोग के रूप में फैलता जा रहा है, सभी स्थानों पर यह आम हो गया है।

खेलों में भी खिलाड़ियों के चयन से लेकर पुरस्कार देने तक भ्रष्टाचार ही देखने को मिलता है। बड़े–बड़े पुरस्कार धनबल से खरीद लिए जाते हैं। कोई भी काम बिना लेन–देन अथवा स्वार्थसिद्धि के संभव नहीं हो पाता है। "**प्रतियोगिता**" नामक कथा में इसी तथ्य की पुष्टि की गई है।

सभी वनों के कुशल क्रीडाविद् पशूओं की विभिन्न विभागों में एक खेल प्रतियोगिता का आयोजन होगा। इस प्रतियोगिता में जो जिस भी विभाग में प्रथम आएगा, उसे अवश्य ही पुरस्कृत किया जाएगा।

प्रथमतः शतमिट्र परिमितधावनक्रीडार्थं प्रार्थिमनोनयनं जातम्। तत्र प्रार्थिषु यदि वा बहवः लब्धप्रतिष्ठधावकाः आसन्, तथापि तेषां नामश्रवणेन उपसमितेः अध्यक्षः विरक्तः जातः। येन केनाप्युपायेन सर्वान् क्रीडाविशारदान् निराकृत्य तेन विशालकायनामकस्य कच्छपस्य नामप्रस्तावः कृतः। असौ विशालकायः अस्माकं वनप्रदेशस्य प्रमुखशिल्पपतेः जामाता। यदि क्रीडानिमित्तं तस्य नाम नैव प्रदास्यते, तर्हि कुपितशिल्पपतिः अन्यथा चिन्तयिष्यति। अन्यथा चिन्तयिष्यति इत्युक्ते अस्माकमासनमपि न स्थास्यति।[53]

प्रतियोगिता में प्रतिभागियों का चयन योग्यता न होकर पदलोलुपता रह गया है। प्रभावशाली जन चयन समिति पर दबाव डालकर अपना हित साध लेते हैं, क्योंकि वे भी उन्हें

अप्रसन्न कर अपना पद खोना नहीं चाहते हैं। **'प्रतियोगिता'** नामक इस कथा में सभी प्रतिभागी किसी न किसी के प्रभाव, संबंध अथवा भय के कारण चयनित हुए, जिनके उद्धरण इस प्रकार हैं–

सन्तरणप्रतियोगितायाः कृते द्वादशसंख्यकाः प्रतियोगिनः आसन्। परन्तु विना विचारं वनक्रीडामन्त्रिणः पुत्रस्य जलातङ्कमर्कटस्य नामग्रहणं कृतम्।[54]

तत्र लम्फप्रदानप्रतियोगितार्थं क्षिप्रगामिव्याघ्रः अवश्यं गमिष्यति इति आसीत् केषांचित् आशयः। परन्तु तत्स्थानं अनुन्नतवर्गस्य कृते संरक्षितत्वात् शय्याप्रियः गण्डकः तदर्थं प्रेषितः।[55]

आरक्षण मौजूदा परिस्थितियों में देश की एक बहुत बड़ी त्रासदी है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद आरक्षण की व्यवस्था इसलिए लागू की गई थी कि समाज के दबे, कुचले, दलित एवं पिछड़े लोगों को भी विकास का अवसर दिया जाए किन्तु जाति या धर्म के नाम पर आरक्षण देकर योग्य तथा गुणी जनों को पीछे धकेला जा रहा है।

अनन्तरं मुष्टियुद्धस्य कृते मल्लचयनमनुष्ठितिम्। चयने तस्मिन् यदि वा लौहकायनामकः गवयः प्रार्थी आसीत्। तस्य नाम प्रेषणेऽपि सर्वे सम्मताः आसन् तथापि वनप्रधानमन्त्रिणः अनुमोदनपत्रवलेन कार्पासास्थिनामकः शशकः मुष्टि–युद्धार्थं प्रेरितः।[56]

ततः सुन्दरी प्रतियोगिताविषये चर्च्चा प्रारब्धा। वनस्वास्थ्यमन्त्रिणः भल्लुकदेवस्य कन्या एतदर्थम् इच्छुका अस्ति। यदि सा न गमिष्यति, तर्हि भल्लुकदेवस्य कोपेन सर्वत्र असुन्दरव्याधिः भविष्यति।[57]

कथाकार नायक जी के अनुसार जीवन का कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार से अछूता नहीं रह गया है। खेलों को परस्पर सौहार्द्र भावना तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का प्रतीक माना जाता था किन्तु यहाँ पर भी भ्रष्टाचार की कालिख ही व्याप्त है। यही कारण है कि आए दिन खेलों में सट्टेबाजी या मैच फिक्सिंग देखने को मिलती है। प्रतिभागियों द्वारा स्टेमिना बढ़ाने वाली दवाओं का सेवन करना आम बात है।

प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ यह है कि समाज का वह तबका जो पैंतीस चालीस से ऊपर की आयु का है, जिन्होंने औपचारिक शिक्षा के अवसर को गंवा दिया है तथा किसी कारणवश निरक्षर व अशिक्षित रहकर वे पिछड़ गए हैं, उनमें साक्षरता का प्रचार–प्रसार कर समय की रफ्तार के साथ जोड़ने का प्रयास करना। प्रस्तुत कथा **'प्रौढ़शिक्षाकेन्द्रम्'** में शिक्षा केन्द्रों की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया गया है।

परिशेषे सर्वे प्रौढ़शिक्षाकेन्द्राणां भ्रमणाय गताः। परन्तु किमेतत्? न कश्चन शब्दः समायाति। अनेन चकिताः सन्तः सर्वे अन्तः प्रविष्टाः। केचन विद्यार्थिनः प्रौढाः शेरते। न कश्चन आचार्यः अवलोक्यते। अनन्तरं निद्रातः उत्थाय पृच्छा कार्या..............।

आचार्यः न कश्चन आयाति कदाचित्। केवलं मासिकवृत्तिग्रहणकाले तेषां दर्शनं मिलति। दुग्धौषधिकरदीपादिविषये यदैव पृष्टाः – तदानीं सर्वे निरुत्तराः जाताः। एतस्मिन् विषये ते किमपि न जानन्ति इत्येव तेषामुत्तरमासीत्।[58]

शिक्षा विभाग में भी भ्रष्टाचार अपने पांव पसार चुका है। विद्यालय में प्रवेश से लेकर समस्त प्रकार की शिक्षण प्रक्रिया में पदप्राप्ति में, पदोन्नति में तथा स्थानान्तरण में सर्वत्र अव्यवस्थाएँ ही देखने को मिलती हैं। विद्यालय में आचार्यगण केवल मासिकवृत्ति ग्रहण के समय ही आते हैं। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं और नीतियों का पूर्ण लाभ शिक्षार्थियों को नहीं मिल पाता है। भ्रष्टाचार के कारण अनेक परियोजनाएँ अधूरी ही रह जाती हैं और सरकारी कोष व्यर्थ ही चला जाता है।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार व्याप्त हो चुका है। यह तो सेवा का परं पवित्र पेशा है किन्तु कुछ ही दिनों में जीवनदान देने वाला ईश्वरतुल्य चिकित्सक व्यवसायी बनकर अधिकाधिक धनार्जन करने लगता है। चिकित्सा के नाम पर लोगों को ठगता है। सरकारी चिकित्सालयों में दीन–हीन जन की चिकित्सा तथा सेवासुश्रुषा का त्यागकर वह स्वकीया चिकित्सा केन्द्र में दरिद्र रोगियों को केवल अर्थप्राप्ति के लिए भेजता है। प्रस्तुत उदाहरण में इसी तथ्य को उजागर किया गया है–

रोगिणः आतुरतां पश्यति चिकित्सकः। तम् अधिकं निकटं आहूय कथयति–यथाशीघ्रं राजमार्गं प्रति गच्छ। तत्रैव मम दरिद्रचिकित्साकेन्द्रम् अस्ति। अहं तत्र सम्यक्तया तव रोगं द्रक्ष्यामि।[59]

सरकारी चिकित्सकों की प्रतिदिन बढ़ती धनलोलुपता के चलते वे स्वकीयचिकित्सालयों में ही रोगी का सम्यक् परीक्षण करते हैं। सरकारी चिकित्सालय में आने वाले रोगियों को अपने निजी चिकित्सालय जाने का परामर्श देते हैं।

रोगनिरूपणाय एकशतरूप्यकाणि नीत्वा उपदिशति– 1. मल–मूत्र–रक्तानां परीक्षां तस्यैव परीक्षागारे करोतु। तदर्थं द्विशतरुप्यकाणि दातव्यानि स्युः। 2. पंचशतरुप्यकाणि दत्त्वा कम्प्युटर् परीक्षां करोतु। तदनन्तरं औषधं लिखनीयं भवेत्।[60]

मल–मूत्र तथा रक्त आदि की जाँच के नाम पर इच्छानुसार शुल्क वसूल किया जाता है।

दरिद्राणां कृते तस्य चिकित्साकेन्द्रस्य एषा उपहासात्मिका व्यवस्था न खलु जीवनाय अपितु मरणाय भवति इति चिन्तयति। दुःखेन निःश्वस्य पत्न्याः कर्णे वदति–अहो! स्वकीय चिकित्साकेन्द्रस्य कृते रोगिसंग्रहार्थम् एषः किमु सर्वकारीयचिकित्सालये उद्योगं कृत्वा विपुलम् अर्थराशिं लभते।[61]

दरिद्र व्यक्ति के लिए स्वकीयचिकित्साकेन्द्र की व्यवस्था उसका मात्र उपहास करने के लिए ही है। यह व्यवस्था जीवनदान के लिए न होकर मृत्यु के लिए है क्योंकि उसके पास इतनी धनराशि नहीं होती कि वह इस प्रकार के चिकित्सालय में इलाज करवा सके। भ्रष्टाचार तथा स्वार्थपरता की अंधी दौड़ से आज कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है।

"प्रचलति विचारविमर्शः,
अनन्तरं समाश्वस्ता भवन्ति सर्वे,
एकलक्षरूप्यकाणां साहाय्येन
समारभ्यते दारिद्र्यविनाशनयज्ञः।
स्वयमेव पश्यति दिवारात्रं दरिद्रः।
कथं द्विगुणीकरिष्यति तदेव धनम्,
एकवर्षाभ्यन्तरे स्वकीयोद्यमेन,
परिवारजनैः साकं
विचारयति मुहुर्मुहुः।
दरिद्रस्य स्वप्नः सफलतामेति,
उच्चपदाधिकारिणः सविधे
हस्ताङ्कनं कृत्वा
परिगृहणाति धनराशिम्,
सानन्दं ग्रन्थिपूर्णे स्ववसनांचले
अतीव यत्नेन
यमेव संस्थाप्य कृतज्ञतां
ददाति सर्वेभ्यः।
ततः सायंकाले
एकैकशः समायान्ति कुटीरं तदीयम्।
ग्रामनेतुः समारभ्य
पदाधिकारिणः सकलाः,
स्वीकुर्वन्ति गोपने स्वभागम्,
वाचयन्तोनिजशक्तिजालम्

गम्भीरे निशार्द्धे
गणयति अवसन्नोऽसहायो दारिद्याग्निजातः
कोशे तस्य अवशिष्टो धनराशिः
सहस्रपंचकम्।"[62]

दरिद्रता का विनाश करने के लिए प्रत्येक परिवार को एक लाख रूपये की धनराशि सहायतार्थ देने का निश्चय किया सहायता राशि प्रदान करते समय धनग्रहण करते हुए दरिद्रजन का छायाचित्र लिया गया तथा संवादपत्रों में वह छायाचित्र प्रथम पृष्ठ पर अङ्कित हुआ। सायंकाल एक–एक करके ग्रामनेता से लेकर संपूर्ण पदाधिकारियों ने गुप्तरूप से अपने–अपने भाग को ग्रहण किया तथा अपने शक्तिजाल को प्रदर्शित किया। इस प्रकार दरिद्र के समीप एक लाख रूपये में से मात्र पाँच हजार की राशि ही शेष रही।

प्रस्तुत उद्धरण में सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है। भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव सदैव आमजन को भुगतना पड़ता है। जनता के हितार्थ प्रारंभ की गई योजनाओं का लाभ जनसाधारण को नहीं मिल पाता अपितु उसका आधे से भी अधिक अंश संबंधित अधिकारियों तथा मंत्रियों को सुख–सुविधाएँ प्रदान करता हैं आम आदमी सदैव शोषण की चक्की में पिसता रहता है।

दरिद्र पत्नी के मनोभावों को निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त किया गया है–

चीत्करोति पत्नी
उरुकस्य शून्यकोशं विलक्ष्य
उत्कोचार्थं विना निरर्थकः उद्योगः
हीनवीर्य्य उद्योगिपुरुषः।[63]

कार्यालय से घर लौटे हुए पति से पत्नी कहती है कि उत्कोच (रिश्वत) के बिना पुरुष का उद्योग निरर्थ होता है। दरिद्रता की अग्नि से दिनरात जलता हुआ तथा पत्नी के धिक्कारवचनों से आक्रान्त कुबेर सब कुछ शून्य मानता है।

अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नियमों के विरुद्ध व्यवहार भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। जिसमें रिश्वत या घूसखोरी का प्रचलन दिनोंदिन बढ़ रहा है। कई बार अभाव तथा आर्थिक असमानता के कारण भी मनुष्य भ्रष्टाचार के दलदल में उतर जाता है।

तस्य कार्यालये कार्यरतः अन्ये उत्कोचेन एव वित्तशालिनः सन्ति। दामोदरमिश्रस्य कार्यानं, हेरम्बस्य द्वितलप्रासादः, जयन्त्याः राजधान्यां पुत्रस्य पठनं सर्वं किमपि उत्कोचधनेन एव सम्भवति।

अथ च कदाचित् आपत्काले मानसः असमर्थः भवति एकसहस्रपरिमितं धनराशिं प्रदातुम्। तद्दिने तस्य श्वशूरोऽपि वहु किमपि उपदिष्टवान्। परधनमेव गृहस्य परिवर्धने परमं सहायकम् इत्यपि तस्य हिताय प्रोक्तवान् सः।[64]

आधुनिक सुख–सुविधाओं के साधन जुटाने के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है। केवल वेतन पर आधृत होकर वित्तशाली नहीं बना जा सकता। अतः विवाह के पश्चात् मानस की पत्नी तथा उसके ससुर उसे कार्यालय में उत्कोच लेने की शिक्षा देते हैं।

धन के लोभी तथा भ्रष्टाचारी व्यवसायी अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से खाद्य तथा पेय पदार्थों में अशुद्ध तथा अनावश्यक वस्तुओं का अपमिश्रण कर देते हैं तथा ऐसी घटिया चीज़ों को भी अच्छा बताकर ऊँचे दाम पर बेचते हैं।

यावत्परिमाणं दुग्धं भूमौ निपतितम्, तावत्परिमाणं जलमेव मिश्रीकरोतु। येन सर्वेभ्यः दुग्धं प्रदातुं शक्यते। अपरमपि यदि प्रत्यहं दुग्धे जलस्य मिश्रणं करिष्यति, तर्हि सः लाभः भवतः एव स्यात्।[65]

मुनाफाखोर दूध के साथ ही अन्य पदार्थों में जैस दालें, अनाज, मसाले, घी, सब्जी आदि में भी अपमिश्रण कर देते हैं, जिससे उस वस्तु की गुणवत्ता में कमी हो जाती है तथा शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भ्रष्टाचार से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है। शिक्षा में भ्रष्टाचार समाज के लिए खतरा है क्योंकि यह सामाजिक विश्वास को नष्ट करता है। विद्यालय में छात्रों के एडमिशन (प्रवेश) का प्रश्न हो, निजी विद्यालयों की मनमानी फीस का मुद्दा हो, विद्यालय की मान्यता संबंधी, बात हो अथवा परीक्षा–प्रणाली में अनुचित संसाधनों का प्रयोग हो यहाँ तक कि पीएच.डी. जैसी उच्च शिक्षा में भी भ्रष्टाचार व्याप्त हो चुका है–

आगामिशिक्षावर्षतः न कश्चन मार्गदर्शकः गवेषकतः विंशतिसहस्रात् अधिकं धनं नेतुं पारयिष्यति तथा च कश्चन प्रफेसरजनः धनेन विना मार्गदर्शकः न भवितुं पारयिष्यति इति मार्गदर्शकसंघस्य कठोरः नियमः प्रचलिष्यति।[66]

आगामी शिक्षा वर्ष से कोई भी मार्गदर्शक गवेषक से 20,000 से अधिक धन नहीं लेगा तथा कोई भी प्रोफेसर धन लिए बिना मार्गदर्शक नहीं बन पाएगा। ऐसा मार्गदर्शक संघ का कठोर नियम चलेगा।

(ङ) आतङ्कवाद

आतंकवाद शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– 'आतंक' और 'वाद'। आतंक का अर्थ है 'भय' तथा 'वाद' का अर्थ होता है 'विचार अथवा सिद्धान्त' आतङ्कवाद आज एक वैश्विक समस्या है, जो दीमक की तरह समाज की संवेदनाओं को नष्ट करता जा रहा है और सभी मूकदर्शक बन अवाक् बैठे हैं। आतङ्कवाद केवल एक शब्द नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानव जाति के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है तथा इसका उद्देश्य लोगों के अंदर हिंसा का डर पैदा करना है।

डॉ. नायक की दृष्टि में आतङ्कवाद का अभिप्राय मात्र एक आपराधिक तथा हिंसात्मक कुकृत्य ही नहीं है, अपितु सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों के पतन से है। आपकी रचनाओं में मानवीय संबंधों को तार–तार कर देने वाली कथाएँ हैं, ऐसे प्रसंग हैं जो राजनीति के छद्म वेश को उजागर करते हैं, कहीं धर्म के नाम पर संपूर्ण मानव जाति को शर्मसार किया जाता है, तो कहीं पाश्चात्यीकरण की होड़ में युवा पीढ़ी अपनी ही संस्कृति को दाव पर लगा रही है। दुरुह मानव जीवन में कहीं असंतोष दिखाई देता है तो कहीं संघर्ष कभी–कभी परिस्थितियाँ इतनी विषम हो जाती हैं कि वे आतङ्क का पर्याय बन जाती हैं, जिन्हें निम्नलिखित उदाहरणों में समझा जा सकता है–

कुत्रचित् समाजे
नियमोऽपि नास्ति।
सृष्टेः लक्ष्यमवरुद्धम्
अवरुद्धं प्रकृतेः गाम्भीर्यम्।
अनेनैव विलुण्ठिता
चारुहायमयी पृथ्वी
दग्धीभूतः शान्तः परिवेशः
प्रीतिचितातले अस्य
संदृश्यते घृण्यसहवासः।
मानवेन विनिन्दितः
कदाचित् देवः
देवासने पूजितो भवति
कदाचित् असुरः स्वस्य हितसाधने।
अनेन यत् लिखितं
यद् वा उपदिष्टं

तत् सर्वं पुस्तकाय
न तु स्वकीयजीवनाय।
अयमेव तस्य महान् गुणः
उदारपरिचयः।
विश्वप्राणिनां शासकः
मानवः मनु तनयः
अत एव अस्येच्छया
विलुप्यन्ते जीवाः
संसेवन्ते ये च जीविताः
तेषां रक्तेन मांसेन
एतस्य प्रयोजनम्।
एतदर्थं मानवः
सुविशाले संसारे
श्रेष्ठजीवः!!![67]

इस विशाल संसार में सर्वश्रेष्ठ जीव मानव है क्योंकि मानव की बुद्धि ध्वंसाभिमुखी है। मानव का विश्वास किसी समाज नाम की संस्था अथवा नियम पर नहीं है अपितु उसका संबंध अथवा बन्धुता केवल स्वार्थ के वशीभूत है। मानव ने आज सृष्टि के लक्ष्य तथा प्रकृति की गंभीरता को अवरुद्ध कर दिया है। पृथ्वी के सुन्दर हास्य को लूट लिया है। शान्त परिवेश को भस्म कर दिया है। प्रेम की चिता पर आज घृणित सहवास दिखाई देता है। मनुष्य द्वारा निन्दित देव जो कभी देवासन पर पूजे जाते थे, अपना हित साधने में आज असुर पूजे जा रहे हैं। सभी उपदेश तथा प्रवचन मात्र पुस्तकीय ज्ञान बनकर रह गए हैं, इन्हें जीवन में आत्मसात् नहीं किया गया है। कुछ जीव तो विलुप्त हो चुके हैं और जो जीवित हैं उनके रक्त तथा मांस से ही मनुष्य को प्रयोजन है।

प्रस्तुत कविता में मानव की ध्वंसाभिमुखी प्रवृत्ति को आतङ्क के रूप में चित्रित किया गया है। मनुष्य का अत्यधिक स्वार्थी हो जाना तथा प्रकृति के साथ खिलवाड़ करना आदि कृत्य समस्त भूमण्डल को विनाश के गर्त्त में धकेल रहे हैं। स्वयं को मनु पुत्र की संज्ञा से अभिहित करने वाले सर्वश्रेष्ठ जीव मानव ने मानवता को ही मूल्यहीन कर दिया है।

इन्हीं विचारों को कविवर नायक जी ने अन्यत्र भी प्रदर्शित किया है–

इह लोके
निरीक्ष्यते उत्कटः अभावः।
अभावस्तु नैव धनस्य
नापि ज्ञानस्य
नैव पुनः अधिकारस्य।
इह लोके
यः अभावः
सः खलु मनुष्यत्वस्य।[68]

मनुष्य में मनुष्यता का ह्रास निरंतर होता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंच पर अभिनय चल रहा है। ये सभी मनुष्य न होकर पुत्तलिका विशेष हैं।

प्रलयस्य धारा प्रवहति
प्रखरा तटिनी यथा
अवलेहनाय सभ्यतां माधुरीम्।
ग्रसनाय अहङ्कारहिमालयराशिम्।
क्राओने जिक् – अग्निः – पृथ्वी–
त्रिशूलप्रभृतितारकास्त्रं
नहि क्षमं गतिं रोद्धुं
शेषप्रलयस्य
नास्ति प्रयोजनं पुनः
वन्धुराष्ट्रशिखरमिलनैः राष्ट्रदूतप्रेरणेन
स्थितिं लोकयितुम्।
शक्तिधर! त्वमपि अक्षमः
रोधनाय प्रलयस्य निष्ठुरां प्रखरां गतिं
जीवनस्य अन्तिमे समये।
मग्नस्त्वं हि निर्वाचनकादम्बरीपाने
धर्ममद्य भ्रामयति
तव सखे! उद्भ्रान्तं यौवनम्

धनमोहः हरति ते

जीवनस्य दीप्तिम्।

प्रलयस्य स्वरतले श्रृणु सखे! मरणचित्कारम्।[69]

प्रस्तुत कविता में कवि को सर्वत्र प्रलय का स्वर सुनाई दे रहा है। कोयल के मधु कूजन में, सूर्य के आलोक में, चन्द्रमा की किरणों में, प्रातः स्नान में, रात्रि शयन में, मन्त्रपाठ—वेदध्वनि में, कन्यादान में उत्सव तथा व्यसन में सर्वत्र प्रलय का स्वर है। अग्नि, पृथ्वी तथा त्रिशूल आदि प्रक्षेपास्त्र प्रलय की गति रोकने में समर्थ नहीं है। बन्धुराष्ट्रों के शिखर सम्मेलन तथा राष्ट्रदूत भेजने से भी प्रयोजन सिद्ध नहीं हो रहा है। हे शक्तिधर! तुम निर्वाचन के कादम्बरीपान में मग्न हो तथा प्रलय की निष्ठुर गति को रोकने में असमर्थ हो। प्रलय के स्वरतले मरण की चीत्कार को सुनो।

संपूर्ण मानव जाति के अस्तित्त्व पर संकट गहरा रहा है। सभी देश परस्पर शत्रुता का व्यवहार कर रहे हैं। शान्तिवार्ता किसी पर भी सफल होती नहीं दीख पड़ती। विश्व के सभी देशों में शक्ति प्रदर्शन की होड़ लगी है तथा देश की सुरक्षा पर खतरा मंडरा रहा है। असुरक्षा की भावना से प्रत्येक जन—मन आतङ्कित है।

सभ्यता प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा नवजागरण के नाम पर जो कार्य किए जा रहे हैं वे सृष्टि को विनाश की ओर धकेल रहे हैं। सभी प्राणी आतंकित हो गए हैं।

तदारभ्य उत्पतिताः वृक्षाः

प्राणिनः घातिताः

विशालपर्वतस्थाने

गभीरः गर्त्तः अवलोकितः।

पारस्परिकं जीवनं कलहपूर्ण्णं संजातं

शान्तः परिवेश विनष्टः विलुप्तः विश्वासः।

तण्डुले उपलखण्डानां पानीये दूषितपदार्थानाम्

अपमिश्रणं परिदृष्टं

दिवसेऽपि राजमार्गगमनं

स्वस्यगृहे शान्त्या शयनं कठिनं जातम्।[70]

वृक्षों को उखाड़ दिया गया है। प्राणियों को मार दिया गया है। विशाल पर्वतों के स्थान पर गहरे गर्त्त दिखाई दे रहे हैं। पारस्परिक जीवन कलहपूर्ण हो गया है। शान्त परिवेश नष्ट हो गया है। लोगों के मध्य विश्वास विलुप्त हो चुका है। खाद्यान्न में उपलखण्डों का तथा पानी में

दूषित पदार्थों का अपमिश्रण देखा जाता है। दिन के समय भी राजमार्गों पर चलना कठिन हो गया है तथा अपने घर में शान्तिपूर्वक शयन भी असंभव प्रतीत होता है। इस प्रकार सभ्यता का पूर्ण प्रसार चल रहा है लोग सभ्य हो रहे हैं, सभ्यता के नाम पर विध्वंसकारी प्रवृत्तियाँ चल रही है। पर्यावरण को क्षति पहुँचायी जा रही है। खाद्यपदार्थ तथा जल में भी अवांछित तत्त्वों का समावेश हो चुका है। कलह तथा अशान्ति बढ़ती ही जा रही है। जीवन असंभव तथा आतंकित प्रतीत होने लगा है।

'अहो राजधानी' नामक कथा में राजनीति में व्याप्त आतङ्कवाद को उजागर किया है। इस कथा में यह स्पष्ट किया गया है कि राजनैतिक दल के कार्यकर्त्ताओं की स्थिति अत्यन्त शोचनीय
होती है।

दरिद्रदलनदल के अन्यतम विशिष्ट नेता गोमयबुद्धि के चरण आज भूमि पर नहीं पड़ रहे हैं क्योंकि इसी दल के मन्त्री लुण्ठनप्रियभट्टाचार्य मन्त्रीपद की शपथ लेने राजधानी जा रहे हैं। शपथोत्सव कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए दलीय कार्यकत्ताओं को निमंत्रित किया जाता है।

उत्साह तथा प्रसन्नता से भरा हुआ ग्रामीण गोमयबुद्धि शहरी चकाचौंध से आतंकित हो जाता है।

गमनसमये पुनः ग्रीवाभङ्ग्या विशालप्रासादं पश्यति यदा गोमयबुद्धिः, तदानीं हठात् असावधानतया कस्याश्चित् युवत्याः वक्षोदेशे तीव्राघातः तस्य जातः। किंकर्त्तव्यविमूढः गोमयबुद्धिः विपत्तारकं तं नवीन शब्दं स्मरति। अनाभ्यासात् तत्क्षणादेव स्मितहासिनः तस्य मुखात् 'श्याली' इति शब्दः निर्गतः। तत् क्षणादेव तस्याः युवत्याः पादुकाप्रहारः जातः अस्य गल्लदेशे।[71]

ग्रामीण गोमयबुद्धि 'Sorry' शब्द का अभ्यास न होने से गलत उच्चारण कर बैठा परिणामस्वरूप 'श्याली' शब्द उच्चरित किए जाने से युवति के कोप का भाजन बना।

हठात् युवकद्वयं तरसा आगत्य तस्य मस्तकात् स्युतं हरति। अनुरोधं करोति गोमयबुद्धिः। सर्वः अनुरोधः तेषां हास्येन उड्डीयते। "अरे राजधान्यां व्यवसायं करिष्यसि, मह्यं करं (Tax) न दास्यसि? इति श्रुत्वा कृतांजलिः भवति गोमयबुद्धिः। प्रार्थनया युवकाः सर्वं नारिकेलादिकं नीत्वा केवलं चिपिटकं प्रत्यावर्तयन्ति।"[72]

बड़े शहरों में चल रही आपराधिक प्रवृत्तियों का शिकार गोमयबुद्धि हो जाता है। टैक्स के नाम पर उसका सामान तथा धन आदि का हरण कर लिया जाता है।

किश्चित् पुष्पं नेतव्यमस्मात् मन्त्रिणः स्वागतीकरणाय। तस्य वन्दनाविधानाय इति विचिन्त्य यदा हस्तं प्रसारयति, तदानीं यमदूतसमः कुक्कुरः आगत्य रक्ताक्तीकरोति तम्।[73]

मन्त्री महोदय के स्वागत हेतु गोमयबुद्धि ने पुष्प चुनने का विचार किया तो यमदूत के समान कुक्कुर ने आकर उसके हाथ को रक्तरञ्जित कर दिया।

प्रवेशसमये द्वारपालस्य वारणेन चित्करोति असौ। यदा वलपूर्वकं द्वारे प्रविशति तदानीं द्वारपालस्य दण्डाघातेन भूमौ पतति।[74]

मन्त्री लुण्ठनप्रिय का घर साक्षात् इन्द्र के भुवन के समान था। प्रवेश के समय द्वारपाल के द्वारा गोमयबुद्धि को रोक दिया गया। उसने अपना पूर्ण परिचय दिया और कहा मैं भी नेता हूँ, विशिष्ट नेता, कर्मी मन्त्री जी का दक्षिणहस्त। जब बलपूर्वक प्रवेश का प्रयास किया गया तो द्वारपाल के दण्डाघात से भूमि पर गिर पड़ा।

प्रस्तुत कथा में कथाकार ने महानगरीय जीवनशैली तथा तदगत आपराधिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया है साथ ही राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की वास्तविक स्थिति का भी वर्णन किया है।

केवल हिंसात्मक गतिविधियों को ही आतंकवाद नहीं माना जा सकता है, अपितु यदि कोई व्यक्ति अथवा संगठन स्वयं के आर्थिक, राजनीतिक तथा विचारात्मक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अन्य प्राणियों को निशाना बनाए तो वह भी आतंकवाद की ही श्रेणी में आता है। जैसाकि **'अधिवेशनम्'** नामक कथा में कथाकार कहते हैं कि–

"अधुना सर्वकारेण अप्राप्तवयस्काः साधारणवृक्षाः रथनिर्माणाय प्रदीयन्ते। तथैवापि रथकाराणां पारिश्रमिकं नगण्यमेव। अतः नात्र में दोषः।"

'अधुना मम शान्तमयः परिवेशः विनष्टः। कुष्ठरोगिणां' 'देहि देहि' चित्कारः अहर्निशं व्याकुलीकरोति मामेव। हेरोइन्, चरस् प्रभृति मादकद्रव्यैः आक्रान्ताः जनाः अत्रैव आश्रयन्ते। अतः परिवारवर्गो मे कुत्रापि गन्तुं भीतिं लभते।

मठादीनां घण्टघण्टाध्वनिः यावद्दूरं न श्रूयते, ततोऽधिकदूरे तु खीष्टयवनादीनां घण्टाप्रार्थनाप्रभृतयः कर्णगोचरी भवन्ति। तथैवापि पुष्करिणीनां दुरवस्था अवर्णनीया। पुनश्चापि दुःखस्य विषयोऽयं यत् – अत्रत्यानां केषांचित् जननेतृणां गोवृषभादिभिः जराग्रस्तो मे वाहनं वासुदेवः वारं वारम् आक्रम्यते। कृतेऽपि निवेदने तेषां रक्षकाणां निकटे न कोऽपि लाभः।

गरुडः वदति – चौरैः अपहृतः सन् एकस्यां रुद्धपेटिकायां दीर्घदिनानि यावत् अवस्थापितोऽहम्। कः प्रश्नो वा पानभोजनादीनाम्? केचन उच्चपदवीधारिणः केन्द्रीयसंग्रहालये मामवस्थापयितुं चेष्टितवन्तः।[75]

रथयात्रा का प्रसङ्गचल रहा है। रथ निर्माण के विषय में विश्वकर्मा की दुर्बलता से बलदेव जब क्रोधित होते हैं तो विश्वकर्मा कहता है कि इस संबंध में मेरा कोई दोष नहीं है क्योंकि रथनिर्माण के लिए सरकार ने अवयस्क साधारण वृक्ष दिए थे तथा रथ बनाने वालों का पारिश्रमिक भी नगण्य था।

जब क्षेत्रपाल श्री लोकनाथ का अवसर आया तो उसका मन भी अशान्त तथा हृदय खिन्न था। उसका शान्तमय परिवेश नष्ट हो गया था। कुष्ठरोगियों का चित्कार दिन–रात उसे व्याकुल कर रहा था। मादक द्रव्यों का सेवन कर लोग भी वहीं आश्रय ले रहे थे जिससे उसके परिवार के सदस्य भय के कारण कहीं भी आ जा नहीं सकते थे।

नगरों का तो कहना ही क्या? मठ आदि स्थानों से घण्टियों की ध्वनि जितनी दूर से सुनायी नहीं देती, उससे भी अधिक दूर से खीष्ट यवन आदि लोगों की प्रार्थना की घण्टियाँ सुनायी देती हैं। नदियों की दुरवस्था तो अवर्णनीय है। कुछ जननेताओं के गो–वृषभादियों द्वारा मेरे जराग्रस्त वाहन पर बार–बार आक्रमण किया जा रहा है। रक्षकों के निकट समस्या का निवेदन कर देने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ।

गरुड़ ने अनिर्दिष्ट काल के लिए सवेतन अवकाश की प्रार्थना की। कारण पूछने पर उसने बताया कि चोरों ने उसका अपहरण कर एक बंद पेटिका में कई दिनों तक रखा तथा कुछ उच्च–पदाधिकारी उसे केन्द्रीय संग्रहालय भेजना चाहते थे।

सरकार की दुर्नीतियों से आमजन ही नहीं अपितु पशु–पक्षी तथा देवता भी दुःखी है। समाज में भ्रष्टाचार, पर्यावरण प्रदूषण, नशाखोरी तथा पशु–पक्षियों के साथ अमानवीय व्यवहार दिनोंदिन बढ़ रहा है।

परिशेषे जगन्नाथः वदति–ममावस्था तु न कथनीया। श्री मन्दिरस्य सुरक्षाव्याजेन अहं सर्वकारेण वंचितः। विगतप्रलेपाः मन्दिरस्य प्रस्तरखण्डाः कदा वा भूमौ पतिष्यन्ति? एतत् को जानाति?[76]

स्वयं भगवान जगन्नाथ भी अपनी अवस्था को बताने में असमर्थ हैं। यतोहि श्री मन्दिर की सुरक्षा के बहाने सरकार के द्वारा उन्हें भी ठगा गया है।

♦♦♦♦

सन्दर्भ

1. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–145
2. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–2
3. उवाच कण्डुकल्याणः–प्रगति पथे, पृ.सं.–23
4. उवाच कण्डुकल्याणः – साक्षात्कारः, पृ.सं.–81
5. उवाच कण्डुकल्याणः – हासयोगाणकार्यक्रमः,– पृ.सं.–19
6. उवाच कण्डुकल्याणः – मिलितमन्त्रिमण्डलम् – पृ.सं.–66
7. उवाच कण्डुकल्याणः – मिलितमन्त्रिमण्डलम्, पृ.सं.–66
8. कथासप्ततिः – नेता, पृ.सं.–2
9. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रगतिपथे, पृ.सं.–24
10. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रगतिपथे, पृ.सं.–24
11. कथासप्ततिः – अधिकार, पृ.सं.–15
12. लोकभाषा – सुश्रीः – परीक्षा, पृ.सं.–12
13. लोकभाषा – सुश्रीः – परीक्षा, पृ.सं.–12
14. गर्त्तः – शिला, पृ.सं.–39
15. शबरी–स्वाधीनता, पृ.सं.–3–4
16. शबरी – मन्दिरं निर्माति राजा, पृ.सं.–50
17. शबरी – सिंहासनम्, पृ.सं.–46
18. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–145
19. कथासप्तति – उपदेशः, पृ.सं.–35
20. उवाच कण्डुकल्याणः – अथ च कृषकः, पृ.सं.–64
21. उवाच कण्डुकल्याणः – अथ च कृषकः, पृ.सं.–64
22. उवाच कण्डुकल्याणः – बजेट, पृ.सं.–52–53
23. उवाच कण्डुकल्याणः – बजेट, पृ.सं.–53–54
24. उवाच कण्डुकल्याणः – बजेट, पृ.सं.–55
25. उवाच कण्डुकल्याणः – बजेट, पृ.सं.–55
26. उवाच कण्डुकल्याणः – बजेट, पृ.सं.–55

27. शबरी – मन्दिर निर्माति राजा – पृ.सं.–49
28. शबरी – मन्दिरं निर्माति राजा – पृ.सं.–50
29. शबरी–जयन्ती, पृ.सं.–21–21
30. कथासप्ततिः–मुक्तिदाता, पृ.सं.–14
31. लोकभाषा – सुश्रीः – निमित्तमात्रम्, पृ.सं.–10
32. लोकभाषा सुश्रीः – निमित्तमात्रम्, पृ.सं.–10
33. उवाच कण्डुकल्याणः – लोकलीला, पृ.सं.–75
34. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–68
35. दारिद्रयशतकम्, पृ.सं.–1
36. दारिद्रयशतकम्, पृ.सं.–57
37. गर्त्तः – लघुपदचतष्ट्यम्, पृ.सं.–42
38. कथासप्ततिः – नीलवर्णः शृगालः, पृ.सं.–41
39. कथासप्ततिः – नीलवर्णः शृगालः, पृ.सं.–41
40. लोकभाषा सुश्रीः – साक्षात्कारः, पृ.सं.–5–6
41. कथासप्ततिः – चौरः, पृ.सं.–2
42. कथासप्ततिः – गुरुः, पृ.सं.–18
43. कथासप्ततिः – स्वाधीनतादिवसः, पृ.सं.–29
44. उवाच कण्डुकल्याणः – केलिकदम्बस्य इस्पातशिलपम्, पृ.सं.–6
45. उवाच कण्डुकल्याणः – केलिकदम्बस्य इस्पातशिलपम्, पृ.सं.–8
46. उवाच कण्डुकल्याणः – तृतीयनयनम्, पृ.सं.–25
47. उवाच कण्डुकल्याणः – तृतीयनयनम्, पृ.सं.–25
48. उवाच कण्डुकल्याणः – तृतीयनयनम्, पृ.सं.–26
49. उवाच कण्डुकल्याणः – तृतीयनयनम्, पृ.सं.–27
50. उवाच कण्डुकल्याणः – पशुपालननीतिः, पृ.सं.–79
51. उवाच कण्डुकल्याणः – पशुपालननीतिः, पृ.सं.–80
52. उवाच कण्डुकल्याणः – पशुपालननीतिः, पृ.सं.–80
53. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रतियोगिता, पृ.सं.–70–71
54. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रतियोगिता, पृ.सं.–71
55. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रतियोगिता, पृ.सं.–71
56. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रतियोगिता, पृ.सं.–71

57. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रतियोगिता, पृ.सं.–71

58. उवाच कण्डुकल्याणः – प्रौढ़शिक्षाकेन्द्रम्, पृ.सं.–40

59. कथासप्ततिः – दरिद्रचिकित्साकेन्द्रम्, पृ.सं.–27

60. कथासप्ततिः – दरिद्रचिकित्साकेन्द्रम्, पृ.सं.–27

61. कथासप्ततिः – दरिद्रचिकित्साकेन्द्रम्, पृ.सं.–27

62. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–34–35

63. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–139

64. कथासप्ततिः – असम्भवः, पृ.सं.–33

65. लोककल्याण सुश्रीः – स्वर्गादपि गरयसी, पृ.सं.–7

66. लोकभाषा सुश्रीः – आदिभाषाप्रसंगे, पृ.सं.–14

67. गर्त्तः – श्रेष्ठजीवः, पृ.सं.–41

68. गर्त्तः – पुत्तलिका, पृ.सं.–6

69. गर्त्तः – प्रलयस्य स्वरः, पृ.सं.–9

70. गर्त्तः – सभ्यता, पृ.सं.–48

71. उवाच कण्डुकल्याणः – अहो राजधानी, पृ.सं.–17

72. उवाच कण्डुकल्याणः – अहो राजधानी, पृ.सं.–17

73. उवाच कण्डुकल्याणः – अहो राजधानी, पृ.सं.–18

74. उवाच कण्डुकल्याणः – अहो राजधानी, पृ.सं.–18

75. उवाच कण्डुकल्याणः –अधिवेशनम्, पृ.सं.–49–51

76. उवाच कण्डुकल्याणः –अधिवेशनम्, पृ.सं.–51

पंचम अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध

उद्योगप्रदाने असमर्था विद्या

निष्फला अनादृता जगति

न काऽपि पठति अथ स्पृहयति

अतः यया सुगमायते धनागमः

समुपलभ्यते अखण्डितः अधिकारः

सा एव विद्यापदवाच्या।

पंचम अध्याय

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध

मनुष्य का संपूर्ण व्यावहारिक जीवन अर्थ पर ही आश्रित है क्योंकि जीवन निर्वाह में अर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान युग अर्थप्रधान युग है। अर्थ के समक्ष अन्य सभी मूल्य गौण प्रतीत होते हैं। अर्थ के बल पर मनुष्य सभी सुख के साधन प्राप्त कर सकता है। प्राचीन काल में भी पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत अर्थ की गणना की जाती थी।

धन–धान्य, वस्त्र, सम्पत्ति, भूमि, गृह, पशु, कृषि का संपूर्ण सामान अर्थ की श्रेणी में आता है। हिन्दु संस्कृति के अनुसार मनुष्य जब ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है तो उसे सुखमय बनाने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। पुरुषार्थ चतुष्टय में परिगणित अन्य तीनों तत्त्व (धर्म, काम तथा मोक्ष) इसी अर्थ पर ही आश्रित हैं। कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र के अनुसार 'मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः अर्थात् जो भी विचार और क्रियाएँ भौतिक जीवन से संबंधित हैं, उन्हें अर्थ की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य अपनी कामनाओं की पूर्ति अर्थ के माध्यम से करता है अतः अर्थ ही मानव की सुख–सुविधाओं का मूल है। अर्थ के अभाव में ज्ञान तथा शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

प्रेम तथा सहानुभूति के स्थान पर पाश्विक प्रवृत्तियाँ मनुष्य में प्रबल हो उठी हैं। स्वार्थ के वशीभूत वह परस्पर शोषण करने में लगा हुआ है तथा वर्ग–संघर्ष की बुनियाद भी अर्थ ही है। व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरुदण्ड अर्थ ही है।

डॉ. नायक ने अपने अर्थाधारित काव्य दारिद्र्यशतकम् में अर्थ की प्रधानता का चित्रण इस प्रकार किया है–

"जीवन्नपि मृतः
प्रश्वसन्नपि जड़ः
स्थितेष्वपि मानवाङ्गप्रत्यङ्गेषु
मनुष्योचिताचरणविचरणेषु
असौ न मनुष्यः।
तेन परिचयेन नायं परिचितः

नापि मनुष्यगणनासमयेऽस्य

गणना भवति।

दरिद्रस्य केवलम्

एक एव परिचयो

दरिद्र इति।

यस्य सर्वे गुणा व्यर्थाः,

यस्य समग्रं जीवनं व्यर्थम्,

यस्य समस्तोऽनुभवोऽययार्थः

स दरिद्रः।

अथ च, इह जगति

दरिद्रो भूमिशून्यः।

स्वकीयपादसंस्थापनाय

यस्य कुत्रापि अधिकारो नास्ति,

मस्तकमाच्छादयितुं कुत्रापि गृहच्छदिर्नास्ति,

यस्य सर्वं किमपि दारिद्र्ये निहितं,

स दरिद्रः,

सृष्टि संरचनायां कश्चन मूल्यहीनः प्रसङ्गः।[1]

प्रस्तुत अध्याय में हम कविवर नायक जी के आर्थिक मानवीय मूल्यबोध पर दृष्टिपात करेंगे।

(क) कृषि प्रधानता

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। भारत देश में कृषि सिंधु घाटी सभ्यता के समय से की जाती रही है। संसार में जब अधिकांश मनुष्य सभ्यताहीन थे, उस समय भी भारतीय कृषिकार्य में निपुण थे। भारत की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है अतः हमारा देश कृषि प्रधान देश है। चीन के बाद भारत ही वह दूसरा देश है, जहाँ इतनी बड़ी संख्या में लोग कृषि कार्य में लगे हुए हैं। गैर कृषि क्षेत्र के लिए बड़ी मात्रा में उपभोक्ता वस्तुएँ तथा सूती वस्त्र, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, कागज उद्योग, वनस्पति उद्योग तथा घी जैसे बड़े उद्योगों को कच्चामाल भी कृषि से ही प्राप्त होता है। भारत के करोड़ों पशुओं का भोजन भी कृषिजन्य पदार्थों से प्राप्त होता है। भारत में कृषि मानसूनी जलवायु, सिंचाई मिट्टी, स्थलाकृति तथा वर्षा पर निर्भर है। डॉ. नायक ने अपनी रचना गर्तः में कृषक का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

"मेघस्य गर्ज्जनेन सह प्रवहति पवनः
निशामुखायते आषाढस्य प्रथमदिवसः
चतुर्दिक्षु प्रलयस्य आगमनध्वनिः
अथ च
कृषिक्षेत्रे कर्मरतः कृषकः
प्रकृतेः आदिमसन्तानः।
कृषिक्षेत्रं विना अन्यत् किमपि
कृषकः नैव जानाति
नैव पश्यति स्वकीय सुखस्य निलयं
कृषिक्षेत्र मेव तस्य मुक्तितीर्थं
कर्मणः गोलोकपुरं
कृषिरेव कृषकस्य तपस्यार्जितं फलं
यत्रैव निहितं भवति तस्य मङ्गलाभिधानम्।
विश्वप्राणस्य प्रतीकः कृषकः हलधररूपः
नितराम् अभावस्य कादम्बरीं पीत्वा
विभवस्य प्राचुर्यं वितरति अकुण्ठचित्तेन
तत्रैव तस्य आनन्दः तस्य जन्मनः साफल्यम्।।"[2]

मेघ के गर्जन के साथ पवन बह रही है। आषाढ़ माह का प्रथम दिन समाप्त हो रहा है। चारों दिशाओं में प्रलय के आगमन की ध्वनि सुनाई दे रही है फिर भी कृषिक्षेत्र में कार्यरत कृषक प्रकृति की आदिम सन्तान है। कृषिक्षेत्र के बिना वह अन्य कुछ भी नहीं जानता है। स्वयं के सुख को वह कभी नहीं देखता है। कृषि क्षेत्र ही उसका मुक्तितीर्थ है। कृषि ही कृषक के लिए तपस्या से अर्जित फल है, उसी में उसका कल्याण निहित है। कृषक का हलधर रूप विश्वप्राण का प्रतीक है। वह निरंतर अभाव की कादम्बरी को पीकर अकुण्ठित चित्त (उदार ह्रदय) से प्राचुर्य वैभव का वितरण करता है। वहीं उसका आनंद है तथा उसके जन्म की सफलता भी उसी में है। कृषक की उदारता तथा कर्मठता का ऐसा ही चित्र निम्न पंक्तियों में भी प्रकट होता है–

सूर्यस्तपतु मेघाः वा वर्षन्तु विपुलं जलम्।
कृषिका कृषिको नित्यं शीतकालेऽपि कर्मठौ।।
ग्रीष्मे शरीरं सस्वेदं शीते कम्पमयं सदा।

हलेन च कुदालेन तौ तु क्षेत्राणि कर्षतः।।
पादयोर्न पदत्राणे शरीरे वसनानि नो।
निर्धनं जीवनं कष्टं सुखं दूरे हि तिष्ठति।।
गृहं जीर्णं न वर्षासु वृष्टिं वारयितुं क्षमं।
तथापि कर्मवीरत्वं कृषिकाणां न नश्यति।।
तयोः श्रमेण क्षेत्राणि सस्यपूर्णानि सर्वदा।
धरित्री सरसा जाता या शुष्का कष्टकावृता।।
शाकमन्नं फलं दुग्धं दत्त्वा सर्वेभ्य एव तौ।
क्षुधा–तृषाकुलौ नित्यं विचित्रौ जनपालकौ।।[3]

वास्तव में कृषक त्याग तथा तपस्या का दूसरा नाम है। चिलचिलाती धूप, मूसलाधार बारिश तथा कड़ाके की ठण्ड भी उसकी साधना को तोड़ नहीं पाते हैं। वह निरंतर अपनी कर्मभूमि में लगा रहता है तथा किसी भी प्रकार की बाधा उसे अपने कर्त्तव्यों से डिगा नहीं सकती है। अभाव में अपना जीवन व्यतीत करता हुआ भी वह संतोषी प्रवृत्ति का होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कृषक आधुनिक विष्णु है, जो अन्न, फल, सब्जी तथा दूध प्रदान कर हम सभी का पालन–पोषण करता है। कृषक का जीवन ऋषि–मुनियों तथा सन्त–महात्माओं के समान उच्च आदर्शों वाला है। उसका जीवन तो करुणा का महासागर है क्योंकि परोपकारी तथा परिश्रमी होने के बावजूद भी कृषक तथा उसके परिवार की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूर्ण नहीं हो पाती हैं। कृषि तथा कृषक के विषय में अपने काव्यसंग्रह में डॉ. नायक कहते हैं कि–

सन्निकटे कृषिक्षेत्रे
क्षेत्रं कर्षति हलधरः कृषकतनयः
पितृपुरुषेभ्यः लब्धं क्षेत्रमिदं
तस्य जीवनाय हेतुरूपम्।
मध्याह्नस्य सूर्यस्य प्रचण्डतापेन
सन्तापितो हलधरो नानुभवति क्लेशम्
असौ भूमिपुत्रः
अखिलः संसारो
नितरामपेक्ष्यते तस्य हस्तम्।

कर्षणनिमग्नस्य तस्य कर्मणि

बाधां सृजति पत्नी

मुग्धकटाक्षपातेन हरति श्रमखेदम्।

सहर्षो हलधरो वृक्षमूलपुष्करिण्याः

जलं पाययति बलीवर्दयुग्लम्।

स्वयमुपविश्य खादति

अन्नं पर्य्युषितं, दग्धं शुष्कमत्स्यं

रक्तमरीचं पलाण्डुं च।

लज्जावनतायाः पत्न्याः क्रोडदेशे

क्षणं विश्राम्यति हलधरः,

छिन्नमलिनवस्त्रांचलेन

च्छादयति मुखम्।

वसनगन्धेन पुलकितो हलधरः

अनुभवति कामपि नवीनताम्,

इह संसारे तस्य दुःखं नास्ति,

क्लेशो नास्ति,

नास्ति पुनः दारिद्यम्।

सकलविभावान्वितो हलधरः

परिवर्तयति आत्मानं सृष्टिधरत्वेन।

अखिलं ब्रह्माण्डं तदीयम्,

सोऽपि अखिलब्रह्माण्डस्य।[4]

कृषक पुत्र हलधर को यह कृषि क्षेत्र अपने पूर्वजों से विरासत में मिला है, जो उसके जीवन का हेतु स्वरूप है। दोपहर में सूर्य की प्रचण्ड किरणों से सन्तप्त होकर भी वह भूमिपुत्र कष्ट का अनुभव नहीं करता है। परिश्रम से उत्पन्न कष्ट को कृषक पत्नी दूर करती है। सर्वप्रथम

वह अपने बैलों के लिए भोजन की व्यवस्था करता है, जो कृषि कार्य में सदैव उसके सहयोगी होते हैं तत्पश्चात् स्वयं भोजन करता है। इस संसार में कृषक को कोई दुःख अथवा क्लेश नहीं है। वह स्वयं को सृष्टिधर के रूप में परिवर्तित करता है तथा सदैव अपने कर्म में रत रहता है। वह संपूर्ण ब्रह्माण्ड को स्वयं का मानकर उसके पालन–पोषण में रत रहता है।

अधिकांश रूप से हमारे देश की जनता गाँवों में निवास करती है। अतः कृषिकर्म ही यहाँ के लोगों का जीवनाधार है। परंपरागत कृषि, वर्षा का अनियमित तथा असमान वितरण, शिक्षा का अभाव, तकनीक की कमी, ऋणग्रस्तता तथा आर्थिक पिछड़ापन आदि कारण कृषि को प्रमुखतया प्रभावित करते हैं। इसी सन्दर्भ में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है–

दिवङ्गते पितरि बहुकष्टेन अग्रजः नवघनः अनुजं श्यामसुन्दरं पालितवान्। अवशिष्टं कृषिक्षेत्रं विक्रीय परगृहे श्रमं च कृत्वा तं विद्यालये महाविद्यालये च पाठितवान्।[5]

संसार का अन्नदाता कहे जाने वाले भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति सदैव ही दयनीय बनी रहती है। वह अपने पारिवारिक दायित्वों को भी पूर्ण नहीं कर पाता है। ऋणग्रस्त होकर सदैव वह ज़मीदारों तथा सेठ–साहूकारों के शोषण का पात्र बन जाता है। वह अपने पैतृक कर्म कृषि को ही अपनी आजीविका का साधन बनाता है उस छोटे से भूखण्ड को विक्रय कर वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

विश्व में चीन के बाद भारत ही वह दूसरा देश है जहाँ देश की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही आश्रित है। भारत गाँवों का देश है तथा ग्रामवासी अर्थोपार्जन के लिए कृषि तथा कृषि आधारित कार्यों पर ही निर्भर हैं। इसी तथ्य को **'ग्रामस्य पुत्रः'** नामक कथा में इस प्रकार चित्रित किया गया है–

आधुनिकतसभ्यता तत्र नैव प्राप्ता। नैवापि मार्गः गमनोपयोगी। न कश्चन तत्र शिक्षितः। अथ च ग्रामे तस्मिन् सरलहृदयाः जनाः निवसन्ति। एकस्य दुःखे समभागी भवति अन्यः। ग्राम्यजीवने परिपालितानि पर्वाणि सुखं जनयन्ति। कृषिः ग्रामस्य प्रमुखा जीविका।[6]

भारत देश की आत्मा गाँव में ही निवास करती है, जहाँ के लोग सरल हृदय वाले होते हैं। एक–दूसरे के सुख–दुःख में समान रूप से भाग लेते हैं। पर्व, परम्पराओं, प्रथाओं तथा त्योहारों को आज भी परंपरागत तरीके से मनाते हैं। गाँव के भोले–भाले लोग आधुनिक सभ्यता की अंधी दौड़ में भाग नहीं लेते। चूँकि गाँव में शिक्षा का अभाव देखा जाता है अतः वहाँ मूल रूप से कृषि ही आजीविका का साधन होती है। किन्तु केवल कृषि कर्म से जीवनयापन सुलभ नहीं हो पाता।

यही कारण है कि भारत का किसान सदैव अभावों में ही जीवन व्यतीत करता है। सुख–सुविधाओं की तो बात ही क्या आवश्यकता के साधन भी नहीं जुटा पाता।

प्रतिवेशिनः मनुष्यवत् जीवन्ति। वयं तु तथा साधारणजीवरूपेणजीवामः। नास्माकं गृहे तादृशाः पदार्थाः सन्ति स्वाभिजात्यपरिचयार्थमिति सर्वदा वदति पुत्रः। अथ च कृषिजीवी पिता नैव कर्णपातं करोति पुत्रस्य वचने।[7]

हमारे देश में कृषि आज भी परंपरागत तरीके से होती है। अतः यहाँ कृषि व्यवसाय न होकर जीवनयापन की एक प्रणाली है। कृषि में पिछड़ेपन के कारण ही कृषक तथा उसका परिवार सदैव विपत्तिग्रस्त रहता है तथा देश का उज्ज्वल भविष्य और उसकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है।

(ख) पुरुषार्थ की सिद्धि

पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थः इस व्युत्पत्ति के अनुसार मनुष्य जिस फल की इच्छा करे वह पुरुषार्थ है अर्थात् मनुष्य का लक्ष्य अथवा उद्देश्य ही पुरुषार्थ कहा गया है। पुरुषार्थ का संबंध उद्यम तथा कर्म प्रधानता से है।

जैसा कि शास्त्रों के द्वारा भी कहा गया है–

"धर्मार्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थं चतुर्विधम्।"

हिन्दु दर्शन में चार प्रकार के पुरुषार्थ माने गए हैं– धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। इन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा दी जाती है। इनमें से प्रथम तीन को साधन माना जाता है तथा यह (धर्म, अर्थ और काम) त्रिवर्ग की श्रेणी में आते हैं मोक्ष अंतिम पुरुषार्थ है, अतः इसे साध्य कहा गया है क्योंकि यह जीवन का लक्ष्य है। भारतीय संस्कृति पुरुषार्थ चतुष्ट्य के सिद्धान्त से जुड़ी हुई है। क्रमशः चारों पुरुषार्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

धर्म

धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है धारण करना। चारों पुरुषार्थों में धर्म का स्थान सर्वप्रमुख है। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से की गई– ''धारयति इति धर्मः'। अर्थात् जो धारण करने योग्य है उसे धर्म कहते हैं। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[8]

धैर्य, क्षमा, दम (मन का संयम), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर तथा बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को सदैव धर्माचरण में लगाना, धी (कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक), विद्या (आत्मज्ञान), सत्य तथा अक्रोध (क्रोध नहीं करना)। ये दस धर्म के लक्षण कहे गए हैं।

अर्थ

कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र के अनुसार 'मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः' अर्थात् जो भी विचार और क्रियाएँ भौतिक जीवन से संबंधित हैं, उन्हें अर्थ कहा जाता है। उद्योग, व्यापार, कृषि, धार्मिक कृत्य, पारिवारिक तथा सामाजिक कार्य तथा आर्थिक साधनों की प्राप्ति आदि सभी कार्य अर्थाश्रित हैं। जीवन की प्रगति का आधार धन ही है, जिसके बिना संसार का कार्य नहीं चल सकता।

ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त करने के पश्चात् जब मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तो अपनी भौतिक आवश्यकताओं (सुख–सुविधाओं) की पूर्ति अर्थ के माध्यम से ही करता है। पारिवारिक तथा धार्मिक कार्यों को अर्थ के द्वारा ही परिपूर्ण किया जाता है। अर्थ प्राप्ति का साधन आजीविका होती है अतः धर्म के अनुकूल आचरण करता हुआ व्यक्ति धन का अर्जन करता है तथा समाज कल्याण की भावना से उसका उपयोग करता है। अर्थ साध्य न होकर साधन है। धर्म तथा काम पुरुषार्थ की सिद्धि भी अर्थ के ही अधीन है।

काम

पुरुषार्थों में 'काम' तृतीय पुरुषार्थ है। शारीरिक संतुष्टि तथा समाज की निरंतरता के लिए काम को पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। 'कम्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय का संयोग होने पर 'काम' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। 'काम्यते इति कामः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इन्द्रियों का जब विषयों से संयोग होता है तदुपरान्त उत्पन्न मानसिक आनंद को 'काम कहा जाता है।

काम शब्द का अर्थ कामना, इच्छा, वासना, तृष्णा तथा सुख के साधन आदि को माना गया है महर्षि शुक्राचार्य का कथन है– काम क्रोधो मद्यतमौ प्रयोक्तव्यौ यथोचितम् अर्थात् काम और क्रोध प्रबल मद्य अथवा रसपान हैं, इनका सेवन उचित मात्रा में करना चाहिए। काम व्यक्ति के मन में विभिन्न कामनाओं को उत्पन्न करता है, जिनसे प्रेरित होकर मनुष्य धर्म, अर्थ तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए कार्य करने में प्रवृत्त होता है।

संसार की प्रथम एवं प्रमुख प्रवृत्ति ही 'काम' है, जिसका संकुचित अर्थ है इन्द्रिय सुख अथवा वासना और व्यापक अर्थ में इस शब्द को मनुष्य की सहज इच्छाओं तथा प्रवृत्तियों के रूप में जाना जाता है। काम शारीरिक तथा मानसिक स्तर पर जीवन के आनन्द की अभिव्यक्ति है। काम का उदय मन में होता है अतः इसे 'मनसिज' भी कहा जाता है। काम भावना के कारण ही

पति–पत्नी में पारस्परिक प्रेम पनपता है फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति होती है तथा मनुष्य पितृऋण से मुक्त होता है। इच्छाओं के पूर्ण होने पर वह विरक्त हो मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है।

असंयमित 'काम' व्यभिचार की कोटि में आता है काम के निरंकुश आचरण से व्यक्ति के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तथा वह पतन के गर्त में चला जाता है। अतः धर्मसंगत काम का आचरण ही श्रेयस्कर माना गया है।

मोक्ष

चारों पुरुषार्थों में मोक्ष चतुर्थ पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ तथा काम साधन हैं, जबकि मोक्ष साध्य है। तीनों पुरुषार्थों का उचित निर्वाह करने पर ही व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। 'मोक्ष' शब्द का अभिप्राय है जीवन–मरण के चक्र तथा सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों से मुक्ति। पूर्व के तीन पुरुषार्थ लौकिक दायित्व से संबंधित हैं तथा मोक्ष का अर्थ लौकिक सुखों से मुक्त होकर वास्तविक सुख को प्राप्त करना है। मोक्ष को, मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य, ब्रह्म प्राप्ति तथा अपवर्ग भी कहा जाता है तथा इसे अन्य सभी पुरुषार्थों में श्रेष्ठ माना जाता है।

'मुच्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगने पर 'मोक्ष' शब्द निष्पन्न होता है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– 'मुच्यते सर्वदुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः' अर्थात् सभी प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक) दुःखों से आत्यान्तिक मुक्ति ही 'मोक्ष' है। मोक्ष पाकर व्यक्ति सभी प्रकार की इच्छाओं, बंधनों, सुख–दुःख, प्रेमभाव तथा ईर्ष्या आदि से मुक्त हो जाता है। मोक्ष आत्मोन्नति करने वाला आध्यात्मिक लक्ष्य है।

संसार के सभी प्राणी दुःख दूर करने में तथा सुख प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और सुख भी ऐसा जिसका कभी नाश न हो अर्थात् शाश्वत सुख। इन्द्रिय तथा मन को संयमित कर अनित्य तथा संसार के प्रति वैराग्य का भाव अपनाकर ज्ञान, भक्ति एवं कर्म से मोक्ष प्राप्त करने के प्रबल उत्कण्ठा वाला जीव जब आत्मसाक्षात्कार कर लेता है तो वह स्थिति मोक्ष कहलाती है। पूर्व ऋषि मुनियों ने विशेष मननपूर्वक इन चार पुरुषार्थों का गठन किया था। किसी भी मनुष्य में जितनी भी मनोभावनाएँ हो सकती है, उन्हें इन्हीं चार विभागों में बाँटा जा सकता है। इन्हीं चार तत्त्वों के यथोचित समन्वय से जीवन को पूर्ण सफल बनाया जा सकता है।

नवजातपुत्रस्य गण्डस्थले
तिलं चिह्नं दृष्ट्वा वदति माता–
चिह्नमिदं राजचक्रवर्तिनः लक्षणाय
मातुः वचने उत्तेजितो भवति पिता

तन्मते तु–चिह्नमिदं वैज्ञानिकलक्षणाय।

अनयोः आलापसमये

कश्चन आह्वयति

उभौ पश्यतः

द्वारदेशे दण्डायमानस्य

भिक्षुकस्य गण्डस्थलेऽपि

तादृशं चिह्नमस्ति।[9]

नवजात पुत्र के गण्डस्थल पर तिल देखकर माता ने इसे चक्रवर्ती राजा का लक्षण बताया। माता के वचन सुनकर उत्तेजित पिता ने इस चिह्न को वैज्ञानिक बनने का लक्षण बताया। जब वे दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे थे उसी समय द्वार पर एक भिक्षुक आया, जिसके गण्डस्थल पर भी वैसा ही चिह्न था।

लक्षण विशेष के आधार पर सफलता निर्भर नहीं करती है अतः प्रयोजन की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ करना होता है कहा भी जाता है–

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।[10]

जिस प्रकार सोए हुए सिंह के मुख में पशु स्वयं प्रवेश नहीं करते उसके लिए उसे परिश्रम करना पड़ता है, उसी प्रकार उद्यम से ही कार्य सिद्ध होते हैं मन में बड़ी–बड़ी इच्छाएँ करने से नहीं।

अत्यधिक, लाभ कमाने की बुद्धि रखने वाले व्यवसायी खाद्य पदार्थों में मिलावट कर देते हैं, जिससे न सिर्फ नवीन रोगों का जन्म होता है एवं अकाल मृत्यु होती है अपितु संपूर्ण पृथ्वी प्रदूषित तथा अपमिश्रित हो जाती है।

खाद्ये अखाद्यस्य

पानीये दूषितजलस्य

अपमिश्रणं प्रचलति

व्यवसायिनः लाभात्मिका वुद्धिः

अग्रे सारयति अपमिश्रणम्।

कस्यचित् खेदः नास्ति तदर्थं

कस्य वा विचारः न तिष्ठति

अखाद्यभक्षणेन
अपापविद्धशिशूनां मरणेन
नूतनरोगप्रादुर्भावेण।
वयं तथैव पश्यामः
अपमिश्रितं पदार्थं सगर्वम्
उत्कृष्ट खाद्यत्वेन प्रमाणीकुर्मः
तस्य भक्षणाय उपदिशामः।
अस्माकम् अपमिश्रिता वुद्धिः
अत्र कारणम् अत्र रहस्यम्
यया एव समग्रा धरणी
प्रदूषिता अथ अपमिश्रिता।।[11]

हमारी बुद्धि भी अपमिश्रित हो गई है इस कारण से हम गर्व के साथ अपमिश्रित पदार्थ को उत्कृष्टखाद्य के रूप में प्रमाणित करते है तथा उसके भक्षण का उपदेश देते हैं। संपूर्ण विश्व 'अर्थ' के पीछे दौड़ रहा है। साधारण मनुष्य ही नहीं अपितु बड़े से बड़े धार्मिक संत तथा जनता के सेवक भी अर्थ के दास दिखाई देते हैं।

प्राचुर्य वैभवपूर्ण सदन में रहने वाला तथा निरंतर सेवकों से सेवित गृहस्वामी भी दरिद्र हो सकता है और अर्द्धभग्न गृह में निवास करता हुआ तथा उपवास में स्थित व्यक्ति भी प्रसन्न रह सकता है–

प्राचुर्यपूर्णं गृहं
सेवकानाम् अवारिता सेवा
अथ च गृहस्वामी
आत्मानं निःस्वः इति चिन्तयति
अपरस्य सुखेन कातरः असौ
इर्ष्यातुरः भवति।
गृहस्वामिनः प्रतिवेशी कश्चित्
अर्द्धभग्नगृहे निवसति
कदा खादति कदा वा उपवासेन तिष्ठति
अथ च तस्य मुखे परिव्याप्ता प्रसन्नता
सः हसति, भगवते कृतज्ञतां प्रददाति।

धनिदरिद्रयोः कारणमेव मनः
मनसा यः धनी सः तु धनी
यो वा दरिद्रः सः दरिद्रः।।[12]

प्रसन्नता अथवा विषाद का कारण अर्थ नहीं होता बल्कि मन होता है। जो व्यक्ति मन से धनी है वही वास्तविक रूप से धनी है और जो मन से दरिद्र है वह ऐश्वर्यशाली होते हुए भी दीन–हीन है। वर्तमान समय में सभी व्यक्ति अधिकाधिक धनार्जन की चेष्टा करते हैं जबकि वास्तविक सुख और संतोष व्यक्ति के स्वयं के मन पर ही निर्भर करता है।

अधुना गृहस्य मध्यभागे
सुविशालं प्राचीरं शोभते
न कश्चन कमपि अपेक्षते
न कस्यापि रोगेण
क्षुर्णः भवति अन्यः सहोदरः भ्राता।
एकस्याः क्रोडे नैव शेरते
वात्सल्यममताकाङ्क्षिणः शिशवः
नैकत्र भोजनं वा शयनं
प्रचलति पूर्ववत्।[13]

वर्तमान में दायभाग प्रमुख प्रसंग है। अखण्डधरा के ऊपर काल्पनिक विभाजन रेखा खींच दी गई है। एक भ्राता दूसरे भ्राता का घातक बन गया है। घर के मध्यभाग में विशाल प्राचीर सुशोभित हो रही है। अपने सहोदर भ्राता के कष्ट अथवा रोग को देखकर अन्य भ्राता कष्ट का अनुभव नहीं कर रहा है। वात्सल्य तथा ममता के आकांक्षी शिशु पूर्ववत् एकसाथ भोजन अथवा शयन नहीं कर रहे हैं। निःसहाय माता यह दारूण दृश्य केवल देख रही है क्योंकि उसके अनुरोध को कोई भी स्वीकार नहीं कर रहा है।

सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में अर्थ को साधन माना गया है। मानव के सभी कार्य अर्थमूलक हैं किन्तु धन की प्राप्ति धर्मानुकूल आचरण के माध्यम से ही होनी चाहिए। भोगों में लिप्त हुए बिना ही मनुष्य अपने करणीय कार्यों को पूर्ण करे तभी वह मोक्ष का अधिकारी बन सकता है।

यह संसार मायाग्रस्त है। मेरे द्वारा अर्जित धनराशि तथा विपुल सम्पत्ति वैसे ही स्थित रहेगी। कुटिल उपाय से प्राप्त भ्रातृभाग मुझ पर हँसेगा। जीवन के समाप्त होने पर मेरे कार्य तथा

अपकार्य आलोचना के चक्र में कुछ समय तक स्थान प्राप्त करेंगे। कविवर नायक कहते हैं कि हे मृत्यु! सत्यसन्ध! प्रियतम! तुम्हरा सुमधुर स्पर्श कब होगा।

मृत्यो हे!
सत्यसन्ध! प्रियतम! मम
कदा भविता ते सुमधुरः स्पर्शः
जराव्याधिप्रपीडिते शरीरे मदीये
कदा मनः भविष्यति संलग्नं
ध्यानमग्नं प्रबुद्धम् अचलं वा त्वयि
मृत्युमयं चिदानन्दमयम्
शास्त्राणि अधीत्यापि यदस्ति चंचलम्
उपदेशं प्राप्यापि गुरुणां
यद् धावति अहरहः तव भीत्या
भीतः भूत्वा अमरत्वप्राप्तै।
आश्वासय मृत्यो!
कदा भविता ते सुमधुरः स्पर्शः
जराव्याधिप्रपीडिते शरीरे मदीये
कदा समाप्तिमेष्यति अत्र लोभमोहप्रवृत्तीनाम्
उद्दण्डताण्डवः 'तव–मम' घृणितः विभेदः।[14]

शास्त्रों को पढ़कर भी जो चंचल बना रहता है। गुरुजनों के उपदेश प्राप्त करके भी जो भयभीत होकर अमरत्व प्राप्ति के लिए दौड़ता रहता है, ऐसा मेरा मन कब अचल, प्रबुद्ध तथा ध्यानमग्न होगा। हे मृत्यु! कब तुम्हारा मधुर स्पर्श जरा तथा व्याधि से पीड़ित मेरे शरीर के साथ होगा। 'तव–मम' का घृणित भेद तथा लोभ–मोह आदि प्रवृत्तियाँ कब समाप्त होंगी।

संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान हो जाने पर कवि मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रयास करने की बात कर रहे हैं क्योंकि मृत्यु ही अन्तिम सत्य है हम जीवन भर अर्थ के पीछे भागते रहते है। काम, क्रोध, लोभ, मद तथा मोह से आविष्ट रहते हैं। 'यह तेरा है– यह मेरा है।' सदैव इस प्रकार के भाव रखते हैं।

तव राज्यं शान्तिमयं प्रेममयं
दिव्यगन्धानुलेपितं कविलक्ष्यपथम्
तत्र अस्ति मम जन्मसफलता

कर्मणः समीक्षा

जीवनस्य महनीया वार्त्ता

तव हस्तविलिखिते देदीपिते ग्रन्थे।

कदा पठिष्यामि मम जीवनस्य वेदं

समासीनः चरणसन्निधौ तव

अनन्तकालाय परमज्ञानार्थम्।

तव दर्शनाय दीर्घसत्रं कृतं मया

जन्मकालात् विभिन्नक्षेत्रेषु

महाकालयज्ञकुण्डे आयुराहुतिदानेन।[15]

हे मृत्यु! तुम्हारा राज्य शान्तिमय तथा प्रेममय है। वहीं मेरे जन्म की सफलता है। तुम्हारे हस्तलिखित ग्रन्थ में मेरे कर्मों की समीक्षा है जीवन की महनीय वार्ता है। मैं अपने जीवन के वेद को कब पढूँगा। परं ज्ञान के लिए तुम्हारे चरणों के समीप कब बैठूंगा। हे मित्र! मैं केवल तुम्हारा हूँ।

न कदापि राष्ट्रकोशो लुण्ठितः

मिथ्याप्रतिश्रुतिभिः देशो नाश्वासितः

शेयार्मार्केट्–उत्थानपतनाभ्यां न व्यथितः

असौ दरिद्रः।

दरिद्र आत्मस्थो जीवन्मुक्तोनिस्पृहः

देह धारणाय सर्वः प्रयासः

''मूढ! जहिहि धनागमतृष्णाम्''

सिद्धान्तेन सिद्धान्तितः

असौ दरिद्रः।[16]

बड़े–बड़े सन्त जिस स्थिति को प्राप्त करने के लिए वर्षों तपस्या करते हैं, ऐसे स्थान को दरिद्रजन स्वतः ही प्राप्त कर लेता है। दरिद्र आत्मस्थ, जीवन मुक्त तथा निस्पृह है। उसका संपूर्ण प्रयास केवल देह को धारण करने के लिए ही होता है। धनागमतृष्णा का वह परित्याग कर देता है। उत्थान–पतन से वह व्यथित नहीं होता है। अधीरता, उन्माद, आशंका, तिरस्कार, हीनभावना तथा अभिमान जैसे भाव दरिद्र व्यक्ति का स्पर्श भी नहीं कर पाते हैं क्योंकि वह सभी परिस्थितियों में समानता का भाव रखता है।

संन्यासी की कामभावना को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहते हैं–

शुभ्रज्योत्स्ना पुलकिता प्रगल्भा रजनी
सुधास्नाता प्रतिक्षणं करुणादायिनी
को वा द्वारदेशे, भिक्षार्थी संन्यासी
संयाचते मन्दं मन्दं किमु उपवासी।
नवविवाहिता सुश्रीः दरिद्रगृहिणी
अन्नपात्रकरा यदा समुपैति द्वारम्।
हासं हासं मधुरया गिरा विवदति यतिः
भिक्षां नहि, कामये त्वामेव, देहि सकृत् प्रीतिम्।[17]

द्वार पर रात्रिकाल में कोई संन्यासी भिक्षा की याचना कर रहा था। जब नवविवाहिता दरिद्रगृहिणी हाथ में अन्न का पात्र लेकर द्वार पर पहुँची तो यति ने कहा भिक्षा नहीं मैं तो तुम्हारी कामना करता हूँ मुझे प्रेम दो। मैं कामभावना से दग्ध हूँ। मुझ कामवारि से सिंचन करो। यह दरिद्र कुटीर तुम्हारा स्थान नहीं है। मेरे आश्रम में चलो मैं तुम्हारी दासता करुँगा।

गृहस्थ जीवन के विविध आनंद की अनुभूति के लिए काम पुरुषार्थ के महत्त्व को स्वीकार किया गया है परन्तु स्त्री–पुरुष का यह कार्य तभी धर्म के अनुकूल माना जाएगा। जब वह मर्यादा के भीतर हो। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। असंयमित तथा मर्यादाहीन काम चरित्र पतन का कारण बनता है तथा बुद्धि का नाश करता है।

भौतिक सुख–सुविधाओं तथा गृहस्थ आश्रम के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। अर्थ के अभाव में जीवनयापन असंभव हो जाता है।

कन्यायाः विवाहः नैव जातः। पुत्रः अद्यापि उद्योगं विना भ्रमति इतस्ततः। कदाचिदपि पत्नी सुस्था न भवति। दारिद्रस्य निर्ममप्रहारः परिवाधते प्राणान्। किं वा करणीयम्। को वा अस्ति निराकरणस्य उपायः।[18]

कन्या का विवाह नहीं हुआ। पुत्र आज भी रोज़गार के अभाव में इधर–उधर घूम रहा है तथा पत्नी भी अर्थ के अभाव में स्वास्थ्य लाभ प्राप्त नहीं कर पा रही है। दरिद्रता का निर्मम प्रहार प्राणों को सब ओर से बाधित कर रहा है। क्या करना चाहिए अथवा निराकरण का क्या उपाय है?

अ**परूपा तदा आरभ्य ग्रामतः बहिष्कृता भवति। ग्रामे तस्य प्रवेशः निषिद्धः भवति। न केनापि सह सम्पर्कं स्थापयेत्, न वा कोऽपि एनां पृच्छेत्।**

अपरुपा दारिद्र्याघातेन मरणोन्मुखिनः पितुः औषधिक्रयार्थं यदा श्रेष्ठिनः गृहं गतवती, तदानीं श्रेष्ठिपुत्रेण एतस्याः सर्वम् उपहृतम्।[19]

मरणोन्मुखी पिता की औषधि क्रय करने के लिए जब अपरूपा सेठ के घर गई तो सेठ के पुत्र ने उसका सब कुछ हरण कर लिया और तब से लेकर उसे गांव से बाहर निकाल दिया गया। गाँव में उसका प्रवेश तथा किसी के भी साथ उसका संपर्क वर्जित कर दिया गया। भारतीय संस्कृति में धर्म संवलित काम का आचरण किये जाने पर ही बल दिया गया है। काम का उच्छृंखल आचरण व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए हानिकारक है। सेठ के पुत्र द्वारा किये गए घृणित कार्य से न केवल अपरूपा का जीवन समाप्त हुआ अपितु गाँव में दुष्कर्म की प्रवृत्ति पनपने लगी।

तद्दिने चेतनायाः दुरवस्थां दृष्ट्वा क्रन्दति कविः। वैद्यस्य गृहं धावति औषधार्थम्। परन्तु वैद्यः तं नाङ्गीकरोति। अर्थं विना कथं वा सः औषधं दद्यात्?[20]

अर्थ पर सभी वस्तुएँ निर्भर करती हैं। धनवान संसार में सुखपूर्वक निवास करते हैं और निर्धन मृतक तुल्य होते हैं। धन के अभाव में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है।

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही है। बौद्ध धर्म में इसे 'निर्वाण' तथा जैन धर्म 'कैवल्य' की संज्ञा दी गई है।

ब्रह्मचारिणः कृते माधवः भवति सर्वं किमपि। तस्यैव सेवा करणीया। तस्यैव आराधना कर्त्तव्या। एतदर्थं जन्म भवति संसारे। अनेन मोक्षलाभ सुनिश्चितः।[21]

व्यक्ति का संसार में जन्म मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है। इसके लिए वह प्रभु की सेवा तथा आराधना करता है। मोक्ष अर्थात् पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त कर आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना। सांसारिक विषयों से अपना ध्यान हटाकर मनुष्य ईश्वर–चिन्तन में स्वयं को लगा देता है तथा आध्यात्मिक उन्नति करता है।

अर्थ का अभिप्राय है आशय, प्रयोजन, लक्ष्य, उद्देश्य, विषय तथा वस्तु आदि। वर्तमान युग में सभी यथा कथाञ्चित अर्थ की प्राप्ति करना चाहते हैं। भौतिकवादी समाज में स्वार्थसिद्धि सर्वोपरि बन गई है यथा–

इदानीं भद्रमुखः महाकवेः कर्णसविधे कथयति–पूज्याः! अहं न कामपि कवितां न वा कमपि ग्रन्थं भवतां पठामि। नाऽपि मे साहित्याय आग्रहः विद्यते। आगामिनि मासि भवन्तः राज्यस्य

मुख्यसचिवत्वेन नियुक्ताः भविष्यन्ति। कृपया तदानीम् अस्माकं शिल्पागारस्य कृते स्वतन्त्रं लक्ष्यं प्रदास्यन्ति इत्येतदर्थम् अयं प्रयत्नः। इयं गुणिपूजा।[22]

गुणपूजा संस्था द्वारा राघवेन्द्र को एक लाख रूपये की धनराशि तथा महाकवि की उपाधि से अलंकृत किया गया। जब राघवेन्द्र ने गुणिपूजा संस्था के संपादक से पूछा कि महोदय! आपको मेरी किस कविता ने अत्यधिक आकर्षित किया? यह प्रश्न सुनकर संपादक महोदय निरुत्तर हो गए। कुछ समय पश्चात् वे बोले–पूजनीय! मैंने आपकी कोई भी कविता अथवा ग्रन्थ नहीं पढ़ा है। साहित्य के लिए मेरा आग्रह भी नहीं है। आगामी मास में आप राज्य के मुख्य सचिव के रूप में नियुक्त होंगे उस समय कृपा करके हमारे शिल्पागार के लिए सहायता प्रदान करें उसी के लिए यह प्रयत्न किया गया है।

'संपूर्ण गुण अर्थ में ही समाए हुए हैं।' ऐसा विचार कर मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को त्यागकर स्वार्थ के पीछे भागता रहता है, जिससे जीवन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है।

धन के बिना सांसारिक कृत्य पूर्ण नहीं हो सकते। जीवन की प्रगति का आधार अर्थ ही है। अर्थोपार्जन मनुष्य का पवित्र कार्य है किन्तु रोज़गार न मिल पाना आज के युवाओं की प्रमुख समस्या है साथ ही तदनुरूप वेतन न मिलने से कर्मचारियों में असंतोष पनपता है–

वन्धुगण! भवन्तः अवश्यं जानन्ति एषः सर्वकारः अस्माभिः सह सापत्न्यपुत्रस्य इव व्यवहरति। कियन्तं कष्टं सोढवा भवन्तः विद्यालयेषु छात्रान् पाठयन्ति। किन्तु वेतनदाने भवतां दुर्दशा अवर्णनीया। एतदर्थ संग्रामः करणीयः। सर्वकारस्य यथेच्छाचारस्य प्रतिरोधः येन स्यात्।[23]

स्वभावतः कामनामय मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अर्थ चाहता है। अनेक कष्ट सहकर वह अपने करणीय कर्म करता है तथा संतोषजनक वेतन न मिलने पर संग्राम करने को उद्यत रहता है।

बुद्धिः आगता। मातुः समीपे एकः सुवर्णहारः अस्ति। पिता मरणात् पंचवर्षेभ्यः पूर्वं क्रीतवान्। माता तु अधुना न धारयति। भगिन्याः विवाहकाले व्ययीकरिष्यति। नैतत् सह्यम्।

मातु अनुपस्थितौ एकदा रात्रौ हारः चोरितः। आपणे विक्रीय षट्सहस्ररूप्यकाणि लब्धानि।[24]

अपने क्षणिक लाभ के लिए मनुष्य जब धर्म के मार्ग से विमुख होकर अर्थोपार्जन करता है तो वह स्वयं अपने लिए, अपने परिवार समाज तथा राष्ट्र के लिए कष्टकारी स्थिति उत्पन्न करता है अतः धर्म विहित रीति से धनार्जन करना तथा उसका उपयोग स्वयं के तथा राष्ट्र के उत्थान के लिए करना ही श्रेयस्कर होता है।

भ्रातरः! जीवनस्य लोभस्य धनसंग्रहस्य च किंचित् मूल्यं नास्ति इति खलु अस्मिन् शेषसमये अहमनुभवामि। भवन्तः यथासाध्यं धनसंग्रहं करोतु, परन्तु मरणकाले कः एकामपि मुद्रां नेतुं शक्यते एव नहि। यतोहि धराधनं धरायामेवस्थास्यति। परन्तु धर्मः एव मृतकेन सह गमिष्यति इति खलु अस्माकम् आर्यसिद्धान्तः।[25]

धनसंग्रह का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि मृत्यु के समय कोई भी व्यक्ति एक भी मुद्रा ले जाने में समर्थ नहीं है। केवल धर्म ही मृतक के साथ जाता है। इस आर्य सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए डॉ. नायक कहते हैं।

धर्म इस लोक के साथ–साथ परलोक की उन्नति से भी संबंध रखता है। धर्म व्यक्ति को नियन्त्रित करता है तथा समाज के प्रति उसके कर्त्तव्यों को निष्ठापूर्वक पालन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। धर्म कोई उपासना पद्धति न होकर अनुशासित तथा संयमित जीवन पद्धति है, जो मनुष्य को पशुता से मानवता की ओर प्रेरित करती है। धर्म किसी विशेष प्रकार के धार्मिक विश्वास अथवा संप्रदाय का द्योतक नहीं है, अपितु व्यक्ति के चिंतन, आचरण और व्यवहार की एक आदर्श संहिता है।

केवल धर्म ही ऐसा तत्त्व जो मृत्यु के पश्चात् मनुष्य के साथ जाता है। मनुष्य जिस समाज, देश एवं राष्ट्र में जन्म लेता है उस समाज अथवा देश की सेवा करना, उसकी सर्वांगीण उन्नति में योग देना तथा उसके मान–सम्मान के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर देता ही सच्चा धर्म है।

मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास कर देश के सुयोग्य नागरिक के रूप में अपने दायित्वों का निर्वाह करता हुआ अंत में जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

तस्य नाटकोत्सवस्य कृते आंगलोमण्डलाधीशः निमन्त्रितः स्यात्। यः खलु नाटकं दृष्ट्वा आनन्दितः सन् अर्थसाहाय्यं करिष्यति, येन ग्रामोन्नतिः भवेत्।[26]

अर्थ मनुष्य की भौतिक समृद्धि का आधार है। धर्म तथा काम पुरुषार्थ की सिद्धि भी अर्थ के माध्यम से ही होती है।

आनन्दातिशयेन विह्वलितः बृहस्पतिः। धन्यैषा मर्त्यभूमिः!!! प्रकृतेः अपूर्वशोभां विलोकयन्तः मानवाः चिरशान्तौ निवसन्ति। धर्मार्थादिलाभाय अहरहः प्रचेष्टा।[27]

भारतीय समाज में मानव जीवन की कल्पना पुरुषार्थ के अभाव में संभव नहीं है। जो कार्य मानव जीवन को नियंत्रित अथवा सुव्यवस्थित करे वही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ मानव जीवन के लिए निर्धारित लक्ष्य है।

(ग) अर्थोपार्जन में नारी की भूमिका

हमारे देश में महिलाओं की स्थिति में समय–समय पर कई परिवर्तन हुए हैं अर्थात् वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक कई उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी। उन्हें शिक्षा तथा सम्पत्ति का अधिकार भी प्राप्त था किन्तु मध्यकाल में विदेशियों के आगमन से महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई और वह अबला, रमणी तथा भोग्या बनकर रह गई। औद्योगीकरण, शिक्षा के प्रचार–प्रसार, विभिन्न आन्दोलनों तथा समाज–सुधारकों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप 21वीं सदी तक आते स्त्रियों की दशा में सुधार होना प्रारंभ हुआ।

आज की नारी राजनीति, कारोबार, कला तथा नौकरियों में पहुँचकर नये आयाम गढ़ रही है। आर्थिक दृष्टि से नारी अर्थचक्र के केन्द्र की ओर बढ़ रही है। आज का युग स्त्री जागरण का युग है। स्त्री अपराजिता है। हमारे देश के सर्वोच्च पद (राष्ट्रपति) को भी स्त्री ने सुशोभित किया है। ग्रामीण क्षेत्र हो चाहे शहरी क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाएँ अग्रणी भूमिका निभाती है। शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं में नवीन चेतना भर दी है। वैश्वीकरण के इस अर्थ प्रधान युग में वर्जनाओं को तोड़ते हुए स्त्रियाँ सफलता के नित नए सोपान चढ़ती जा रही है। पुरुषों से कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली आज की नारी किसी पर भी भार नहीं बनती बल्कि स्वावलम्बी बनकर दूसरों के लिए भी प्रेरणास्रोत बनती है।

चिन्तामग्ना भवति शबरी
स्वस्याः शतग्रन्थिसम्बलिते वस्त्रांचले
संरक्षितः धनराशिः
यमस्मिन् वार्द्धक्यवयसि
अन्याभिः सह पर्वतप्रमाणं केन्दुपत्राणि विक्रीय
उपलाकारेण प्राप्तवती
सः अद्य शून्यः
वध्वाः परिधानाय
अविवेकिरावणेभ्यः
तस्याः यौवनशोभासंगोपनाय।[28]

वृद्धा शबरी भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा अपने भविष्य को सुरक्षित रखने की दृष्टि से केन्दुपत्रों को विक्रय कर प्राप्त धनराशि अपने वस्त्र के आँचल में बाँधकर रखती थी।

अपने पति के रोगग्रस्त होने पर तथा गृह की आर्थिक स्थिति खराब होने पर प्रेमविह्वल पत्नी अर्थ के अर्जन हेतु अपने प्राणों को भी संकट में डाल देती है।

एकदा प्रातःकाले पितृगृहं गच्छामि इति पतिमुक्त्वा पत्नी मुमबाईनगरीं गच्छति। तत्र कानिचन दिनानि निवसन्ती सा स्वकीयमूत्राश्रयं (किडिन्) विक्रीणाति। आनन्देन धनमानीय स्वस्याः गृहमागच्छति।[29]

अपने पिता के घर जाने की बात कहकर पत्नी मुम्बई नगर चली गई तथा वहाँ कुछ दिन व्यतीत कर उसने अपनी किडनी बेची तथा प्रसन्नता के साथ धन लेकर अपने घर आ गई।

दिवंगते पतौ एकमात्रं नवजातपुत्रम् आनीय नगरमायाति रूपश्रीः। अथच नगरे उदरपोषणाय न तथा मार्गः सुलभः भवति। परिशेषे अल्पशिक्षिता रूपश्रीः एकस्य गृहे सेविकात्वेन तिष्ठति।[30]

अपने पति के दिवंगत होने पर अल्पशिक्षित ग्रामीण महिला रूपश्री अपने एकमात्र नवजात पुत्र को लेकर नगर की ओर आ गई तथा एक घर में सेविका के रूप में निवास करने लगी।

पति के स्वर्गवासी होने के पश्चात् अपनी संतान का पालन–पोषण करने की ज़िम्मेदारी माता के ऊपर आ जाती है, ऐसी दुरवस्था में अशिक्षित माता को परगृह में सेविका के रूप में जीविकोपार्जन करना होता है। इन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति कथाकार नायक जी ने अन्यत्र भी की है–

कुमारः यदा पंचवर्षीय आसीत्, तदानीं पिता रायमोहनः स्वर्गमगच्छत्। अतः बहुकष्टेन मात्रा देवीदत्तया कुमारः पालितः पोषितश्च। परगृहे गृहकर्म कृत्वाऽपि देवीदत्ता यथा स्वकीयं पुत्रं पालयति स्म, तं दृष्ट्वा न कश्चन विवेचयितुं क्षमः स्यात्–अयं पितृहीनः इति।[31]

कुमार जब पाँच वर्ष का था, उसी समय पिता रायमोहन का स्वर्गवास हो गया। अतः अत्यधिक कष्टपूर्वक माता देवीदत्ता ने कुमार का पालन–पोषण किया। परगृह में गृहकर्म करके देवीदत्ता ने जिस प्रकार अपने पुत्र को पाला, उसे देखकर कोई यह कह ही नहीं सकता था कि यह पितृहीन है।

गणिकावृत्ति एक ऐसा व्यापार है, जिसमें धन की प्राप्ति के लिए संबंध बनाए जाते हैं। महिलाएँ मजबूरीवश देह–व्यापार के दलदल में धँस जाती हैं।

जीवनकाले प्रथमतया विजयः रात्रिं यापयति सुरेखाकक्षे। सुरेखायाः गृहविषये शुभकान्तः एव तम् उपदिष्टवान्। एतस्याः परिवारस्य अयमेव जीवनोपायः। एवमपि अन्याः काश्चन अत्र तिष्ठन्ति।

अस्य स्थानस्य चर्च्चा प्रायशः भवति अन्यत्र। गणिकावृत्तिः। एतादृशी कलंकिता वृत्तिः कथं वा उत्तराधिकारसूत्रेण लभते।[32]

विजय ने रात्रिकाल में जब सुरेखा के कक्ष में प्रवेश किया तो उसे ज्ञात हुआ कि कलंकित गणिका वृत्ति उसे उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है। सुरेखा ने अपनी अन्तर्वेदना को प्रकट करते हुए कहा कि अपनी इच्छा के विरुद्ध वह केवल अपनी माता के कहने पर इस कृत्य में लिप्त है। उस जैसी कुछ अन्य भी स्त्रियाँ परिस्थितिवश इस कर्म को करके अपने जीवन का निर्वाह कर रही हैं। धर्नाजन का यह उपाय एक ओर तो हमारे समाज में नारी की वास्तविक स्थिति का चित्रांकन करता है दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्थाओं पर प्रश्नचिन्ह भी लगाता है।

आज की नारी के जीवन पर पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। वर्तमान नारी स्वयं को पुरुष से किसी भी क्षेत्र में कमतर नहीं आँकती है। वह प्रत्येक क्षेत्र में बढ़–चढ़कर भाग लेती है। राजनीति में सक्रिय नारी के विषय में उसका पति इस प्रकार अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करता है–

वन्दिता। प्राणप्रिया। हृदयेश्वरी। स्वगृहिणी। वहूपाधिविभूषिता। अद्य तु तस्याः विजयादशमी। भग्नगृहे मदीये निपतिता वन्दिता अद्यारभ्य नेत्री भविष्यति। नारीनेत्री। आशाचक्रवाललम्बिनी। निकटे ग्रामपंचायतनिर्वाचनम्। अनेकेषां दलानां निर्वाचनयुद्धम्।[33]

विभिन्न उपाधियों से विभूषित मेरी पत्नी की आज विजयादशमी है क्योंकि आज अकाल–कुष्माण्ड दल की वह नेता बन गई है।

पाठकाः भवतां शरीरं स्पृष्ट्वा वदामि, यत् वदामि सत्यं वदामि। आवयोः साक्षात्कारः तत एव समाप्तः। तदारभ्य सा सर्वदा कार्यव्यस्ता। कदा आयाति कदा वा प्रयाति। 'गतिं विलोकयेत् योगवलेन कश्चित्' नायम् अधमः।[34]

पत्नी जब निर्वाचन में सक्रिय हुई तब से पति तथा पत्नी के मध्य साक्षात्कार समाप्त हो गया। वह सर्वदा व्यस्त रहने लगी। वह कब घर आती और कब जाती। यह भी ज्ञात करना पति के लिए सुलभ नहीं था।

भवतां विश्वासः भवति वा न भवति अहं न जाने, तथापि भगवान् शत्रवे अपि इदं पत्नीरत्नं नैव ददातु।[35]

जिसका हाथ पकड़कर पति घर लाया था तथा जिसके गले में द्वितीय बार पुष्पमाला पति ने भी नहीं डाली थी, ऐसी उसकी पत्नी के गले में कई लोग पुष्पहार पहना रहे हैं तथा संतान के

प्रति भी वह पत्नी अपनी भूमिका का उचित निर्वहन नहीं कर पा रही है अतः ऐसा पत्नी रूपी रत्न विधाता शत्रु को भी न दे।

यदि एषा विजयिनी भवेत् तर्हि अवश्यं मम मस्तकम् आरुह्य गमनागमनं करिष्यति। किमपि तु न भूत्वा वहिः प्रदेशे प्रवलपराक्रमी वसन्तः गृहे वासन्ती।[36]

निर्वाचन प्रक्रिया के समाप्त होने पर पति इस विषय पर चिन्तामग्न है कि यदि मेरी पत्नी विजयी हुई तो वह मेरे मस्तक पर चढ़कर मुझे प्रताड़ित करेगी।

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी ने उनकी पारिवारिक भूमिका को संकुचित कर दिया है। आधुनिकता और फैशन की चकाचौंध ने संस्कारों तथा मूल्यों का निरंतर ह्रास किया है।

'पुनर्नवीकरणम्' नामक कथा में दर्भिक्षदास तथा बुभुक्षासुन्दरी नामक प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से कथाकार नायक जी ने स्पष्ट किया है कि जो नारी परिवार की धुरी मानी जाती थी वह नवीकरण के नाम अपने संस्कारों का त्यागकर कलह तथा अशान्ति का कारण बन रही है।

तदानीं बुभुक्षायाः निद्राभङ्गात् प्रागेव दुर्भिक्षः उत्थाय गृहकार्य्याणि समापयति स्म। एकः द्वौ त्रयः इति क्रमेण दिवसाः गताः। तस्याः समयः नास्ति। प्रतिदिनं बुभुक्षासुन्दरी शिक्षणकेन्द्रं गच्छति। रात्रदशवादने द्वादशवादने वा गृहमागत्य प्रातरुत्थाय प्रयाति। तथापि इच्छन्नपि किमपि वक्तुं नैव प्रभवति दुर्भिक्षः।[37]

ग्राममहिलापक्ष की सदस्या बुभुक्षा सुन्दरी के प्रातः उठने से पूर्व ही पति दुर्भिक्ष ने जागकर संपूर्ण गृहकार्य संपन्न कर दिए। बुभुक्षा प्रतिदिन शिक्षणकेन्द्र जाती और रात्रि के दस बारह बजे घर आकर प्रातः उठकर पुनः चली जाती थी। इस प्रकार क्रमशः दिवस व्यतीत होते गए और दुर्भिक्षदास चाहकर भी कुछ नहीं कह पाया। इस प्रकार संपूर्ण गृहकर्म तथा संतानों का उत्तरदायित्व दुर्भिक्षदास पर आ गया।

एवं प्रकारेण दुर्भिक्षदाशस्य गृहे नवीकरणपाठ्यक्रमः प्रचलितः। नवीकरणधारा। कथं वा रूद्धा स्यात्। भाग्यं विनिन्दन्नपि दुर्भिक्षः धारायामस्यां यथाशक्ति आत्मानं नियोजयति।

दिनं गच्छति। युगः प्रचलति। परन्तु दुर्भिक्षदाशस्य पृष्ठमनुदिनं वक्रतां गच्छति। अद्य एतस्य आवश्यकता, श्वः अपरस्य प्रयोजनता इत्यादिकं कथयन्ती बुभुक्षासुन्दरी सर्वदा व्याकुलीकरोति। ग्रामे निवसतां गृहजनानां कृते कपर्दमेकं प्रेषयितुमिदानीमक्षमः दुर्भिक्षः कदा फ्रिज् कदा वा टि.भि. इत्यादि क्रीणाति। नवीकरणयागेऽस्मिन् पशुः दुर्भिक्षः श्वासरुद्धः भवति। परन्तु मुक्तिः नास्ति।[38]

दुर्भिक्षदास के घर में नवीन पाठ्यक्रम चलने लगा। पत्नी सदैव नित नूतन वस्तुओं की अभिलाषा करने लगी। ग्रामीण दुर्भिक्ष टी.वी. तथा फ्रिज जैसी बहुमूल्य वस्तुओं को क्रय करने में असमर्थ था। उसका श्वास अवरुद्ध हो रहा था किन्तु उसे मुक्ति नहीं मिल रही थी।

अंग्रेजी शिक्षा तथा सभ्यता के प्रसार ने युवा पीढ़ी को निगल लिया है। भौतिक साधनों को जुटाने की तो चहुँओर प्रतिस्पर्धा दिखाई देने लगी है, जिससे न केवल हमारी संस्कृति को खतरा है बल्कि यह कई सामाजिक समस्याओं की जन्मदात्री है।

कर्मचारिणां वेतनवृद्धयर्थं बहुधनेन सह या अनेकवारम् उपहाररूपेण कर्मचारिसंघेन तस्मै प्रदत्ता यया सह काश्चन रात्र्यः परियापिताः सन्ति विभिन्नेषु पंचतारका भोजनालयेषु..........सा हि भवति एषा। सा अद्य बधूरूपेण समागता अस्ति भट्टनागरस्य सुप्रतिष्ठितं वंशम्।[39]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाएँ धन अर्जित करने के लिए घर की चारदीवारी के बाहर कार्यालयों में जाने लगी हैं तथा भौतिकवादी संस्कृति का अंधानुकरण कर अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूल रही है, जिससे चरित्रहीनता तथा नैतिक पतन जैसी समस्याएँ समाज में आम हो रही है।

इन्हीं भावों को यम—बहुपतिका—संवाद में भी देखा जा सकता है—

यस्मिन् युगे नार्यः राजनीतौ प्रमुखां भूमिकां निभालयन्ति, यस्मिन् युगे एकं प्रतिगृहं विभाज्य दशगृहाणि कुर्वन्ति, तस्मिन् युगे यदि सा सामान्यस्य यमदूतस्य निकटे हतप्रभा भविष्यति, तर्हि तस्याः जीवनम्, अध्ययनं सर्वं किमपि व्यार्थतां प्रयास्यति।

अहं मम ग्रामसभायाः निर्वाचिता सदस्या। इच्छामि चेत्, तव उद्योगः गमिष्यति।[40]

बहुपतिका अपने वाक्चातुर्य से यमराज से भी अपने पति के प्राणों को वापस ले आती है। वर्तमान नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय है।

(घ) आर्थिक शिक्षा

उद्योगप्रदाने असमर्था विद्या
निष्फला अनादृता जगति
न कोऽपि पठति अथ स्पृहयति।
अतः यया सुगमायते धनागमः
समुपलभ्यते अखण्डितः अधिकारः

सा एव विद्यापदवाच्या

ईदानीन्तनसंसारचक्रं तामेव अपेक्ष्यते।।[41]

जो विद्या उद्योग प्रदान करने में असमर्थ है, ऐसी विद्या संसार में निष्फल होती है तथा अनादृत होती है। कोई भी व्यक्ति ऐसी विद्या को पढ़ना नहीं चाहता। अतः जिस विद्या को प्राप्त कर सुगमता से धन का आगम होता है। अखण्डित अधिकार प्राप्त होता है, वही विद्या पद से अलंकृत होती है। संसार उसी की अपेक्षा करता है।

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है तथा उसे समाज का योग्य नागरिक बनने के लिए ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध करती है। देश के आर्थिक विकास में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा तथा समाज एक दूसरे से संबंधित हैं तथा परस्पर प्रभावित करते हैं। अतः आवश्यक है कि वैश्वीकरण के इस दौर में युवा पीढ़ी को गुणवत्तापरक, नवाचार युक्त तथा कौशल युक्त शिक्षा प्रदान की जाए ताकि प्रतिस्पर्धा के इस दौर में आर्थिक क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की जा सके।

प्रवेशद्वारदेशे शोभमाने नामफलके

भूतपूर्वः इति लिखितं भवति

एष एव शब्दः सूचयति

अतीतस्य प्रभुताम् आधिपत्यम्

आसनस्य उच्चताम् अन्यत्सर्वम्।

एतदेव द्वारं तदानीं दयस्वस्वरेण प्रकम्पितं

करुणाकटाक्षमात्रं

पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्

कृपाप्रार्थिनी जनता वद्धांजलियुता।[42]

घर के प्रवेश द्वार पर नामफलक पर सुशोभित भूतपूर्व शब्द अतीत की प्रभुता, आधिपत्य तथा आसन की उच्चता को सूचित करता है। आज द्वार पर लोगों का कोलाहल नहीं सुनाई दे रहा है, न ही कोई निवेदक है अपितु विश्वस्त सेवक भी दूर जा चुके हैं।

प्रस्तुत उद्धरण में अर्थ के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। जब व्यक्ति के पास अर्थ होता है तो समाज में वह श्रेष्ठ स्थान तथा सम्मान प्राप्त करता है और धन तथा पद के अभाव में निकटस्थ जन भी उसका साथ छोड़ देते हैं।

एकदा राज्यशिल्पमन्त्री कण्डुसर्वस्वः तम् उवाच–महाभाग! शिक्षासंस्कृत्यादिषु अस्माकं राज्यं यदि वा अतीव उन्नतं तथापि शिल्पक्षेत्रे न तथा अग्रेसरमस्ति अन्येषामिव।[43]

शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास करना है अतः पाठ्यक्रम में कला को जोड़कर व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर रोज़गार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध करवाए जाते हैं, जिनमें स्वास्थ्य देखभाल, बैंकिंग और वित्त, कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी, व्यापार, पर्यटन, खाद्य और पेय, फैशन डिजाइनिंग आदि प्रमुख है। व्यावसायिक शिक्षा हमारी अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रायशः सर्वे कवयः राजानं यशोधनं स्तुवन्ति काव्यरचनासु। एवमपि स्तुतिकाव्यलिखने महती प्रतियोगिता राज्ये परिदृष्टा। कः कविः कीदृशं काव्यं लिखति, कीदृशम् उपमाप्रयोगं करोति इत्येव अवलोकनीयम् आसीत् तदानीम्।

राजाऽपि कवीनाम् आग्रहपरिवर्धनाय उपाधिं प्रददाति। विभिन्नैः पारितोषिकैः कवीन् परितोषयति। आर्थिकसाहाय्यं प्राप्य उत्प्रेरिताः कवयः अधिकतया राज्ञः प्रशस्तिकाव्यं लिखन्ति।[44]

प्राचीनकाल में जो कविगण राजा महाराजा का आश्रय लेकर प्रशस्तिमूलक काव्य की रचना करते थे, अपनी रचनाओं में उनकी स्तुतियाँ करते थे तथा श्रेष्ठ उपमाओं का प्रयोग करते थे। वे समाज में न केवल ख्याति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे, बल्कि राजा भी उन्हें उपाधि, पुरस्कारों तथा आर्थिक सहायता प्रदान कर सम्मानित करते थे। इस प्रथा ने लेखन की स्तुतिपरक शैली का मार्ग प्रशस्त किया।

आधुनिक समय में भी जो कवि प्रतिभाशाली होता है तथा प्रशस्तिकाव्यों की रचना नहीं करता वह सदैव अभाव में अपने जीवन को व्यतीत करता है तथा सपरिवार दुरावस्था को प्राप्त होता है और जो कवि शक्तिसंपन्न का यशोगान करता है वह विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

सेठ रूपकुमार के मित्र जो विदेश में उनके सहपाठी थे तथा वर्तमान में केन्द्रीय मंत्री थे, जब वे उनके घर आए तो उन्होंने अपने जामाताओं का परिचय इस प्रकार करवाया–

एकस्मिन् प्रकोष्ठे उपविष्टं कठिनष्ठजामातरं दर्शयित्वा सः वदति–एषः मम कनिष्ठ जामाता। आसामप्रदेशे अयं चिकित्सकः अस्ति। समग्रे तस्मिन् राज्ये एतस्य महत् यशः प्रतिष्ठापितम्। तदनन्तरं मध्यमं जामातरं दर्शयित्वा वदति श्रेष्ठी रूपकुमारः एषः मम ज्येष्ठः जामाता। अस्माकं राज्ये एषः सुप्रसिद्धः यान्त्रिकः।

तत्र उपविष्टं मध्यमं जामातरं प्रति सः वदति–त्वम् अत्र किमर्थम्। तत्र गच्छ। मन्त्रिणः समीपे उपवेष्टुं कथं ते इतरस्य साहसः जातः?

गृहात् निःसारणसमये मध्यमजामातुः शिशुपुत्रः पितरं प्रति पृच्छति–पितः! मातामहः तस्मात् गृहात् किमर्थम् अस्मान् वहिष्कृतवान्? पुत्रस्य वचनेन वदति मध्यमजामाता–धन रे! एकस्य शिक्षकस्य समाजे को वा परिचयः विद्यते?[45]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक पद–प्रतिष्ठा प्राप्त करना रह गया है। प्रत्येक छात्र डॉक्टर अथवा इंजीनियर बनकर अधिकाधिक धनार्जन करना चाहता है साथ ही समाज भी ऐसे उच्च पदस्थ व्यक्तियों को आदर देता है। शिक्षण जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य कर अल्प वेतन प्राप्त करने वाले शिक्षक को गौण स्थान प्राप्त है। इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति कथाकार ने **'स्वप्नः'** नामक कथा में भी की है।

उच्च–माध्यमिक परीक्षा का परिणाम जब प्रकाशित हुआ तो प्रथम दस स्थानों में तीन स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से जब प्रधान शिक्षक राजेन्द्र ने उनकी भविष्य की योजनाओं के विषय में पूछा तो उन्होंने आइ.ए.एस., डॉक्टर तथा इंजीनियर बनने की इच्छा प्रकट की कोई भी शिक्षक बनकर देश सेवा नहीं करना चाहता था। प्रधान शिक्षक के पूछने पर वे छात्र कहने लगे–

शिक्षकाः अधिकं वेतनं नैव लभन्ते। शिक्षकेभ्यः यानं नैव प्रददाति सर्वकारः। शिक्षकवृत्तौ न तथाधिकारः विद्यते। भयेन न कोऽपि प्रकम्पते शिक्षकं दृष्ट्वा नापि जनाः कार्यसिद्धये द्वारदेशे विकलने प्रार्थयन्ते। अतः तस्यां पदव्यां स्थित्वा कथं वा देशसेवा भवेत्।[46]

कन्या का विवाह यान्त्रिक वर के साथ तय हो चुका है तथा एक लाख रूपये यौतुकरूप में वर पक्ष को दिए जाने हैं, इस विषय में पत्नी मर्कट रदना अपने पति सर्वगिल के समीप करुण क्रन्दन करती हुई कहती है–

भवान् स्वकीयां दुरवस्थाम् अवलोकयितुं कथमसमर्थः भवति। इदानीन्तने समाजे यान्त्रिकः जामाता कुत्र? कुत्र वा एतानि रूप्यकाणि? भवतः को वा आयराशिः? यथा कथंचित् कवितालिखनेन यः कोऽपि कविः भवितुमर्हति। कवित्वेन प्रशंसाऽपि मिलेत्। परन्तु धनानि कुतः आगमिष्यन्ति?[47]

आपकी आय राशि क्या है? कविता लेखन से कोई व्यक्ति कवि बन सकता है। कवित्व से प्रशंसा मिलती है किन्तु पुत्री के विवाह हेतु धन कहाँ से आएगा? वर्तमान में यान्त्रिक जामाता हमें कहाँ से प्राप्त होगा?

कवि धन के अभाव में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पाता है अतः शिक्षा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने का माध्यम बन गई है। कविता लेखन अत्यन्त दुरुह कार्य है किन्तु हमारे समाज में कवि और उसकी रचना को यथोचित सम्मान तथा स्थान प्राप्त नहीं है यही कारण है कि कला समाज के किसी कोने में दम तोड़ती प्रतीत होती है।

दरिद्रशर्मणः इह जगति न किमपि वस्तु विद्यते। यदर्थमेव अयं स्वस्य वासोपयोगाय मठस्य भूमौ गृहमेकं निर्माति। यदि तस्मात् स्थानात् तस्य उच्छेदः स्यात्, तर्हि तस्य परिवारः वृक्षमूले एव स्थास्यति।[48]

दरिद्र की स्थिति संसार में शून्य है। यह संसार धनवानों का ही है। संपूर्ण सुख–सुविधाओं के साधन तथा समस्त अधिकार धनाढ्य वर्ग तक ही सीमित हैं। निर्धन वर्ग तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाता। **'दारिद्रयशतकम्'** में नायक जी कहते हैं–

दुःखस्य मूलं दारिद्रयम्,
दारिद्रयस्य मूलमभावः।
अभावस्त्रिविधः–
अन्नाभावो वस्त्राभावो वासाभावश्चेति।[49]

व्यथिताः शिक्षकाः यदा पुनर्विचारनिमित्तं जलातङ्कस्य गृहे सम्मिलिताः, तदानीं जलातङ्कः तेषां हस्ते मिष्टकं प्रदाय वदति–स्वीकुर्वन्तु एतत्। अद्य मम पुत्रस्य प्रथममासवेतनं लब्धम्। पूर्ववराकसर्वकारेण मम पुत्रः उद्योगं नैव प्राप्तवान्। किन्तु एषः कल्याणकल्पतरुः मुख्यमन्त्री मम पुत्राय उद्योगं दत्वा अस्माननुगृह्णाति।[50]

आधुनिक काल में शिक्षा के नाम पर भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, राजनीति, विज्ञान आदि विषय पढ़ाए जाते हैं, लेकिन इन विषयों के अध्ययन से रोज़गार मिलना तय नहीं हैं और रोज़गार के अभाव में जीवन को व्यतीत नहीं किया जा सकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या में बढ़ोतरी की है। शिक्षक जलातङ्क मिश्र ने सभी शिक्षकों की सम्मति से 'शिक्षकसंग्रामसमिति' का गठन किया। प्रसिद्ध हो जाने पर तथा नेतृ वर्ग में सम्मान प्राप्त कर लेने पर येन–केन प्रकारेण वह अपने पुत्र के लिए रोज़गार का प्रबन्ध कर पाया।

दरिद्रस्य सर्वेऽनुभवाः, सर्वाश्च भावना
व्यर्थीभूता अनवलोकनीयाः।
न कदापि दरिद्रः स्वीयमनुभवं
कस्यामपि खातिकायामुल्लिखति।
नापि तस्य हृदये
यशः प्रार्थिनः कवेः वासना उदेति।
दरिद्रवद् दरिद्रस्य रचना अपि दरिद्रा,
यासां निरीक्षणं न कश्चन करोति कुत्रापि।

स्वेच्छया स्पर्धया किमपि विलिख्य
सर्वकारेण पुरस्कृतो धनिकः।[51]

प्रस्तुत पंक्तियों में दरिद्र का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है। कविवर नायक कहते हैं कि दरिद्र के समान दरिद्र की रचना भी दरिद्र ही होती है, जिसका निरीक्षण कोई भी कहीं पर भी नहीं करता। दरिद्र के सभी अनुभव तथा भावनाएँ व्यर्थ होते हैं अनवलोकनीय होते हैं। जबकि धनिक स्वेच्छा से जो कुछ भी लिख देता है वह श्रेष्ठ काव्य बन जाता है, सरकार से पुरस्कृत होता है तथा उसके रचे गए ग्रन्थ विद्यालय–महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में सर्वत्र पढ़े जाते हैं।

(ङ) श्रमिक की भूमिका

स्वेदीकृत्य शरीरस्य कष्टार्जितं रक्तं
समर्ज्जयति क्षेत्रेभ्यः पत्रं पुष्पं फलं मूलं
जगतः प्राणिजीवनपरिरक्षणाय
ग्रीष्मे वृष्टौ शीते वा भीषणे।
यस्य स्वेदं पीत्वा पीत्वा
पृथुलकाय ईश्वरः,
यस्य श्रमेण पठति
ईश्वरस्य पुत्रः सुदूरे विदेशे,
यस्य त्यागेन भ्रमति
परमानन्देन ईश्वरी,
व्योमयानेन विदेशिना यूना शुना सह
स एव दरिद्रो मृतोऽनाहारेण।[52]

संसार के सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा के लिए गर्मी सर्दी तथा भयंकर वर्षाकाल में खेतों में काम कर पत्र, पुष्प, फल तथा मूल की व्यवस्था करने वाला श्रमिक अत्यंत कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। कर्त्तव्यनिष्ठ श्रमिक पसीना बहाकर अपने स्वामी को पृथुलकाय बना देता है। श्रमिक के परिश्रम के फलस्वरूप ही स्वामी का पुत्र विदेश में रहता है तथा स्वामिनी आनंदपूर्वक व्योमयान के माध्यम से विदेशयात्रा का सुख भोगती है।

किन्तु श्रमिक की स्थिति सदैव दरिद्रता की ही बनी रहती है–

दरिद्रो नैव क्रेतुं समर्थः
पुत्रस्य कन्यायाः कृते वा नववस्त्राणि,

पत्न्याः कृते दुर्लभं स्वर्णालङ्कारम्,
कदाचिन् नानेतुं समर्थः सुमिष्टं भोज्यं
गृहाय खाद्यरूचिपरिवर्तनाय।
यदर्थं प्रतिक्षणं दरिद्रस्य गृहे अवमाननम्,
अनादरस्तथा पुरुषत्वस्योपरि वज्रप्रहारः,
अन्येषामुदाहरणमात्रेण तीव्रः आक्षेपः
प्रचलति स्वेच्छयास्पर्द्धया।[53]

राष्ट्र निर्माण में महती भूमिका निभाने वाला श्रमिक अपनी संतान के लिए नवीन वस्त्र तथा पत्नी के लिए आभूषण क्रय करने में असमर्थ रहता है तथा रूचिकर खाद्य पदार्थ जुटाने में भी वह सक्षम नहीं होता है अतः सदैव तिरस्कार, प्रताड़ना, प्रहार तथा आक्षेप सहन करता है।

भूतलस्य सूर्य
आकाशस्य मध्यभागं गच्छति,
तथापि परियाचनायामपि, नैव लभते श्रमः
श्रमजीविन्याः तस्याः कृते।
गृहे अबोधाः शिशवः
प्रतीक्षन्ते भोजनाय,
अद्य दिवसस्य अधिकाराय।
रिक्तहस्ता माता प्रत्यावर्त्तते
भग्नहृदयेन कुटीरम्।
क्षुधातुराणां सम्मुखे
स्वयमपि उपविशति, पर्य्युषितान्नपात्रं नीत्वा,
एकस्मिन् समये यस्मिन् पात्रे
प्रविशति हस्तचतुष्टयं
परस्परं स्पर्द्धमानम्।
शिशूनामुदरं तथापि अपूर्णम्।
को विकलं क्रन्दति
को वा याचते मातरं
पुनः पुनः अन्नं मुष्टिपरिमितं

यदा पूर्णतामेति जनन्या जठरं,
नयनयोर्लोतक प्रपानकेन।[54]

श्रमिक श्रम करके न्यूनतम मज़दूरी प्राप्त करता है, जिससे यथा–कथञ्चित् वह अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण करता है किन्तु यह स्थिति सदैव नहीं रहती है। जिस दिन उसे काम नहीं मिलता है। उस दिन सपरिवार उसे निराहार रहना होता है। श्रमिक हमारे समाज का वह वर्ग है जिस पर संपूर्ण आर्थिक उन्नति टिकी होती है। मशीनीकरण के इस दौर में उसे भी बेरोज़गारी का सामना करना होता है।

कदापि विलम्बेनागमनेन कार्यक्षेत्रतो
न कश्चन अन्विष्यति कारणम्।
नापि गृहजनाः शून्यस्यूतं संवीक्ष्य
सम्भाषन्ते स्नेहेन।[55]

जर्जर आर्थिक स्थिति के कारण घर के अन्य सदस्य भी श्रमिक से स्नेहपूर्ण व्यवहार नहीं करते हैं। पत्नी का क्रोध भी शतगुणित हो जाता है। मानवीय श्रम का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण श्रमिक सभी क्रियाकलापों की धुरी होते हुए भी अभावग्रस्त रहता है।

रोटिकां खादितुं
वृक्षतले सज्जीभवति श्रमिकः
यः बहुश्रमेण धनिगृहकार्यं सम्पाद्य
विनिमयेन इमां रोटिकां संगृहीतवान्।[56]

दो वक्त के भोजन के लिए श्रमिक को अत्यधिक संघर्ष करना पड़ता है। प्रभुत्वशाली जन इन मज़दूरों का सर्वप्रकार से शोषण करते हैं। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक इनकी अवस्था में सुधार नहीं हुआ है। ज़मीदार वर्ग उन्हें बंधुआ बनाकर रखते हैं। उनसे श्रम अधिक लिया जाता है और पारिश्रमिक कम दिया जाता है।

प्रातरुत्थाय अन्यस्य द्वारदेशे
कः पंचवर्षीयः विकलेन करं प्रसारयति
पर्युषितरोटिकानिमित्तम्
को वा अन्यस्य गृहकर्मणि
आत्मानं नियुज्य विस्मरति
प्रभातस्य सूर्योदयमायाम्

नभोदेशस्य तारकापङ्क्तिम्,
विहगानां काकलिमथ जीवनस्य मूल्यबोधम्।
समवयस्कस्य प्रभुपुत्रस्य सेवायां
कृतापराधस्य कस्य पृष्ठदेशे
उत्पतति भीषणः प्रहारः।
अथ च एते देवशिशवः इति विज्ञाः वदन्ति
एतेषां हितसुरक्षार्थं
विज्ञानां सभा भवति सुरम्ये हर्म्ये
पृथ्वीजनाः व्याकुलिताः भवन्ति
पृथ्वीजनाः व्याकुलिताः भवन्ति
बालश्रमिकप्रथायाः उच्छेदनाय
उपदेशः दीयते।[57]

संसार में जितने बाल श्रमिक है, उनमें सर्वाधिक बालश्रमिक (लगभग एकतिहाई?) भारत में है। यह एक सामाजिक–आर्थिक समस्या है। बालश्रम की समस्या के कई कारण हैं यथा–चेतना का अभाव, निर्धनता तथा निरक्षरता। विद्वद्जन जिन बालश्रमिकों को देवशिशु की संज्ञा देते हैं, जिनके हितों की सुरक्षा के लिए सभाओं का आयोजन करते हैं तथा इस प्रथा को समाप्त करने का उपदेश देते हैं। वे देवशिशु किसी के निन्दा वचनों से न ही स्वयं की निन्दा करते हैं न ही प्रशंसा से उत्फुल्लित होते हैं। उनके जीवन–शैली में कोई भी परिवर्तन नहीं होता? प्रातः काल उठकर पर्युषित रोटिका हेतु वह अन्य के द्वार पर व्याकुलता से अपना हाथ प्रसारित करता है। समृद्धशाली परिवारों के गृहकर्म में लगकर वह जीवन के मूल्यबोध को ही विस्मृत कर चुका है। समवयस्क प्रभु पुत्र की सेवा में उस पर भीषण प्रहार भी होता है। अतः शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं का भी उसे शिकार होना पड़ता है। श्रमिक के जीवन में लज्जा भय, अभिमान तथा विजय के स्वाद की आकङ्क्षा नहीं है बल्कि जीवन उसके लिए आयु को व्यतीत करना है। कानूनन अवैध घोषित होने के बावजूद भी बालश्रमिकों के हालात जस के तस हैं। अपनी उदरपूर्ति हेतु उन्हें संकटग्रस्त परिस्थितियों में भी श्रम करना होता है।

कश्चन ग्रामीयः वृद्धचित्रकारः यस्य अभूतपूर्वा प्रतिभा राज्यात् वहिरपि प्रशंसिता, सः प्रदर्शन्याः अनतिदूरे एकस्मिन् वृक्षमूले उपविश्य यदा स्वकीयचित्रेषु अग्निं संयोजयति, तदानीं केनचित् दर्शकेन असौ पृष्टः–एवं किमर्थं करोति इति। तस्मिन् समये शोकजर्ज्जरितः चित्रकारः वदति–किं वा करणीयमस्ति। मृतकस्य शरीरे तु अवश्यम् अग्निः संयोजनीयः भवेत्।[58]

वर्तमान समय में कला को उपयुक्त स्थान तथा सम्मान प्राप्त नहीं है। अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी ख्याति प्राप्त वृद्ध चित्रकार द्वार अपनी कलाकृति का अग्नि से संयोग करना बड़ा ही मार्मिक है। मन्त्रीपुत्र के साधारण से प्रतीत होने वाले चित्र प्रदर्शनी में प्रशंसा पाते हैं तथा मन्त्रिपुत्र स्वयं चित्रकार संघ सभापति पद से अलंकृत होता है, जबकि ग्रामीण वृद्ध चित्रकार की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियाँ उचित मानदेय तथा स्थान के अभाव में मूल्यहीन हो दम तोड़ रही हैं।

मम उदरे असह्या यन्त्रणा भवति। चत्वारः दिवसाः अतीताः। न मया किमपि खादितम्। अहं मम गृहे एकः एव उपार्जनक्षमः जनः। असुस्थे मयि सर्वे एव उपवासेन तिष्ठन्ति। कृपया मम चिकित्सां करोतु।[59]

श्रमिक के परिवार की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। परिवार में वह एकाकी ही श्रम करके धनार्जन करता है। संपूर्ण परिवार उसी पर आश्रित रहता है और जब वह अस्वस्थ हो जाता है तो परिवारजन उपवास में रहते हैं क्योंकि 'रोज़ कुआँ खोदना और रोज़ पानी पीना' अर्थात् प्रतिदिन प्राप्त होने वाली राशि से ही इनके घर का चूल्हा जलता है। संग्रहण के अभाव में इनकी आर्थिक स्थिति सदैव दुर्बल ही बनी रहती है। रुग्ण होने पर चिकित्सा की व्यवस्था भी सुलभ नहीं होती।

स्नेहिरामः अभिनयं समाप्य गृहम् आयाति। जराजीर्ण्णे गृहे खट्वारूठां रुग्णां मातरं पश्यति। पश्यति पुनः अन्नाभावेन परिशुष्कं पत्न्याः वदनम्। क्रीडनकनिमित्तं वहुवारं विनिवेद्य निराशः पुत्रः पुनः पुनः तदेव याचते। इदानीमपि तस्य विद्यालयगमनं नैव जातम्। स्वस्य छिन्नं धौतवस्त्रं परिधातुं न शक्यते।[60]

सर्वत्र प्रशंसित तथा सम्मानित हस्याभिनेता स्नेहिराम नाटक जगत का अविस्मृत अध्याय है। अपने श्रेष्ठ अभिनय कौशल के माध्यम से वह दर्शकों के चित्त को आह्लादित करता है किन्तु दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण उसका पारिवारिक जीवन कष्टप्रद है। जब वह अभिनय समाप्त कर अपने घर आता है तो वह देखता है कि बिस्तर पर वृद्ध माँ रोगग्रस्त है। अन्न के अभाव में पत्नी का मुख सूख गया है। निराश पुत्र पुनः—पुनः खिलौने की याचना कर रहा है। अपने पुत्र को विद्यालय भेजने में भी वह असमर्थ है तथा उसके स्वयं के वस्त्र भी जीर्ण—शीर्ण अवस्था में है।

नायक महोदय का वैशिष्ट्य है कि अपनी रचनाओं में इन्होंने कलाकारों की कमज़ोर आर्थिक समस्या को उठाया है। कला तथा कलाकार की वेदना को उजागर किया है तथा यह स्पष्ट किया है कि विशिष्ट प्रतिभा के धनी कलाकार को हमारे समाज में उचित स्थान तथा सम्मान प्राप्त नहीं है। एक कलाकार अपनी कला के माध्यम से अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में अपनी जान डाल देता है किन्तु सहयोग के अभाव में संघर्षरत प्रतिभा किसी कोने में दम तोड़ती सी प्रतीत होती है।

साहित्य तथा साहित्यकारों की शोचनीय अवस्था का वर्णन करते हुए नायक महोदय कहते हैं–

वस्तुतः साहित्यसाधने कर्मिणां धनस्य वा अभावः नास्ति। अभावः केवलं पाठकानाम् अस्ति। सहृदयपाठकानाम् अभावः एव साहित्यस्य भाषायाः वा अवमूल्यायनं करोति।[61]

समाज में साहित्यसाधकों अथवा धन का अभाव नहीं है, अभाव केवल पाठकों का है। सहृदय पाठक ही साहित्य अथवा भाषा का अवमूल्यन करता है। लेखक स्वभाव से प्रगतिशील होता है और जो ऐसा नहीं है वह लेखक नहीं है। मुंशी प्रेमचंद स्वयं को एक मज़दूर मानते थे। वे कहते थे– "मैं एक मज़दूर हूँ। जिस दिन कुछ न लिखु न लूँ, उस दिन मुझे रोटी खाने का कोई हक नहीं।"

धनिभक्तानां कृते उत्तमः व्यवहारः करणीयः। स्वकीयप्रत्यक्षतत्त्वावधनेन तेषां समग्राः व्यवस्थाः कर्त्तव्याः इति तद्दिने उक्तमासीत् मया। अथ च त्वया न मम आदेशः प्रतिपालितः। आचार्यादेशानाम् अपरिपालनं नाम परमे ब्रह्मणि स्वस्य अनास्थाभावप्रदर्शनम् इति वदन्ति शास्त्राणि। येन तव नरकगतिः सुनिश्चिता।[62]

आश्रम शिष्य की भर्त्सना करते हुए निर्वाणाश्रम के अध्यक्ष आचार्य भावानन्द कहते हैं कि धनिक भक्तों के लिए विशेष प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए (मद्यपानादि की व्यवस्था) यदि आचार्य के आदेश की पालना नहीं हुई तो तुम्हारी नरकगति निश्चित है।

विद्याविमुखः युवकः
दारिद्र्येण पीडितः सन्
उद्योगार्थम् इतस्ततः भ्रमित्वा।
निराशः जातः
उदरपोषणमपि कष्टायते।
परिशेषे युवकः
आत्महत्यार्थं प्रस्तुतो भवति।[63]

दरिद्रता से पीड़ित होता हुआ विद्याविमुख युवक उद्योग प्राप्त करने के लिए इधर–उधर घूमकर निराश हो गया। उदरपोषण भी कष्टकर हो गया तत्पश्चात् अंत में वह युवक आत्महत्या के लिए प्रस्तुत हुआ। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बेरोज़गारी एक गंभीर समस्या है जो प्रगति के मार्ग अवरुद्ध करती है। रोज़गार के अभाव में अर्थ की प्राप्ति सुलभ नहीं हो पाती और व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता और यह स्थिति संघर्ष, तनाव, कुण्ठा तथा अवसाद

की स्थिति उत्पन्न करती है। अशिक्षित ही नहीं अपितु उच्चशिक्षा प्राप्त युवक–युवतियाँ भी रोज़गार प्राप्त करने में असफल रहते हैं।

ज्येष्ठपुत्रः साधारणो जनो
यस्य धनं नास्ति अथवा प्रतिष्ठा
न कश्चन पृच्छति, कदा वा
तस्य कृपाप्रार्थनाययत्नशीलो भवति।
अधिकन्तु
कष्टोपार्ज्जितमपि अर्थराशिं व्ययीकृत्य
यः स्वपरिवारभरणे नैव समर्थः,
तस्य कथाप्रसंगे कदाचित्
पित्रोः सिद्धान्तः समायाति
एतस्य जन्मनः अपेक्षया
गर्भस्त्रावो वरमासीत्
तदानीम्।[64]

तीनों पुत्रों में कनिष्ठ पुत्र विदेश में यन्त्रज्ञ है, जिसकी सुप्रतिष्ठा सर्वत्र परिचित है, दूर–दूर तक जिसकी यशोराशि प्रसृत है, स्वदेश में जिसने माता–पिता के गौरव को परिवर्धित किया है तथा उनके (माता–पिता के) श्रम का फल अपने कार्य रूप में दिया है।

मध्यमपुत्र अपने ही देश में प्रतिष्ठा प्राप्त है। उसके नेतृत्व के अधीन लाखों नागरिक हैं। प्रातः काल से लेकर अर्द्धरात्रि तक उसकी जय–जयकार होती है। मध्यम पुत्र का परिचय भी माता–पिता के उज्ज्वल भाग्य को प्रकाशित करता है।

ज्येष्ठ पुत्र साधारण जन है, जिसके पास धन अथवा प्रतिष्ठा नहीं है, न ही कोई उसे पूछता है और न ही उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। ऐसा वह श्रमिक कष्ट से उपार्जित अर्थराशि को व्यय करके अपने परिवार का भरण–पोषण करने में भी समर्थ नहीं है। जब भी ज्येष्ठ पुत्र का प्रसंग उपस्थित होता है तो माता–पिता कहते हैं कि इसके जन्म की अपेक्षा गर्भस्राव ही श्रेयस्कर था।

सखि रे!
आजीवनं वल्मीकस्य इव
तपस्यामाचरन्
विशालं ग्रन्थकोणार्कं निर्माति दरिद्रः।

यस्य चर्च्चा न भवति कुत्र
न कश्चन अवलोकयति तस्य श्रमं
न कुत्रापि परिचर्च्चिता तस्य
विश्वविनिर्माणात्मिका बुद्धिः,
न वा कस्मिन् भव्यसमारोहे
परिपूजितः सः।[65]

आजीवन वाल्मीकि के समान तप करते हुए विशाल ग्रन्थ की रचना कर लेने पर भी रचनाकार का श्रम नहीं देखा गया, न ही उसकी चर्चा कहीं पर हुई और न ही किसी भव्य समारोह में उसे सम्मानित किया गया।

तद्दिनस्य मेधावी सुशीलो
विद्याग्राही शास्त्रपारंगतो
विद्यालयस्य गौरवो गुरुप्रियः शिष्यः,
अद्य शिल्पपतिपुत्रस्य सविधे
आज्ञावहो भृत्यः।
अपेक्षते आनतशिरसा
नवीनमादेशम्।
यदादेशपालनं,
निर्भरति विशालपरिवारस्य
अन्नं पेयमथ वसनविशेषं,
चिकित्सकविनिर्दिष्टमौषधिसकलम्,
अनूढाया भगिन्या विवाह प्रसंगः
स्वस्य भविष्यजीवनम्।[66]

मेधावी, सुशील, विद्याग्राही, शास्त्रों में पारंगत, विद्यालय का गौरव तथा गुरु का प्रिय शिष्य आज शिल्पपति पुत्र का आज्ञाकारी भृत्य है अर्थात् रोज़गार का वर्तमान में नितान्त अभाव है। उसका मस्तक सदैव नवीन आदेश की अपेक्षा करता है। आदेश की पालना पर ही उसके विशाल परिवार की मूलभूत आवश्यकताएँ, अविवाहित भगिनी का विवाह तथा उसका स्वयं का भी भविष्य निर्भर करता है।

विक्रीतवानात्मानं स धनिजनगृहे
क्षीणं जातं वपुस्तस्य परकृषिक्षेत्रे

परोन्नतिकर्म तस्य जातं वेदवाक्यम्।
कालस्य कुटिलगत्या दिवङ्गता जाया
पुत्रस्त्वेको गतप्राणोऽज्ञातव्याधिना,
तथापि स प्रभुगृहं विचिन्त्य स्वगृहम्,
श्रमरतः आसीत् सखि!
विचिन्त्य भविष्यम्।
येन विवर्द्धितः प्रभुर्महता धनेन
येन सम्पालिताः प्रभुसन्तानाश्च सर्वे
सोऽसौ भृत्य उपनीतो वार्धक्ये यदैव
निष्कासितः कटुवाक्यैर्वृद्धः श्लथकायः।
तद्दिनस्य कर्मवीरो भिक्षापात्रकरः
द्वारं द्वारं संयाचते अन्नकृपाकणम्,
विशालेऽस्मिन् जगति
को वा अस्ति तस्य जनः
आहाः – करिष्यति दीने दरिद्रे मनुष्ये।[67]

युवावस्था में अनेकों स्वप्न देखने वाले श्रमिक के भाग्य में अन्यजनों के समान जीवन व्यतीत करना नहीं है। अतः स्वयं को धनीजन के घर में बेच देता है तथा परकृषिक्षेत्र में कार्य करने से उसका शरीर क्षीण हो जाता है। दूसरों की उन्नति के कार्य में वह स्वयं को लगा देता है। अपनी पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु के पश्चात् भी प्रभुगृह को स्वगृह मानकर वह सेवाकार्य में तल्लीन रहता है। श्रमिक के श्रम से ही धनीगृह चहुँओर से वृद्धि को प्राप्त करता है किन्तु जब भृत्य वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तो कटुवाक्यों से उसे निष्कासित कर दिया जाता है और वह द्वार–द्वार पर अन्न हेतु भिक्षा की याचना करता है।

भृत्य ने अपना संपूर्ण जीवन जिस परिवार के लिए तिरोहित कर दिया। उस परिवार ने अपने स्वार्थ सिद्ध होने पर कर्मवीर भृत्य के हाथों में भिक्षा पात्र थमा दिया।

♦♦♦♦

सन्दर्भ

1. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—3
2. गर्त्तः — कृषकः, पृ.सं.—55
3. रुचिरा—कक्षा 6, कृषिकाः कर्मवीराः, पृ.सं.—58
4. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—139—140
5. कथासप्ततिः—भ्रातृप्रेम, पृ.सं.—1
6. कथासप्ततिः—ग्रामस्य पुत्र, पृ.सं.—29
7. कथा सप्ततिः, अभिजात्यम्, पृ.सं.—34
8. मनुस्मृति—6 / 72
9. गर्त्तः—लक्षणम्, पृ.सं.—59
10. श्री नारायण पण्डित विरचित हितोपदेश (मित्रलाभ)श्लो. सं.— 37
11. गर्त्तः—अपमिश्रणम्, पृ.सं.—65
12. गर्त्तः—मनः, पृ.सं.—70
13. गर्त्तः—दायभागः, पृ.सं.—61—62
14. शबरी—मृत्युकविता, पृ.सं.—39
15. शबरी—मृत्यु कविता, पृ.सं.—40
16. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—147
17. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—151
18. कथासप्ततिः—ऊँ शान्तिः, पृ.सं.—55
19. कथासप्ततिः—रूपाजीवा, पृ.सं.—03
20. कथासप्ततिः, कविः, पृ.सं.—6
21. कथासप्ततिः—माधवसेवा, पृ.सं.—18
22. कथासप्ततिः—महाकविः, पृ.सं.—20
23. उवाच कण्डुकल्याणः—शिक्षकसङ्ग्रामसमितिः, पृ.सं.—2
24. उवाच कण्डुकल्याणः—उपाधिः, पृ.सं.—42
25. उवाच कण्डुकल्याणः—कीलकानन्दः, पृ.सं.—16
26. उवाच कण्डुकल्याणः—नाटकम्, पृ.सं.—68
27. उवाच कण्डुकल्याणः—दुर्दशा देवगुरोः, पृ.सं.—44
28. शबरी—शबरी, पृ.सं.—30
29. कथासप्ततिः, प्रेम, पृ.सं.—13

30. कथासप्ततिः, अन्तिम सुयोगः, पृ.सं.—21

31. कथासप्ततिः, जननी, पृ.सं.—23

32. कथासप्ततिः, उत्तराधिकारः, पृ.सं.—40

33. उवाच कण्डुकल्याणः—नेत्रीरूपेण संस्थिता, पृ.सं.—47

34. उवाच कण्डुकल्याणः—नेत्रीरूपेण संस्थिता, पृ.सं.—47

35. उवाच कण्डुकल्याणः, नेत्रीरूपेण संस्थिता, पृ.सं.—48

36. उवाच कण्डुकल्याणः—नेत्रीरूपेण संस्थिता, पृ.सं.—48

37. उवाच कण्डुकल्याणः—पुनर्नवीकरणम्, पृ.सं.—76—77

38. उवाच कण्डुकल्याणः—पुनर्नवीकरणम्, पृ.सं.—77—78

39. कथासप्ततिः, बधूः, पृ.सं.—42

40. लोकभाषा सुश्रीः—यम—बहुपतिका—संवादः, पृ.सं.—2

41. शबरी—विद्या, पृ.सं.—10

42. गर्त्तः—भूतपूर्वः, पृ.सं.—64

43. उवाच कण्डुकल्याणः—केलिकदम्बस्य इस्पातशिल्पम्, पृ.सं.—5

44. कथासप्ततिः—कविः, पृ.सं.—06

45. कथासप्ततिः—परिचय, पृ.सं.—22

46. कथासप्ततिः—स्वप्नः, पृ.सं.—22

47. लोकभाषा सुश्रीः—आमन्त्रणम्, पृ.सं.—8

48. लोकभाषा सुश्रीः—निमित्तमात्रम्, पृ.सं.—10

49. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—129

50. उवाच कण्डुकल्याणः, शिक्षकसंग्राम समितिः, पृ.सं.—9

51. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—24

52. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—79

53. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—18

54. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—17

55. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.—8

56. शबरी—कविः, पृ.सं.—22

57. शबरी—देवशिशुः, पृ.सं.—11—12

58. कथासप्ततिः—चित्रकारः, पृ.सं.—31

59. कथासप्ततिः—दरिद्रचिकित्साकेन्द्रम्, पृ.सं.—27

60. कथासप्ततिः, हास्याभिनेता, पृ.सं.–19

61. कथासप्ततिः–अभावः, पृ.सं.–9

62. कथासप्ततिः–माया, पृ.सं.–44

63. गर्तः–वैरागी, पृ.सं.–67

64. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–9

65. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–29

66. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–56

67. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–121

उपसंहार

उपसंहार

आत्मा यथा शरीरेषु तथा भाषासु संस्कृतं
वर्तते लोकभाषाणां तत्समवायिकारणम्।।
संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती।।

विश्व की अन्य सभी भाषाओं में सुमधुर तथा अलौकिक गीर्वाण वाणी संस्कृत भाषा आदिकाल से ही अन्य भाषाओं की माता के रूप में संसार को पुष्पित तथा पल्लवित करती आई है। भारतीय मनीषियों का चिन्तन–मनन, गवेषण तथा अनुभूति संस्कृत भाषा में ही है। संस्कृत भाषा को देवभाषा, सुरभारती एवम् अमरभारती आदि नामों से अभिहित किया जाता है। संस्कृत भाषा समस्त विधाओं का अथाह भण्डार है और भारतीय संस्कृति के सभी गुण इसी से प्रसूत हुए हैं। संस्कृत भाषा विश्व की समस्त परिष्कृत भाषाओं में प्राचीनतम है। भारतवासियों के लिए तो यह प्राणवाहिनी धारा है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक जीवन को यह भाषा तथा इसका साहित्य निरंतर अनुप्राणित करता रहा है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्वनामधन्य तथा आधुनिक नवीन विधाओं के प्रणेता डॉ. प्रमोद कुमार नायक साहित्य समाराधकों में प्रेरणा तथा अभिनव ऊर्जा से सहृदय पाठकों, साहित्यकारों एवं शोधार्थियों को सदैव परिस्फुरित करने वाले हैं। डॉ. नायक आधुनिक संस्कृत वसुधा को अपनी सृजनशीलता से निरंतर आप्लावित कर रहे हैं। आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में काव्य–प्रयोजन के विषय में कहा है–

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।

इस कसौटी पर नायक जी का साहित्य खरा उतरता है। आपने जहाँ संस्कृत के नवीन साहित्य के संवर्धन में उल्लेखनीय योगदान दिया, वहीं अनेक विधाओं में रचनाओं का प्रणयन कर नया आयाम स्थापित किया है।

नायक जी की रचनाओं में परंपरा तथा आधुनिकता का मणिकांचन संयोग दृष्टिगत होता है। आप का लोकचिन्तन, विभिन्न समसामयिक विषयों से जुड़ाव तथा अद्भुत पाण्डित्य साहित्यानुरागियों को आकृष्ट करने हेतु पर्याप्त प्रतीत होता है।

"व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के संदर्भ में)" शीर्षकान्तर्गत किए गए शोध प्रबन्ध में पाँच अध्याय हैं, जिन पर व्यापक चिन्तन तथा मनन के पश्चात् जो नवनीत स्वरूप सारांश प्रकट हुआ है, वह इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. प्रमोद कुमार नायक के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिचय दिया गया है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. प्रमोद कुमार नायक ने अपनी तीक्ष्ण लेखनी से साहित्य सृजित कर संस्कृत जगत् में अपना महिमामय स्थान बनाया है साथ ही संस्कृत भाषा को परम्परागत शैली के पाशों से मुक्त करवाकर स्वच्छंद तथा अविरल प्रवाहपूर्ण स्रोतस्विनी बनाया है। इस अध्याय में डॉ. नायक का संक्षिप्त जीवन परिचय, शिक्षा, अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य, सम्मान एवं पुरस्कार व उनकी काव्ययात्रा का समावेश किया गया है। डॉ. नायक की प्रकाशित कृतियों में तीन पद्य काव्य हैं।

1. **शबरी –** 'शबरी' पद्य काव्य संग्रह है। सभी लघु कविताएँ अपने भीतर समकालीन समाज को समेटे हुए हैं। सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में इन कविताओं में लोक की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। इस काव्य संग्रह में भारतीय संस्कृति के विविध पक्ष, संवेदनाएँ, मानवीय मूल्य, शिक्षा, स्त्री–विमर्श, पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि, राष्ट्रीय चेतना, पर्यावरण चेतना एवं अर्थव्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को चित्रित किया गया है। विद्या की महिमा का बखान करते हुए कविवर नायक जी कहते हैं–

अन्धे तमसि जीवने ज्योतिरूपा विद्या
नाशयति अज्ञानान्धकारं
दर्शयति परमकल्याणमार्गम्
असमानतायां गायति
समतायाः महामन्त्रम्
ईशावास्यं विश्वं
त्यागपूर्वकभोगस्य रमणीयां कथाम्।

2. **गर्त्तः** –'गर्त्तः' व्यंग्य काव्य संग्रह है। वर्तमान समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा विसंगतियों का कवि ने कटुता से वर्णन किया है। इस काव्य संग्रह में विभिन्न समस्याओं के गर्त्त से सामाजिकों को बाहर निकालने की चेष्टा कवि द्वारा की गई है।

अनेकानेक मानवीय मूल्यों के दर्शन इस काव्य संग्रह में होते हैं। कविता के विषय में स्वयं नायक जी का कथन है–

कविताकामिनी सर्वान् नालिङ्गति
सर्वेषां पुरतः स्वस्याः सौन्दर्यं
नैव प्रदर्शयति सा।
कविता तु क्रान्तदर्शिनः कवेः
सुकुमारी अपरूपा अनूढा किशोरी
यस्याः आविर्भावाय
कविः तपोनिमग्नः अनन्तकालाय
वाल्मीकिसमाधौ।

3. **दारिद्र्यशतकम्** –प्रस्तुत काव्य में शतसंख्या में लघुकविताएँ हैं। यह मात्र कविताएँ न हो कर कविवर के जीवनानुभव हैं। कविवर नायक जी धनवानों का विरोध अथवा उपेक्षा नहीं करते हैं अपितु दरिद्रजनों के दायभाग तथा अधिकार हेतु प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। प्रस्तुत काव्य में दरिद्रों के भावावेग, शोकोच्छ्वास तथा जीवन के लिए व्याकुल निवेदन है। इस संदर्भ में नायक जी अपने विचार इस प्रकार रखते हैं–

दरिद्रस्य च्छाया दारिद्र्यम्, सखापि दारिद्र्यम्। चिन्ताऽपि दारिद्र्यं, पितापि दारिद्र्यम्। अन्येषां कृते चेतनापि दारिद्र्यम्। तस्यैव दरिद्र्यकुलस्य अहं प्रतिभूः। मयि नित्यं प्रतिक्षणं तमेव पश्यामि, तेष्वपि आत्मानम्। एकं कुलं, समानं गोत्रम्। एतदेव विश्वमस्माकम्। एतदेव नीडम्। एतदेव कुटुम्बम्।

डॉ. नायक विरचित कथासंग्रहों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

1. **उवाच कण्डुकल्याण :** प्रस्तुत कथासंग्रह में हास्य कथाओं के माध्यम से समसामयिक समस्याओं को उजागर किया गया है, साथ ही समाधान के उपाय भी प्रस्तुत किए गए हैं। इन कथाओं के चरित्र वर्तमान समाज के वास्तविक रूप का उद्‌घाटन करते हैं। स्वार्थ परायणता, अवसरवादिता, यौतुकप्रथा, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, मिलावटखोरी, घूसखोरी, हिंसा, मद्यपान, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण तथा दुष्प्रभाव, धर्म के नाम पर आडम्बर,

पर्यावरण प्रदूषण, राजनीति में व्याप्त दुराचरण एवं मूल्यहीनता पर कथाकार ने तीव्र आघात किया है।

2. **कथासप्ततिः –** 70 लघुकथाओं का संग्रह ही कथासप्ततिः नाम से विख्यात है। यह सभी कथाएँ समाज के इर्द–गिर्द घूमती हैं और पाठक में स्वतः ही मानवीय मूल्यों की स्थापना करती हैं। भारतीय संस्कृति की पक्षधर यह कथाएँ सत्संगति, परोपकार, दया, प्रेम, सहिष्णुता, बन्धुत्व, सेवा, त्याग, बड़ों का सम्मान करने की शिक्षा देती हैं तथा समाज के दलित वर्ग, महिलाओं की दयनीय स्थिति, अनुशासनहीनता एवं अकर्मण्य–भाव को प्रदर्शित करती है। कविकर्म को प्रदर्शित करते हुए नायक जी कहते हैं–

   साहित्यसाधना धनिकानां पादतले न भवति अथ च साहित्यिकः स्वाभिमानी भवेत् इति तस्य परमः विश्वासः। पाठकानाम् अभिमतं खलु साहित्यिकस्य श्रेष्ठः पुरस्कारः इति।

3. **स्वर्गादपि गरीयसी –** यह एक व्यंग्य कथा संग्रह है, जिसके प्रमुख विषय हैं– आधुनिक समय में नारी की स्थिति तथा उसका अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होना, यौतुक प्रथा, विधवा विवाह, राजनीति में महिलाओं की साझेदारी, भ्रष्टाचार, देशप्रेम तथा राष्ट्रीय एकता, धर्म के नाम पर चल रहे गोरखधंधे, धनलोलुपता आरक्षण व्यवस्था के दुष्परिणाम, साहित्यकारों की जर्जर आर्थिक स्थिति, आदिभाषा संस्कृत के महत्त्व में आई कमी तथा उसके उज्ज्वल भविष्य हेतु यथोचित प्रचार–प्रसार।

4. **स्वर्गपुरे –** स्वर्गपुरे नामक व्यंग्योपन्यास की रचना करके नायक जी ने संस्कृत उपन्यास जगत में एक अद्वितीय भिन्न धारा का सूत्रपात किया। इस उपन्यास के माध्यम से कवि नायक ने समाज के कलंकित रूप का उद्घाटन करके स्वस्थ तथा स्वच्छ समाज के गठन की चेष्टा की है।

द्वितीय अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध

इस अध्याय में मानवीय मूल्यबोध की परिभाषा एवं उद्गम स्रोत पर प्रकाश डाला गया है। जिन मान्यताओं के आधार पर हम स्वयं को तथा अपने समाज को धारण तथा व्यस्थित करते हैं साथ ही लोक कल्याण की संभावनाओं को चरितार्थ करते हैं, वे ही वास्तव में मानवीय मूल्य हैं। मानवीय मूल्य मानव को गरिमा प्रदान करते हैं और व्यक्ति जीवन में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति करता है। सामाजिक मानवीय मूल्यबोध पर इस अध्याय में विस्तार से वर्णन किया गया है। सामाजिक समरसता विषय के अन्तर्गत प्रेम मातृत्व, स्वतंत्रता, समानता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा, उदारता, सत्संगति एवं सदाचार आदि विषयों को सम्मिलित किया गया है। यथा–

एकदा प्रातःकाले पितृगृहं गच्छामि इति पतिमुक्त्वा पत्नी मुम्बईनगरीं गच्छति। तत्र कानिचन दिनानि निवसन्ती सा स्वकीयमूत्राश्रयं (किडिन्) विक्रीणाति। आनन्देन धनमानीय स्वस्याः गृहमागच्छति।

नारी चेतना विषय में नायक जी ने नारी की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया है। उनकी रचनाओं में नारी को आदर्श माता के रूप में, विमाता के रूप में आदर्श पत्नी के रूप में तथा शोषण एवं दरिद्रता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है।

कैकेय्याः त्यागं धैर्यमेव आश्रित्य
अवतरति श्रीरामपावनचरितः
रामकथा तामेव आश्रयते।

यौतुक प्रथा जैसे संवेदनशील विषय को भी डॉ. नायक ने अपनी लेखनी का आधार बनाया है। यौतुक देने में असमर्थ पिता की पुत्री के विषय में समाज की धारणा को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है।

दारिद्र्यस्य इयमेव रीतिः
दरिद्रतनया खलु भोगोपजीविनी
राज्ञो रुच्यन्तरं
वनस्य मुक्तप्रदेशे
पत्रशय्यापरिपूरणाय
सामान्येन अङ्गुरीयविभवलाभेन।।

एक ओर जहाँ दहेज के अभाव में ससुराल पक्ष वधू को प्रताड़ित करता है, वहीं अत्यधिक यौतुक राशि तथा अलंकारों से संपन्न वधू को पितृपक्ष द्वारा इस प्रकार उपदेश दिया जाता है–

पितासगर्वमुपदिशति कन्यां
पतिगृहे निर्भीका भवितुं
यथाशीघ्रं श्वशुरादिकं त्यक्त्वा
पत्युः कर्मक्षेत्रे निवसितुं,
सेविकया रन्धनं सन्तानलालनं च
सम्पादयितुम्।

समभाव की शिक्षा देने वाली भारतीय संस्कृति में क्या कोई प्राणी ऐसा भी है, जिसे स्पर्श के योग्य नहीं माना जाता, जिसके साथ उठा–बैठा नहीं जा सकता तथा भोजन इत्यादि नहीं किया जा सकता। इन्हीं भावों को दलित चेतना विषयान्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

वर्ज्यवस्तुभक्षणं येषां ललाटवाक्यम्
परनिन्दासहनमेव येषां कण्ठहारः
अन्यस्य धिक्कारो येषां पुरस्कारः
कथाप्रसंगे उपहासो
येषां जन्मनः साफल्यम्।

दलित समाज का वह वर्ग है, जो सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक प्रगति में सर्वाधिक शोषित, उपेक्षित तथा पिछड़ा हुआ हो। अत्यन्त सभ्य और संस्कृत समाज में आज भी सर्वत्र अस्पृश्यता के दर्शन किए जा सकते हैं।

श्रमिक देश का सबसे बड़ा वर्ग है। यह वर्ग सभी आर्थिक कार्यक्रमों को गति प्रदान करता है। यह श्रम के बल पर जीविकोपार्जन करते हैं। जीवित रहने के लिए इन्हें कठोर परिश्रम तथा संघर्ष करना पड़ता है।

मन्दिरे पूजितो भवति
केवलः पाषाणविग्रहः
साक्षात् ईश्वरस्तु
क्षुधापिपासाकुलितः
अरक्षितः
वृक्षमूले राजपथपार्श्वे
रोगग्रस्तः
चीत्करोति तीव्रयन्त्रणया।
यस्य श्रमेण रक्तदानेन
विनिर्मिता इयं सृष्टिः
यस्य स्वेदः
विपरिणमते पुष्परूपेण
फलरूपेण।

प्राचीन हिन्दु धर्म में वर्ण व्यवस्था सामाजिक विभाजन का आधार–स्तंभ रही है। लोगों को उनके कार्यों के आधार पर वर्णों में विभक्त किया जाता था। सभी वर्ण अपना निर्धारित कार्य पूर्ण कुशलता से संपन्न करते थे। कालान्तर में वर्ण का स्थान जाति ने ले लिया। मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी जाति तय हो जाती है। वर्ण–व्यवस्था शीर्षक में इन्हीं मनोभावों को अभिव्यक्त किया गया है।

बुद्धिमान् शास्त्रसंकलको जनो जातः
ईश्वरस्य शतदलविमण्डितपद्ममुखात्
दर्पी बली, राजदण्डधारी
प्रजायते नितरां वाहुभ्याम्
किन्तु सखे!
ईश्वरस्य रत्नराशिविमण्डिते
सुदीर्घे शरीरे
नासीत् स्थानं दरिद्रस्य कृते।

धर्माडम्बरता विषयान्तर्गत धर्म के नाम पर भगवा वस्त्रधारी, माला तथा तिलक लगाने वाले, जटाएँ धारण कर सभाओं में उपदेश तथा प्रवचन देने वाले ढोंगी बाबाओं की वास्तविकता को उजागर किया गया है। धर्म के नाम पर विशाल तथा भव्य आयोजन किए जाते हैं, जनसमुदाय आमंत्रित किए जाते हैं, समानता के भाषण दिए जाते हैं किन्तु सच तो यह है कि धर्म के नाम पर आमजन को छला जाता है। उन्हें मूर्ख बनाकर उनका लाभ उठाया जाता है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वयं है। व्यक्ति जीवन में जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह उसके कर्मों का ही प्रतिफल होता है। बिना फल की आकांक्षा के निरंतर कर्मशील बने रहने की प्रेरणा कर्मप्रधानता शीर्षक में प्रदान की गई है।

साहित्यं कदापि केवलं धीमतां विनोदाय
न भवति, कस्याः अपि संगोष्ठ्याः पैतृकं
धनं न भवति, साहित्यमेव दर्पणः
समाजस्य मूर्तिमद्दर्पणः भवति
अत्र सर्वेषां समानः प्रतिबिम्बः निपतति
शासकस्य वा शासितस्य।

तृतीय अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक मानवीय मूल्यबोध

प्रस्तुत अध्याय में राष्ट्रीय भावना, परोपकार की भावना, सेवा परायणता, शिक्षा, संस्कृति की समन्वयवादिता, उच्छृङ्खलता तथा विविधता में एकता आदि तत्त्वों का समावेश किया गया है। राष्ट्रीय भावना एक ऐसी मनः स्थिति है, जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र के प्रति त्याग, बलिदान और शूरवीरता की प्रेरणा देती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना के दर्शन किए जा सकते हैं। देशभक्ति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। केवल सीमा पर जाकर शौर्य का प्रदर्शन करना ही देश प्रेम का प्रतीक नहीं है। नेता द्वारा राष्ट्र के विकास हेतु कार्य करना, साहित्यकार द्वारा राष्ट्रीय चेतना तथा जनजागरण के कार्य करना, समाज सुधारक द्वारा समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करना, धर्मगुरुओं द्वारा उच्च मानवीय आदर्श प्रस्तुत करना तथा श्रमिक, कृषक, कर्मचारी और व्यापारियों द्वारा अपना–अपना कार्य पूर्ण निष्ठा तथा ईमानदारी से करना ही राष्ट्रीय भावना है।

दूरे आकाशे आविर्भूय
यः निम्नस्तायाः पृथिव्याः
दुःखावबोधने व्यग्रः भवति
असह्यां वेदनाम्, अपरिसीमं कषणम्
अवलोक्य, यस्य ह्वदयं क्रन्दति
स्वकीयं सुखजालं, विवर्द्धितमनोभावं
विस्मृत्य, यः सामग्रिक–भावेन
आत्मानं नियोजयति
सः मेघः
निः स्वार्थपर बन्धोः परमम् उदाहरणम्।

भारतीय संस्कृति मूल्यप्रधान है। बड़ों का सम्मान करना, परदुःखकातरता, दया, प्रेम, न्याय, अहिंसा, त्याग तथा सत्य की शिक्षा प्रदान करती है। प्रकृति के कण–कण में परोपकार समाया हुआ है। मेघ, वृक्ष, नदी तथा सत्पुरुष परोपकार के कार्यों में ही अपना जीवन समर्पित कर देते हैं।

समाज में एक साथ रहते हुए एक दूसरे का सहयोग करना तथा अच्छे बुरे वक्त में साथ देना ही मानव सेवा है। वास्तविक अर्थों में यदि हम कहें तो किसी भी कार्य को स्वार्थ की भावना से परे हटकर परहित में पूरी लगन और निष्ठा से करना ही सेवा धर्म है। डॉ. प्रमोद कुमार नायक की रचनाओं में सेवा परायणता को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

सेवाधर्मे सन्नद्धाः हि प्राणाः
संस्कृतिः या अतिमनोरमा।
जीवप्रीतिः सम्पत्तिः यदीया
विश्वहिते मतिः यस्याः
स्वकर्मणि सततं निमग्ना।

सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या वह है जो मनुष्य को मुक्ति दिलवाए। मानवजीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है व्यक्तिगत विकास तथा मानव कल्याण के लिए शिक्षा का योगदान अभूतपूर्व है। शिक्षा द्वारा ही सभ्यता व संस्कृति का हस्तांतरण तथा अक्षुण्णता संभव है। समाज तथा राष्ट्र की प्रगति भी शिक्षा पर ही निर्भर है।

गुरुकुलमेव साधारणं शिशुं
मर्यादापुरुषोत्तमरामरुपेण
योगेश्वरकृष्णरूपेण
विनिर्माति, ते युगं संस्थापयन्ति
शान्तिवार्त्तां, विश्वस्मिन् परिप्रचारयन्ति
गुरुकुलमेव एतस्य प्रमाणं
त्यागतपः साधनार्थं परमं क्षेत्रम्।

सामाजिकता, आदर्शात्मकता, समानता, प्रेम, सहिष्णुता तथा उदारता आदि गुणों की दृष्टि से भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी है। यह व्यक्ति में संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहित करती है **'अतिथि देवो भव',** सर्वधर्म सद्भाव, सेवा, सहायता तथा विविधता में एकता भारतीय संस्कृति का मूल है।

सर्वेषु घटेषु नारायणस्य अवस्थितिरपि समुपलब्धा। इह जन्मनः पापराशिम् आगामिनि जन्मनि प्राणी अवश्यं प्राप्स्यति इति सत्यवचनम्। पक्षिणां वन्धनं नितरां पापाय कल्पते। महापापभारः जीवनं दूषयति। एतदर्थं भवान् अस्मिन् अनुचितकर्मणि कथं प्रवर्त्तते। दुर्मूल्यमानवजीवने हरिभक्तिः अर्जनीया।

वर्तमान समाज तथा संबंधों में पद–पद पर अनुशासनहीनता के दर्शन होते हैं। यथा–

घनान्धकाररजन्याः
निःशब्दप्रहरे
गृहकोणे

मम पदचुम्बिनः

आकुलप्रेमनिवेदकस्य

रूपमाधुर्याः प्रशंसायां

शतजिह्वपुरुषस्य (बिटपस्य)

भाषणेन

अहं विचकिता जाता

अयं मुख्यवक्ता

आदर्शपुरुषः

उपदिशति सर्वान्

युवकान् गृहस्थान्

एक पत्नीव्रतपालनाय।

भारत विविधता में एकता वाला देश है और यह विविधता हमारे जीवन को कई प्रकार से समृद्ध करती है। जीवन कई प्रकार के रंगों से रंगीन हो जाता है। व्यक्तित्व बहुआयामी हो जाता है। अलग–अलग संस्कृतियों को देखने समझने तथा जानने का सु अवसर प्राप्त होता है। बुद्धि विकसित होती है, समझ का दायरा बढ़ जाता है तथा दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है।

राजकुमारः वा ब्राह्मणतनयः

अनयोः भेदः नास्ति

अभिजातस्य वा दारिद्र्यस्य

प्रश्नः नोदेति तत्र

अध्ययने पुष्पावचने अथ

हविः समर्पणे वा गुरुसेवने।

चतुर्थ अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में राजनीतिक मानवीय मूल्यबोध।

साहित्य को साधन बनाकर समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों से जनसाधारण को अवगत कराने में पारंगत डॉ. नायक व्यंग्य माध्यम से कहते हैं।

श्रम एव मूर्खाणां प्रवृत्तिः। अधमाः श्रमं कुर्वन्ति। ये खलु सुखकामिनः तेषां श्रमस्य आवश्यकता नास्ति। केवलम् आसने उपविश्य भाषणप्रदानेन तेषां सुखमायाति। समाजे पूजा लभ्यते। इतिहासे नाम तिष्ठति।

राजनीति एक संपूर्ण व्यवस्था कहलाती है, जिसका मूल उद्देश्य लोकहित होता है। सम्प्रति राजनीति में अवसरवाद, भाई–भतीजावाद, परिवारवाद, गठबंधन, भ्रष्टाचार, पाखण्ड, वोट–बैंक तथा स्वार्थ का बोलबाला है। साम, दाम, दण्ड तथा भेद किसी भी उपाय से राजनेता अपना हित साधने में तत्पर हैं। मानव जाति के राजनीतिक विकास में जो विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ रही हैं उनमें प्रजातंत्र मुख्य शासन प्रणाली मानी गई है। जिसमें शासन की शक्ति जनता के पास होती है। यह राज्य समाज व शासन तीनों का सम्मिश्रण है। यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें समानता का व्यवहार तथा विचार प्रबल होता है। प्रजातंत्र के पोषक कविवर नायक कहते हैं–

यतोहि सिंहासनं कस्यचित् शासकस्य नहि
उत्तराधिकारेण नहि परिप्राप्यते कमपि
तदस्ति अखिलप्रजाकुलस्य विभवम्
आत्मविश्वासस्य गोपनीयं पीठम्
निराश्रयस्य आश्रयस्थलम्।

लम्बे संघर्ष तथा अनगिनत त्याग एवं बलिदान के बाद हमने स्वतंत्रता का स्वाद चखा। एक लम्बी यात्रा के बाद संविधान का निर्माण हुआ और देश गणतंत्र कहलाया किन्तु वर्तमान में इस प्रजातान्त्रिक देश में राजतंत्र जैसी परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। सत्ता प्राप्त कर लेने के पश्चात नेता विश्वबन्धुत्व तथा राष्ट्रसर्वोपरि की भावना का परित्याग करके स्वार्थपूर्ति में ही लिप्त हो जाते हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति का प्रयोग लोककल्याणकारी कार्यों में नहीं करके वह अपने व्यक्तिगत एवं निजी हित में करने लगते हैं। धन तथा शक्ति के बल पर तथा अनुचित साधनों का प्रयोग कर निर्वाचित हुए नेता राष्ट्रकोश को लूट लेते हैं तथा देश का सौदा करने से भी नहीं चूकते हैं।

पाखण्ड शीर्षकान्तर्गत कवि कहते हैं कि जो व्यक्ति जितना अधिक सदाचरण तथा मानवीय मूल्यों का दिखावा करता है, वह उतना ही अधिक भ्रष्ट होता है। यह पाखण्ड वह अपने निजी हितों को साधने के लिए करता है। व्यक्ति एकान्त में कुछ और तथा दूसरों के सामने कुछ अलग ही चरित्र का दिखावा करता है।

कौतुकेन वरयति का रमणी
रूपवती विभवशालिनी
गोपनेन प्रणयलिप्सया
परित्यज्य पतिदेवं
स्वेच्छया परपुरुषान् यापयितुं रात्रीः।
का वा रुष्टा धनिकनन्दिनी
विहाय निजसंसारं स्वामिनं तनयं,
रमते नृत्यशालायां मदिरापायिनी
समुल्लंघ्य परम्परां नारीत्वं सकलम्।

न्याय व्यवस्था के स्वीकृत सिद्धान्तों अथवा नियमों के विरुद्ध जाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किया गया गलत आचरण ही भ्रष्ट आचरण है। रिश्वत, काला–बाजारी, चुनावी धांधली, अनैतिकता, असहिष्णुता, कर्त्तव्य–उपेक्षा, पद तथा सत्ता का दुरुपयोग आदि भ्रष्ट आचरण के कुछ उदाहरण है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति, व्यवसाय सेवा, शिक्षा, प्रशासन यहाँ तक कि सामाजिक एवम् मानवीय संबंधों में भी भ्रष्टाचार को अनुभव किया जा सकता है।

आतंकवाद के विषय में नायक जी का कथन है कि यह मात्र आपराधिक एवं हिंसात्मक कुकृत्य नहीं है अपितु सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का पतन है।

तदारभ्य उत्पतिताः वृक्षाः
प्राणिनः घातिताः
विशालपर्वतस्थाने
गभीरः गर्त्तः अवलोकितः।
पारस्परिकं जीवनं कलहपूर्ण्णं संजातं
शान्तः परिवेशः विनष्टः विलुप्तः विश्वासः।
तण्डुले उपलखण्डानां पानीये दूषितपदार्थानाम्
अपमिश्रणं परिदृष्टं
दिवसेऽपि राजमार्गगमनं
स्वस्य गृहे शान्त्या शयनं कठिनं जातम्।

पंचम अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध

अर्थ मानव के भौतिक जीवन का संचालक है। जिन आर्थिक गतिविधियों से मनुष्य को पूर्णता प्राप्त होती है वे सभी आर्थिक मूल्य कहे जाते हैं। समाज में जिस व्यक्ति के पास धन है वह सुखी, सम्मानित, सभ्य एवं सज्जन माना जाता है। अर्थ जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। सुखवादी तथा भोगवादी जीवन की चाह रखने वाला मनुष्य अनुचित उपायों को अपनाने में भी हिचकिचाता नहीं है। समाज दो वर्गों में बँट जाता है एक वर्ग जो अत्यन्त सुविधा संपन्न है और दूसरा जो मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण कर पाने में भी अक्षम तथा अभावग्रस्त है। इस अध्याय में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्णित किया गया है– कृषि प्रधानता, पुरुषार्थ की सिद्धि, अर्थोपार्जन में नारी की भूमिका, आर्थिक शिक्षा एवं श्रमिक की भूमिका।

सन्निकटे कृषिक्षेत्रे
क्षेत्रं कर्षति हलधरः कृषकतनयः
पितृपुरुषेभ्यः लब्धं क्षेत्रमिदं
तस्य जीवनाय हेतुरूपम्।
मध्याह्नस्य सूर्यस्य प्रचण्डतापेन
सन्तापितो हलधरो नानुभवति क्लेशम्
असौ भूमिपुत्रः
अखिलः संसारो
नितरामपेक्ष्यते तस्य हस्तम्।

संसार का अन्नदाता कहे जाने वाले भारतीय कृषक की आर्थिक स्थिति सदैव ही दयनीय बनी रहती है। वह अपने पारिवारिक दायित्वों को भी पूर्ण नहीं कर पाता है। ऋणग्रस्त होकर सदैव सेठ–साहूकारों के शोषण का पात्र बना रहता है।

भारतीय संस्कृति में जीवन को सर्वप्रकारेण आनंदपूर्ण मनाने के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की उद्भावना को रखा गया है। भारतीय संस्कृति में सर्वप्रथम धर्म को प्राथमिकता दी गई है। उसके बाद ही अर्थ तथा काम की उपासना के लिए कहा गया है तथा मोक्ष को प्राप्त करना जीवन का अंतिम लक्ष्य है। धर्म के द्वारा मनुष्य नीति, विवेक, न्याय आदि क्रियाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। अर्थ मनुष्य की भौतिक समृद्धि का आधार है। काम मानव के मन एवं देह को संतुष्टि प्रदान करता है। इन तीनों के विधिवत उपभोग से व्यक्ति जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

भ्रातरः जीवनस्य लोभस्य धनसंग्रहस्य च किंचित् मूल्यं नास्ति इति खलु अस्मिन् शेषसमये अहमनुभवामि। भवन्तः यथासाध्यं धनसंग्रहं करोतु परन्तु मरणकाले कः एकामपि मुद्रां नेतुं शक्यते एव नहि। यतोहि धराधनं धरायामेव स्थास्यति। परन्तु धर्मः एव मृतकेन सह गमिष्यति।

हमारे देश में महिलाओं की स्थिति में समय–समय पर कई परिवर्तन हुए हैं। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक कई उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। आज की नारी खेलों, राजनीति, कारोबार, कला, व्यवसाय, प्रशासनिक, शैक्षिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में नए आयाम गढ़ रही है। वर्तमान युग स्त्री जागरण का युग है। ग्रामीण क्षेत्र हो चाहे शहरी क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाएँ अग्रणी भूमिका निभाती हैं। वैश्वीकरण के इस अर्थप्रधान युग में वर्जनाओं को तोड़ते हुए स्त्रियाँ सफलता के नित नये सोपान चढ़ती जा रही हैं। पुरुषों से कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली आज की नारी किसी पर भी भार नहीं बनती बल्कि स्वावलम्बी बनकर दूसरों के लिए भी प्रेरणास्रोत बनती है।

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है तथा उसे समाज का योग्य नागरिक बनने के लिए ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध करवाती है। देश के आर्थिक विकास में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा तथा समाज एक दूसरे से संबंधित हैं तथा परस्पर प्रभावित करते हैं। अतः आवश्यक है कि वैश्वीकरण के इस दौर में युवा पीढ़ी को गुणवत्तापरक, नवाचारयुक्त तथा कौशलयुक्त शिक्षा प्रदान की जाए ताकि प्रतिस्पर्धा के इस दौर में आर्थिक क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की जा सके।

विद्याविमुखः युवकः
दारिद्र्येण पीडितः सन्
उद्योगार्थम् इतस्ततः भ्रमित्वा
निराशः जातः
उदरपोषणमपि कष्टायते।
परिशेषे युवकः
आत्महत्यार्थं प्रस्तुतो भवति।

संसार के सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा के लिए गर्मी सर्दी तथा भयंकर वर्षाकाल में काम करने वाला श्रमिक अपना स्वेद तथा रक्त बहाकर भी स्वामी का हित साधता है। उसकी स्वयं की स्थिति दीन–हीन बनी रहती है। राष्ट्रनिर्माण में महती भूमिका निभाने वाला श्रमिक अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाता है। सदैव तिरस्कार, प्रताड़ना, प्रहार तथा आक्षेप सहन करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. नायक ने अपने आसपास की परिस्थितियों और विभिन्न संवेदनाओं का अपनी रचनाओं में वास्तविक चित्रण किया है। आपके साहित्य में वर्तमान समय की मानवीय संवेदनाओं की सच्ची तस्वीर दिखाई देती है। डॉ. नायक की रचनाओं की भाव–भूमि को देखने पर यह ज्ञात होता है कि आपने आधुनिक समाज में व्याप्त कुप्रबंध, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, दहेज–प्रथा, वर्ण–संघर्ष, नारी–शोषण, आतंकवाद और आर्थिक विषमताओं पर न सिर्फ कटाक्ष किया है अपितु समाधान के उपाय भी खोजे हैं। डॉ. नायक साहित्यसृजन के कार्य में सतत क्रियाशील हैं। उनके द्वारा रचित **अधरं मधुरम्** का प्रथम संस्करण 2020 में प्रकाशित हो चुका है तथा **तव कथामृतम्** प्रकाशाधीन है। इस प्रकार समसामयिक सामाजिक विसङ्गतियों को दूर करने हेतु कविवर नायक जी ने जो नैतिक उपदेशात्मक उपाय बताया है, वही इस शोध प्रबन्ध का सामाजिक अवदान है। इति शम्।

♦♦♦♦

सारांश

सारांश

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।

अर्वाचीन संस्कृतसाहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र, दिव्य प्रतिभासंपन्न, सर्वशास्त्रविचक्षण, सरस्वती के वरदपुत्र क्रान्तद्रष्टा कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक की लेखनी साहित्य की सभी विधाओं में अपने भावशिल्प तथा शब्दशिल्प का अद्भुत सामंजस्य स्थापित करती हुई ब्रह्मानन्द सहोदर के आनंद की अनुभूति प्रदान करती है। कविवर नायक की रचनाओं में भारतीय जीवन शैली की समग्र और यथार्थ प्रस्तुति मिलती है। इसमें धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों विचारधाराओं, परंपराओं एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों की प्रचुर सामग्री संगृहीत है। डॉ. नायक की रचनाएँ सहृदयों को आनंद से आप्लावित करने के साथ ही उदात्त संदेश प्रदान करती हैं।

मानवीय मूल्य मानव को गरिमा प्रदान करते हैं। मानवीय मूल्य एक ऐसी आचरण संहिता अथवा सद्गुणों का समूह है, जिसे अपनाकर मनुष्य अपने निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। मूल्य संबंधों को संतुलित करके व्यवहारों में एकरूपता स्थापित करते हैं। मानव मूल्यों का संबंध नैतिक विचार से है। मानव तथा मानवीय मूल्य सर्वोपरि हैं। मूल्यों के संतुलन से ही व्यवहार में एकरूपता स्थापित की जाती है। अतः मूल्यों की उपयोगिता व्यक्ति, समाज, राष्ट्र अथवा विश्व के लिए महत्त्वपूर्ण है। किन्तु जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाले भारतीय संस्कृति के प्राण कहे जाने वाले मानवीय मूल्य सम्प्रति मूल्यहीन दिखाई पड़ते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में डॉ. प्रमोद कुमार नायक का साहित्य संजीवनी के समान प्रतीत होता है। नायक जी का संपूर्ण रचना संसार मानवीय मूल्यों की सुन्दरतम अनुभूति है।

शोध सारांश **शोध–प्रबंध** की पूर्णता का सूचक है। जिसमें शोधार्थी अपने शोध का सार, महत्त्व, उपयोगिता एवं विषय से संबंधित नूतन दृष्टिकोण अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक है **"व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्यबोध (2016 ईस्वी तक रचित रचनाओं के संदर्भ में)"**।

यह शोध–प्रबंध भूमिका एवं उपसंहार के अतिरिक्त पाँच अध्यायों में स्वरूपायित है। भूमिका के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का स्वरूप एवं वर्गीकरण, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का प्रतिपाद्य एवं उसकी विशेषताएँ तथा आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य का संक्षिप्त परिचय आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथम अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व।

इस अध्याय के अन्तर्गत डॉ. नायक के जीवन परिचय, शिक्षा, व्यक्तित्व, कार्यक्षेत्र, सम्मान तथा पुरस्कार आदि विविध पक्षों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए उनके रचना संसार पर प्रकाश डाला गया है। **'शबरी', 'गर्त्तः'** तथा **'दारिद्र्यशतकम्'** नामक उन के तीन पद्य काव्य हैं, जिनमें 'शबरी' तथा 'गर्त्तः' ये दोनों व्यंग्य कविताओं का संग्रह हैं। नारी विमर्श, परोपकार, पुरुषार्थ चतुष्टय, पर्यावरण चेतना, विविधता में एकता, राष्ट्रभक्ति, देशप्रेम एवं भारतीय संस्कृति आदि विषयों को कविवर नायक ने अपनी लेखनी का आधार बनाया है। आधुनिक समाज में विभिन्न समस्याओं रूपी गर्त से सामाजिकों को निकालने की कामना से नायक जी ने पद्यों की रचना की है। शत संख्या में लघु कविताओं का समाहार है **'दारिद्र्यशतकम्'** । इस संबंध में नायक जी का कथन है–

''एताः कविताः नहि, मम जीवनानुभवाः। यत्र कैतवं नास्ति। कवियशःप्राप्तये स्पृहापि नास्ति। आबाल्याद् दारिद्रयेण नितरां दग्धस्य अभिव्यक्तिर्या खलु भाग्यनाम्ना उपहसिता, कर्मफलशब्देन निर्भर्त्सिता, प्रारब्धसान्त्वनया विनिन्दिता''।

डॉ. नायक के चार प्रसिद्ध कथासंग्रह हैं–**उवाच कण्डुकल्याणः, कथासप्ततिः, स्वर्गादपि गरीयसी एवं स्वर्गपुरे।** हास्यकथाओं के संग्रह ''उवाच कण्डुकल्याणः'' में 29 कथाओं का संक्षिप्त विवेचन प्रथम अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। ये सभी कथाएँ रोचक होने के साथ ही व्यावहारिक समस्याओं की प्रतिपादक तथा प्रहसनपरक हैं। नवीन संस्कृत कृतिकारों के द्वारा हास्यकथा रचना में वैसा प्रयास नहीं किया गया। अतः हास्यरसप्लुत संस्कृत वाङ्मय में डॉ. प्रमोद कुमार का यह प्रयास साहित्य जगत् में अनुपम है।

70 लघुकथाओं से अभिमण्डित **''कथासप्ततिः''** नामक ग्रन्थ में व्यंग्य के माध्यम से समाज के विभिन्न रूपों का सुंदर चित्रण किया गया है। इन कहानियों में भाव जितने गंभीर हैं, उतनी ही भाषा भी सरल तथा भावों को अभिव्यंजित करने वाली है। कर्त्तव्यपरायणता, प्रेम, देशभक्ति, परोपकार, सेवा, त्याग, समानता, सत्संगति, स्वतंत्रता, माता–पिता तथा गुरु की सेवा आदि मंजुल

भावों का सम्मिश्रण नायक जी की कथाओं का वैशिष्ट्य है। विभिन्न सामाजिक संबंधों के इर्द–गिर्द घूमती कहानियों में मानवीय मूल्यों के लगभग सभी पक्षों के दर्शन होते हैं।

'स्वर्गपुरे' नामक व्यंग्य उपन्यास की रचना करके नायक जी ने संस्कृत उपन्यास जगत् में एक अद्वितीय भिन्न धारा का बीज रोपित किया। इस उपन्यास के कथानक की पृष्ठभूमि इस प्रकार है, जहाँ सर्वत्र कलुषित समाज के कलंकित रूप का उद्घाटन करके स्वस्थ तथा स्वच्छ समाज के गठन की चेष्टा की गई है।

''स्वर्गादपि गरीयसी'' व्यंग्य कथासंग्रह है, जिसके अन्तर्गत **यम–बहुपतिका–संवादः** में आधुनिक समय में नारी की अवस्थिति, उसका अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होना, यौतुक–प्रथा, विधवा–विवाह तथा राजनीति में सक्रिय साझेदारी का वर्णन है। **साक्षात्कारः** कथा में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि योग्यता का मूल्य गौण है। पद प्राप्ति में भ्रष्टाचार व्याप्त है। ज्ञानहीन जन उच्च पद पा रहे हैं। **'स्वर्गादपि गरीयसी'** कथा में अपनी मातृभूमि को ही सबसे बढ़कर दिखाया गया है। कथाकार नायक जी कहते हैं–**वस्तुतः जन्मभूमिरेषा में अतीव महीयसी। वैदेशिकाः अभद्राः मन्दाः च।**

'आमन्त्रणम्' कथा में एक ऐसे पिता की अवस्था का चित्रण किया गया है, जो अपनी पुत्री का विवाह इंजीनियर से करना चाहता है किन्तु उसके पास दहेज राशि की व्यवस्था नहीं है साथ ही कवियों की जर्जर आर्थिक स्थिति को भी प्रस्तुत कथा में अभिव्यक्त किया गया है– **यथा कथंचित् कवितालिखनेन यः कोऽपि कविः भवितुमर्हति। कवित्वेन प्रशंसाऽपि मिलेत्। परन्तु धनानि कुतः आगमिष्यन्ति?**

निमित्तमात्रम् कथा वर्तमान साधु–संन्यासियों का कच्चा चिट्ठा खोलती है। धर्म के नाम पर पाखण्ड व्यभिचार तथा धनलोलुपता को इस कथा में दर्शाया गया है। **'परीक्षा'** नामक कथा में मिलावटखोरी, आरक्षण व्यवस्था, भ्रष्ट राजनीति तथा सेवा के नाम पर व्यवसाय करने वाले चिकित्सक पर व्यंग्य किया गया है। सम्प्रति संस्कृत भाषा के महत्त्व में जो गिरावट आई है तथा विदेशी भाषा के प्रति जो मोह बढ़ा है उसे **आदिभाषाप्रसंगे** कथा में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

अस्माकम् आदिभाषा सर्वदा वसुन्धैव कुटुम्बकम् इति प्रचारयति। अतः तेनैव मन्त्रेण प्रचोदिताः वयं विश्वं कुटुम्बीकुर्मः। यदर्थं वैदेशिकसंस्कृतौ अनुदिनं प्रबलः आग्रहः अस्माकं परिलक्ष्यते।

'सेवकः' कथा में आज के युग में सेवकों के बढ़ते प्रचलन तथा उनके द्वारा की गई अनुशासनहीनता का वर्णन है। इस व्यंग्य कथा संग्रह में समस्याओं के समाधान पर भी प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सामाजिक मानवीय मूल्यबोध।

प्रस्तुत अध्याय में मानवीय मूल्यों की परिभाषा तथा उद्गम स्रोत पर प्रकाश डाला गया है। तदुपरान्त सामाजिक मानवीय मूल्यबोध पर विस्तार से चर्चा की गई है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के आचरण के लिए कुछ प्रतिमान अथवा धारणाएँ निर्मित करता है तथा चाहता है कि इन प्रतिमानों के अनुसार ही व्यक्ति आचरण करे। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों से संबंधित व्यवहारों के प्रतिमान समाज द्वारा बनाए जाते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज आचार–विचार के नियमों की जन्मस्थली है। यथा– देशभक्ति, बड़ों का सम्मान करना, सत्य बोलना, त्याग, सेवा तथा परोपकार आदि। द्वितीय अध्याय में सामाजिक समरसता के अन्तर्गत आदर्श प्रेम, मातृत्व भाव, विधवाओं की स्थिति, स्वतंत्रता का महत्त्व, सदाचार, सत्संगति, ईमानदारी तथा भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। यथा–

दिवङ्गते पितरि बहुकष्टेन अग्रजः नवघनः अनुजं श्यामसुन्दरं पालितवान्। अवशिष्टं कृषिक्षेत्रं विक्रीय परगृहे श्रमं च कृत्वा तं विद्यालये महाविद्यालये च पाठितवान्।

आधुनिक युग में नारी उत्थान तथा उत्कर्ष हेतु विभिन्न उपक्रम संचालित हैं। फिर भी समाज में नारी को उचित सम्मान तथा स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है। नारी की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रांकन नारी चेतना तथा अत्यन्त संवेदनशील विषय यौतुक प्रथा के अंतर्गत किया गया है।

शरीरमधुना अहरहः ताडनेन कथं क्षीणं भवति। मातः। तव स्नेहलालिता मल्लिका अद्य पाषाणप्रतिमात्वेन रूपान्तरिता भवति।

दलित मानवता के स्वर दलित चेतना में मुखर रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। समाज में समानता, भाईचारा एवं मानवीय स्वतंत्रता का इसमें पुरज़ोर समर्थन किया गया है। वैदिक काल से ही हिन्दु धर्म में वर्ण व्यवस्था सामाजिक विभाजन का आधार स्तम्भ रही है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी जाति, धर्म, गोत्र, संप्रदाय, प्रांत तथा भाषा के आधार पर भेदभाव किया जा रहा है, जिसका सटीक वर्णन वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत किया जा सकता है–

बुद्धिमान् शास्त्रसंकलको जनो जातः
ईश्वरस्य शतदलविमण्डितपद्ममुखात्,
दर्पी बली, राजदण्डधारी
प्रजायते नितरां वाहुभ्याम्।
असौ वैश्यो जायते ऊरुभ्याम्
किन्तु सखे!
ईश्वरस्य रत्नराशिविमण्डिते
सुदीर्घे शरीरे
नासीत् स्थानं दरिद्रस्य कृते।

धर्म के नाम पर की जा रही हिंसा, व्यभिचार तथा बाह्य आडम्बर का वर्णन धर्माडम्बरता बिन्दु के अंतर्गत किया गया है। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन अर्थात् भारतीय संस्कृति कर्मप्रधान है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वयं है। व्यक्ति जीवन में जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह उसके कर्मों का ही प्रतिफल होता है। बिना फल की इच्छा किए निरंतर कर्मशील बने रहने पर व्यक्ति अपने गंतव्य पर एक दिन पहुँच ही जाता है। कर्म के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपने जीवन में सदैव क्रियाशील बने रहने की प्रेरणा कर्म प्रधानता शीर्षक में दी गई है।

तृतीय अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक मानवीय मूल्यबोध।

संस्कृति एक बहु आयामी शब्द है, जिसमें कई तत्त्वों का समावेश है यथा– आध्यात्मिकता, विश्वकल्याण, समन्वयवादी प्रकृति, पर्यावरण संरक्षण, विश्वबंधुत्व की भावना, सहिष्णुता, उदारता तथा विविधता में एकता आदि। समाज तथा संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय संस्कृति मूल्याधारित है। समस्त मानव जाति के कल्याणार्थ मनुष्य ने अपनी बौद्धिक क्षमता से शान्ति, क्षमा, प्रेम, दया, परोपकार, सेवा, त्याग, उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठता, ईमानदारी तथा संयम आदि मानवीय मूल्यों का आविष्कार किया है। तृतीय अध्याय के अंतर्गत देशभक्ति एवं देशप्रेम की राष्ट्रीय भावना को निम्न प्रकार से दर्शाया गया है–

त्यागस्य सेवायाः मूर्तिमान् विग्रहः महात्मागान्धिः, तस्य दृष्ट्या मानवस्य सेवा देशस्य सुरक्षा च प्रकृतपक्षे माधवसेवा आसीत्।

मेघ, वृक्ष, नदी, वायु, सूर्य, चन्द्र तथा पशु–पक्षी आदि संपूर्ण प्रकृति परोपकार के कार्यों में लगी हुई है। इन्हीं मंजुल भावों को परोपकार की भावना विषयान्तर्गत अनुभव किया जा सकता है–

स्वकीयं सुखजालं, विवर्द्धितमनोभावं
विस्मृत्य, यः सामग्रिक–भावेन
आत्मानं नियोजयति
सः मेघः
निःस्वार्थपरबन्धोः परमम् उदाहरणम्।

सृष्टि के विकास तथा प्रगति में दया, प्रेम, त्याग, सेवा तथा सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों का अत्यधिक महत्त्व है। समाज मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों पर ही टिका हुआ है। लोक कल्याण तथा जनसेवा के कार्यों को सेवापरायणता शीर्षक के अन्तर्गत देखा जा सकता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर भी उक्त अध्याय में विमर्श किया गया है तथा शिक्षकों की अर्थ परायण मनोवृत्ति पर कुठाराघात है। भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है, तथा इस पर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव यथा– अन्तर्जातीय विवाह एवम् अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का बढ़ता प्रचलन आदि को प्रदर्शित किया गया है। उच्छृङ्खलता विषय के अन्तर्गत महिलाओं की चरित्रहीनता, चौरकर्म एवं पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को उठाया गया है–

प्रकृतिः विनष्टा साध्वी
तपोधना भुवनवत्सला
सभ्यतायाः उत्थानव्याजेन
अस्माभिः सुसभ्यैः (?)
मारितास्ते वनजीवाः प्रकृतिसन्तानाः
उत्सारिताः आदिजनाः सरलाः सुशान्ताः।

देवभूमि भारत दुनिया का विशाल एवं घनी आबादी वाला ऐसा देश है, जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, संप्रदाय, प्रान्त, भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज़, वेशभूषा, खान–पान तथा जीवन शैली वाले लोग शान्ति तथा सद्भाव से निवास करते हैं। बाह्य रूप से अनेक विविधताएँ होने पर भी देशवासियों के अन्तस् में एकता की अजस्र धारा प्रवाहित होती है, इन्हीं मनोभावों को विविधता में एकता शीर्षकान्तर्गत स्पष्ट किया गया है–

एका जातिः मनुष्यस्य जातिः
एका सृष्टिरीश्वरस्य सृष्टिः

एको धर्मो मानवीयधर्मः
एकं शास्त्रमीश्वरस्य वाक्यम्
समानो मन्त्रः समितिः समानी।

चतुर्थ अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में राजनीतिक मानवीय मूल्यबोध।

'राजनीति' अर्थात् नीति विशेष के द्वारा शासन करना। राजनीति समाज का अविभाज्य अंग है, जिसके द्वारा जनसामान्य का सामाजिक एवं आर्थिक विकास होता है। सनातन धर्मग्रन्थ रामायण तथा महाभारत में भी राजनीति के साक्ष्य मिलते हैं। अतः राजनीति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भारतीय संस्कृति में राजनीति सर्वदा मानव धर्म की पोषक तथा आदर्श लोकतंत्र की प्रतिष्ठापक रही है।

साहित्य समाज का दर्पण है, जिसमें समाज का यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। साहित्यकार अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से आदर्श लोकतंत्र की स्थापना का प्रयास करता है दूसरी ओर साम, दाम, दण्ड तथा भेद की राजनीति का वास्तविक स्वरूप जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस अध्याय में प्रजातान्त्रिकता, राजतान्त्रिकता, पाखण्डिता, भ्रष्टाचार एवम् आतंकवाद जैसे समसामयिक विषयों का विवेचन इस प्रकार किया गया है।

राष्ट्रहित तथा विकास की दृष्टि से प्रजातन्त्र एक सशक्त माध्यम है किन्तु तुच्छ स्वार्थों ने शासन की इस विधा को भी दूषित कर दिया है–

असदुपायेन यो निर्वाचितः
तमनुगच्छति लोकः,
स्तुतिं गायति देशः,
असावेव नीतिनिर्द्धारकः,
राष्ट्रियपुरुषः।

निर्वाचन के समय उम्मीदवार जनता को भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रलोभन देते हैं। धन तथा शक्ति के दुरुपयोग से चुनाव जीतकर सत्ताधरी बन जाते हैं। आज राजनीति एक प्रकार का व्यापार बन गई है। पद एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए किसी भी सीमा तक जाया जा सकता है।

प्रजातंत्र की सफलता जनता की खुशहाली पर निर्भर करती है और नेता जनता का सेवक होता है परन्तु वर्तमान राजनीति में राजतान्त्रिकता अर्थात् निरंकुशता व्याप्त है–

सखि रे!
राष्ट्रस्य सर्वोच्चोपाधिस्तमेवालंकरोति
योऽसौ प्रतिदिनं
वनं खनिम् अथ सागरगर्भं
निःशेषीकरोति सहजेन।
राष्ट्रकोशः शून्यायते येन,
गोपनीयं तथ्यं शत्रवे प्रदाय,
सुइस्व्याङ्के प्रभूतं धनं
संस्थाप्यते येन,
स इदानीं महनीयो राष्ट्रस्य नायकः।

प्रस्तुत कविता में डॉ. नायक ने शासन व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों पर प्रकाश डाला है। सत्ता प्राप्त कर लेने के पश्चात् नेता विश्वबन्धुत्व तथा राष्ट्रसर्वोपरि की भावना का परित्याग करके स्वार्थपूर्ति में लिप्त हो जाता है। सार्वजनिक सम्पत्ति का प्रयोग लोककल्याणकारी कार्यों में नहीं करके व्यक्तिगत तथा निजी हित में करने लगता है।

पाखण्डिता शीर्षक में नायक महोदय दोहरे चरित्र वाले लोगों के विषय में कहते हैं कि ये लोग दूसरों के सम्मुख स्वयं को अलग ही रूप में प्रस्तुत करते हैं। पाखण्डी अपने पास श्रेष्ठ चारित्रिक गुणों, सिद्धान्तों, मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता के होने का मात्र दिखावा करता है। वास्तविकता में वे उसके पास नहीं होते हैं। जो व्यक्ति जितना अधिक सदाचरण का दिखावा करता है वह उतना ही अधिक भ्रष्ट होता है। यथा–

कौतुकेन वरयति का रमणी
रूपवती विभवशालिनी,
गोपनेन प्रणयलिप्सया
परित्यज्य पतिदेवं,
स्वेच्छया परपुरुषान् यापयितुं रात्रीः।
का वा रुष्टा धनिकनन्दिनी
विहाय निसंसारं स्वामिनं तनयं,
रमते नृत्यशालायां मदिरापायिनी
समुल्लङ्घ्य परंपरां नारीत्वं सकलम्।।

उपर्युक्त कवितांश में आधुनिक वैभवशालिनी महिला का चित्रण किया गया है।

भ्रष्टाचार विषयान्तर्गत रिश्वत, काला–बाज़ारी, चुनावों में धांधली, अनैतिकता, असहिष्णुता, कर्त्तव्य उपेक्षा, पद एवं सत्ता का दुरुपयोग जैसे अनैतिक तथा भ्रष्टाचरण को दर्शाया गया है। अपने दैनिक जीवन में भ्रष्टाचार के कई उदाहरणों को देखा जा सकता है। जैसे– न्यायपालिका में, खेलों में, सेना में, संचार माध्यमों में, राजनीति में, नौकरशाही में, कॉरपोरेट जगत में, शिक्षा के क्षेत्र में तथा चिकित्सा के क्षेत्र में। भ्रष्टाचार दिनोंदिन अपनी जड़ें समाज में फैला रहा है। इस संबंध में नायक जी का कथन द्रष्टव्य है–

चीत्करोति पत्नी
उरुकस्य शून्यकोशं विलक्ष्य
उत्कोचार्थं विना निरर्थकः उद्योगः
हीनवीर्य्य उद्योगिपुरुषः।।

भ्रष्टाचार इस सीमा तक हावी हो चुका है कि मनुष्य ईश्वर को भी रिश्वत का लालच दे रहा है। झूठे आश्वासन तथा चुनावी प्रपंच से ईश्वर को भी छला जा रहा है।

भगवन्! यदि अस्मिन् निर्वाचने मम जयलाभः स्यात्, तर्हि अवश्यं भवतः दुःखं हरिष्यामि। एतस्य प्राचीनमन्दिरस्य पुनरुद्वारं निश्चितं करिष्यामि। नवीनमन्दिरे भवतः पूजादिकं कृत्वा धन्यो भविष्यामि। अतः मयि दयस्व प्रभो! मयि दयस्व।

समसामयिक गतिविधियों के सूक्ष्मावलोकन में सिद्धहस्त नायक जी की दृष्टि में आतंकवाद मात्र आपराधिक एवं हिंसात्मक कुकृत्य ही नहीं अपितु मानवीय मूल्यों का पतन है, जो मानव सभ्यता तथा विकास के लिए खतरा है। आपकी रचनाओं में मानवीय संबंधों को तार–तार कर देने वाली कथाएँ हैं, राजनीति के छद्मवेश को उजागर करने वाले प्रसंग हैं, पाश्चात्य सभ्यता की होड़ में अपनी संस्कृति की उपेक्षा है, धर्म के नाम पर सर्वत्र व्याप्त पाखण्ड तथा आडम्बर है, अकर्मण्यता, अनुशासनहीनता और मूल्यहीनता है। वे कहते हैं कि इस लोक में मनुष्यता का अभाव दिखाई देता है–

इह लोके
निरीक्ष्यते उत्कटः अभावः।
अभावस्तु नैव धनस्य
नापि ज्ञानस्य
नैव पुनः अधिकारस्य।
इह लोके

यः अभावः

सः खलु मनुष्यत्वस्य।

पंचम अध्याय : व्यंग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में आर्थिक मानवीय मूल्यबोध।

पंचम अध्याय में कवि अर्थ प्रधान युग का यथार्थ चित्रांकन अपनी रचनाओं में करते हैं। वर्तमान जीवन मूल्यों में अर्थ की महत्ता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। धनी जन समाज में यथोचित सम्मान तथा स्थान प्राप्त करता है, सज्जन, सच्चरित्र तथा सुसभ्य कहलाता है और धनहीन का जीवन शोचनीय अवस्था को प्राप्त होता है। भौतिक जगत में जीवनयापन के लिए अर्थ महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक है। प्राचीनकाल में भी पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत अर्थ की गणना की जाती थी। अर्थ ही समाज में व्यक्ति के पद तथा प्रतिष्ठा का सूचक होता है। व्यक्ति के जीवन को अर्थ ही नियंत्रित, नियोजित एवं परिचालित करता है।

सम्प्रति समाज दो वर्गों में विभक्त हैं (1) शोषक वर्ग तथा (2) शोषित वर्ग। आर्थिक विषमताओं के कारण समाज का एक वर्ग सुख–सुविधाओं का हकदार बन गया तथा दूसरा वर्ग जो आकार में बड़ा था साधनहीन होकर अभावग्रस्त हो गया। प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में अर्थ सभी के सर चढ़कर बोल रहा है नैतिकता, ईमानदारी, सत्य, सदाचार, कर्त्तव्यनिष्ठा, प्रेम, त्याग, सेवा तथा मानवीय मूल्य जैसे शब्द खोखले प्रतीत होते हैं तथा इनके स्थान पर चोरी–डकैती, हत्या, गबन, लूटपाट, हिंसा तथा बढ़ती आपराधिक प्रवृत्तियाँ मूल्य–विघटन के ही उदाहरण हैं। पंचम अध्याय के अन्तर्गत आर्थिक मूल्यबोध का अध्ययन कृषि प्रधानता, पुरुषार्थ की सिद्धि, अर्थोपार्जन में नारी की भूमिका, आर्थिक शिक्षा तथा श्रमिक की भूमिका बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है। व्यंग्य कवि नायक जी ने कृषि प्रधान भारत देश में कृषकों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है–

कृषिक्षेत्रे कर्मरतः कृषकः
प्रकृतेः आदिमसन्तानः
कृषिक्षेत्रं विना अन्यत् किमपि
कृषकः नैव जानाति
विश्वप्राणस्य प्रतीकः कृषकः हलधररूपः
नितराम् अभावस्य कादम्बरीं पीत्वा
विभवस्य प्राचुर्यं वितरति अकुण्ठचित्तेन
तत्रैव तस्य आनन्दः तस्य जन्मनः साफल्यम्।

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है। कृषक त्याग तथा तपस्या का दूसरा नाम है। चिलचिलाती धूप हो, मूसलाधार बारिश या कड़ाके की ठण्ड भी कृषक की साधना को भंग नहीं कर पाते। वह सदैव अपने कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर रहता है। प्रकृति की आदिम सन्तान कृषक स्वयं के सुख की अवहेलना कर सदैव अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करता हुआ संत–महात्माओं के समान जीवनयापन करता है। आधुनिक विष्णु के समान सभी का पालन पोषण करता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थं चतुर्विधम्, हिन्दु दर्शन में चार प्रकार के पुरुषार्थ माने गए हैं– धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा दी गई है। भारतीय समाज में मानव जीवन की कल्पना पुरुषार्थ के अभाव में संभव नहीं है। जो कार्य मानव जीवन को नियंत्रित अथवा सुव्यवस्थित करे वही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ मानव जीवन के लिए निर्धारक लक्ष्य है।

आज की नारी राजनीति, कारोबार, कला तथा नौकरियों में पहुँचकर नये आयाम गढ़ रही है। आर्थिक दृष्टि से नारी अर्थचक्र के केन्द्र की ओर बढ़ रही है। आज का युग स्त्री जागरण का युग है। स्त्री अपराजिता है। ग्रामीण क्षेत्र हो चाहे शहरी क्षेत्र भारतीय अर्थ व्यवस्था में महिलाएँ अग्रणी भूमिका निभाती हैं। शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं में नवीन चेतना का संचार किया है। वैश्वीकरण के इस अर्थप्रधान युग में वर्जनाओं को तोड़ते हुए स्त्रियाँ सफलता के नित नए सोपान चढ़ती जा रही हैं। पति के स्वर्गवासी होने पर अल्पशिक्षित महिला रूपश्री अपने नवजात पुत्र के पालन–पोषण के लिए सेविका वृत्ति का आश्रय लेती है–

कुमारः यदा पंचवर्षीयः आसीत्, तदानीं पिता रायमोहनः स्वर्गमगच्छत्। अतः बहुकष्टेन मात्रा देवीदत्तया कुमारः पालितः पोषितश्च। परगृहे गृहकर्म कृत्वाऽपि देवीदत्ता यथा स्वकीयं पुत्रं पालयति स्म, तं दृष्ट्वा न कश्चन विवेचयितुं क्षमः स्यात् अयं पितृहीनः इति।

कवि नायक वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–

उद्योगप्रदाने असमर्था विद्या
निष्फला अनादृता जगति
न काऽपि पठति अथ स्पृहयति।
अतः यया सुगमायते धनागमः
समुपलभ्यते अखण्डितः अधिकारः
सा एव विद्यापदवाच्या
इदानीन्तनसंसारचक्रं तामेव अपेक्ष्यते।

उद्योग प्रदान करने में असमर्थ विद्या संसार में निष्फल तथा अनादृत होती है, कोई भी ऐसी विद्या को पढ़ना नहीं चाहता। जिससे धन का आगम सुगमतापूर्वक हो ऐसी अर्थात् अर्थोपकारी शिक्षा की ही संसार अपेक्षा करता है। वैश्वीकरण के इस दौर में युवा पीढ़ी को गुणवत्तापरक नवाचार युक्त तथा कौशलयुक्त शिक्षा प्रदान की जाए ताकि प्रतिस्पर्धा के इस दौर में आर्थिक क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की जा सके। शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास करना है। अतः पाठ्यक्रम में कला को जोड़कर व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर रोज़गार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध करवाए जाएँ। यथा– स्वास्थ्य देखभाल, बैंकिंग और वित्त, कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी, व्यापार, पर्यटन, खाद्य और पेय तथा फैशन डिजाइनिंग आदि।

यस्य स्वेदं पीत्वा पीत्वा
पृथुलकायः ईश्वरः
यस्य श्रमेण पठति
ईश्वरस्य पुत्रः सुदूरे विदेशे,
यस्य त्यागेन भ्रमति
परमानन्देन ईश्वरी,
व्योमयानेन विदेशिना यूना शुना सह
स एव दरिद्रो मृतोऽनाहारेण।

राष्ट्रनिर्माण में अग्रणी भूमिका निभाने वाला, कर्त्तव्यनिष्ठ श्रमिक पसीना बहाकर अपने स्वामी को पृथुलकाय बना देता है। श्रमिक के परिश्रम के फलस्वरूप ही स्वामी का पुत्र विदेश में रहता है तथा स्वामिनी आनन्दपूर्वक व्योमयान के माध्यम से विदेश यात्रा का सुख भोगती है और वह दरिद्र क्षुधा से व्याकुल होकर अपने प्राण त्याग देता है। कमज़ोर आर्थिक स्थिति के चलते श्रमिक सभी क्रियाकलापों की धुरी होते हुए भी अभावग्रस्त रहता है। दो वक्त की रोटी के लिए भी संघर्षशील श्रमिक सर्वत्र शोषण का शिकार रहता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के उत्तुंगशिखरभूत क्रान्तिकारी व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के ऐसे युग पुरुष हैं, जहाँ संस्कृत संस्कृति का भास्कर अपनी अनंत रश्मियों से प्रकाशमान है। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न डॉ. नायक ने अपनी सतत सृजनशीलता से संस्कृत साहित्य संसार को समृद्ध किया है। साहित्य साधना में सतत प्रयत्नरत नायक जी कहते हैं–

साहित्यसाधना धनिकानां पादतले न भवति अथ च साहित्यिकः स्वाभिमानी भवेत् इति तस्य परमः विश्वासः। पाठकानाम् अभिमतं खलु साहित्यिकस्य श्रेष्ठः पुरस्कारः इति चिन्तयति।

साहित्य की प्रत्येक विधा में निष्णात नायक जी संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार में निरंतर क्रियाशील प्रतीत होते हैं साथ ही संस्कृत भाषा के उज्ज्वल भविष्य के लिए भी प्रयासरत हैं। व्यंग्य के माध्यम से वर्तमान समय के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा पर्यावरणीय चिंतन को अत्यंत सरल शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं। आपने अपनी सभी रचनाओं का प्रणयन सरल तथा सुबोध भाषा में किया है। आपका भाव पक्ष जितना प्रबल है। कलापक्ष भी उतना ही सौष्ठवपूर्ण है। आपकी शैली में कहीं भी क्लिष्टता, दुरुहता, शब्दाडम्बर अथवा पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं है। वैदर्भी रीति को प्रधानता देते हुए सर्वत्र प्रसादगुण युक्त सहज तथा सरल पदावली का प्रयोग प्रशंसनीय है। छन्दालंकारों का प्रयोग भी प्रयासपूर्वक न होकर सहज ही है। नायक जी ने अपनी कथाओं में पात्रों अथवा चरित्रों के नाम भी विशेष दृष्टिकोण से रखे हैं। चरित्रों के नाम से ही उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का बोध पाठकों को हो जाता है।

डॉ. नायक के रचना संसार को एक शोध प्रबंध में समेटा नहीं जा सकता क्योंकि इसमें शोधकार्य की अनेक संभावनाएँ प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत शोध में नायक जी की रचनाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक मानवीय मूल्यबोध पर प्रकाश डाला गया है। यह शोध कार्य शिक्षा में भी उपयोगी है क्योंकि लघु कथाओं एवं कविताओं के माध्यम से नायक जी मानवीय मूल्यों की तथा व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देते हैं। अतः शिक्षकों के लिए भी यह उपादेय है साथ ही भावी शोधार्थी भी इस शोधकार्य से लाभान्वित होंगे। इति शम्।

♦♦♦♦

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

डॉ. प्रमोदकुमारनायक की कृतियां

1. अधरं मधुरम्, सवितादाशः कथाभारती, नरेन्द्रपुर, कोलकाता 103, 2020
2. उवाच कण्डुकल्याणः, लोकभाषाप्रचारसमितिः, शरधाबालि, पुरी, ओडिशा, 1998
3. कथासप्ततिः, लोकभाषाप्रचारसमितिः, शरधाबालि, पुरी, ओडिशा, 2003
4. गर्त्तः, लोकभाषाप्रचारसमितिः, शरधाबालि, पुरी, ओडिशा, 1998
5. तव कथामृतम्, प्रकाशाधीन
6. दारिद्र्यशतकम्, श्रीमतीसवितादाशः, कथाभारती, 73/17, आचार्यपल्लीनरेन्द्रपुरम्, कलिकाता–103
7. शबरी, सबितादाश, चधेयपल्ली, गंजमा, ओडिशा, 2004
8. स्वर्गादपि गरीयसी, लोकभाषाप्रचारसमितिः, शरधाबालि, पुरी–2, ओडिशा, 2003

कोश एवं व्याकरण ग्रन्थ

9. अमरकोश, प्रो. सत्यदेव मिश्र, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
10. अमरकोष, पं. रामतेजपाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008
11. प्रौढ़ रचनानुवादकौमुदी, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004
12. मानक हिन्दीकोश, रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आगरा
13. संस्कृत व्याकरण, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाषबाजार, मेरठ–2015
14. संस्कृत साहित्य कोश, डॉ. राजवंश सहाय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2009
15. संस्कृत हिन्दीकोश, वामन शिवराम आप्टे, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2012
16. सर्वधर्म कोश, डॉ. रामस्वरूप रसिकेश, चौखम्बा इण्डो वेस्टर्न पब्लिशर्स, वाराणसी, 2009
17. सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी, 1958

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

18. अग्निपुराण, डॉ. तारिणीश झा, हिन्दीसाहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1998
19. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
20. अभिराजयशोभूषणम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006
21. काव्यप्रकाश, आचार्यमम्मट, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, प्र.सं. 2031
22. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, संवत् 2042
23. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, डॉ. सत्यव्रत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1970

सहायक ग्रन्थ (संस्कृत साहित्य का इतिहास)

24. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, पूणे
25. आधुनिक संस्कृत साहित्य, डॉ. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहबाद, 1971
26. आधुनिकसंस्कृतसाहित्य, दयानन्द भार्गव विपुल, राजस्थानग्रन्थकार, जोधपुर
27. आधुनिक–संस्कृत–साहित्येतिहासः, कलानाथ शास्त्री, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर 2011
28. आधुनिकसाहित्य : मूल्य–मूल्यांकन, जैन निर्मला, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
29. दशरूपक, धनंजय, साहित्य भण्डार, सुभाषबाज़ार, मेरठ, 1961
30. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि, मोतीलाल बनारसी दास, नईदिल्ली, 1963
31. नीतिशतकम्, श्रीभर्तृहरिविरचित, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी–1
32. भारतीय संस्कृति, शर्मा उमाशंकर, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 2008
33. मनुस्मृतिः, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, बनारससिटी, 1992
34. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीरभारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नईदिल्ली 2006
35. मूल्यमीमांसा, पाण्डेय गोविन्दचन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1973
36. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जयकिशनप्रसाद, परिमल पब्लिकेशन, नईदिल्ली
37. श्रीमद्भगवदगीता, गीताप्रेस गोरखपुर
38. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010
39. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001
40. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–3
41. संस्कृतसाहित्य–बीसवीं शताब्दी, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभाप्रकाशन, नईदिल्ली
42. हितोपदेशः, नारायण पण्डित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

शोध ग्रन्थ

43. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन 2013 ईस्वी तक प्रकाशित रचनाओं के सन्दर्भ में, ज्योति शर्मा, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा 2019
44. कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र के कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (2009 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में), अशोक कंवर शेखावत, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2015–16
45. कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम् (2012 तमखिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे), समयसिंह मीना, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2018

46. राजस्थान में आधुनिक संस्कृत गद्य–साहित्य के विविध आयाम : एक अध्ययन (वर्ष 1947–2008) कल्पना शृंगी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2012

संस्कृत शोध पत्रिकाएँ एवं अन्य पत्रिकाएँ

47. अमृतभाषा, अमृतभाषाप्रकाशिनी, कालिदासपुर, बालेश्वर, ओडिशा
48. अर्वाचीनसंस्कृतम्, देववाणी परिषद्, दिल्ली
49. आरण्यकम्, संस्कृतप्रसारपरिषद्, आरा, विहार
50. कथासरित्, कथाभारती, 57 बसन्तबिहार, झूंसी, इलाहाबाद
51. तुलसीप्रज्ञा, जैनविश्वभारती, लाडनूं, नागौर (राज.)
52. दृक्, दृग्–भारती, एम. आई.जी. रोड़, इलाहाबाद (उ.प्र.)
53. पद्यबन्धा, वीणापाणिसंस्कृतसमिति, लहारपुर, भोपाल (म.प्र.)
54. प्रियंवदा, लोकनाथरोड, पुरी, ओडिशा
55. प्रियवाक्, लोकनाथरोड, पुरी, ओडिशा
56. पेनेसिया इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल, पेनेसिया रिसर्च फाउण्डेशन, त्रिवेणी नगर, जयपुर–302018, राज.
57. मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, राजस्थान
58. लोकभाषासुश्री, लोकभाषाप्रचारसमितिः, सरस्वतीबिहार, बरपदा, भद्रक, ओडिशा
59. व्यासश्री, महर्षिव्यासदेव नेशनल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, राउरकेला, ओडिशा
60. वेदांजलि, वैदिक एजूकेशनल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी
61. शब्दार्णव, समन्वय पब्लिशिंग हाउस, मुजफ्फरपुर, बिहार
62. संस्कृतमंजरी, दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
63. संस्कृतविमर्शः, राष्ट्रिय संस्कृतसंस्थान, नईदिल्ली
64. सागरिका, सागरिकासमिति, महामनापुरी, वाराणसी (उ.प्र.)
65. सुश्री, शालिकोठा, जलेश्वर, बालेश्वर, ओडिशा
66. स्रग्धरा, श्रीजगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, श्रीबिहार, पुरी, ओडिशा
67. स्वरमंगला, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, राजस्थान

पाठ्यपुस्तक

68. रंजिनी, सप्तमकक्षायाः, संस्कृतपाठ्यपुस्तकम्, राजस्थान माध्यमिक शिक्षाबोर्ड
69. रुचिरा, तृतीयो भागः, अष्टमवर्गाय, संस्कृतपाठ्यपुस्तकम्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

70. रुचिरा, द्वितीयो भागः, सप्तमवर्गाय, संस्कृतपाठ्यपुस्तकम्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

71. रुचिरा, प्रथमो भागः, षष्ठवर्गाय, संस्कृतपाठ्यपुस्तकम्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

72. शेमुषी, प्रथमो भागः, नवमकक्षायाः, संस्कृतपाठ्यपुस्तकम्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

Websites

73. https://images.app.goo.gl/TA4zwvkzVhUC1dq69
74. https://images.app.goo.gl/tBKLt9GhVxAYxrqy7
75. https://images.app.goo.gl/GVjgWahNPEsgZc5N9
76. https://images.app.goo.gl/yyghwQsCJUsFAHxw7
77. https://images.app.goo.gl/dy1yHG7cYfPaJss46
78. https://images.app.goo.gl/MvUHdeWwZPYx2iHh6
79. https://images.app.goo.gl/Wt3myhiMAxkqc5tSA
80. https://images.app.goo.gl/SWxyd4fDPnbyc8K56

♦ ♦ ♦ ♦

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका /पुस्तक का नाम	ISSN NO.	राष्ट्रीय/ अन्तर्राष्ट्रीय
01.	आधुनिकसंस्कृत साहित्ये व्यङ्ग्यकवेः डॉ. प्रमोदकुमारनायकस्य सांस्कृतिकं मूल्यावबोधनम्	2020	व्यास श्रीः	2320–2025	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में नारी चेतना	2020	वेदांजली	2349–364X	अन्तर्राष्ट्रीय
03.	आधुनिक संस्कृत साहित्य में व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक का योगदान	2020	शब्दार्णव	2395–5104	अन्तर्राष्ट्रीय

Volume - XVII July-Dec 2020 ISSN 2320-2025

व्यासश्रीः
VYĀSAŚRĪḤ

A Bilingual Refereed Research Journal of Indology

(UGC CARE LISTED)

व्यासश्रीः Volume XVII

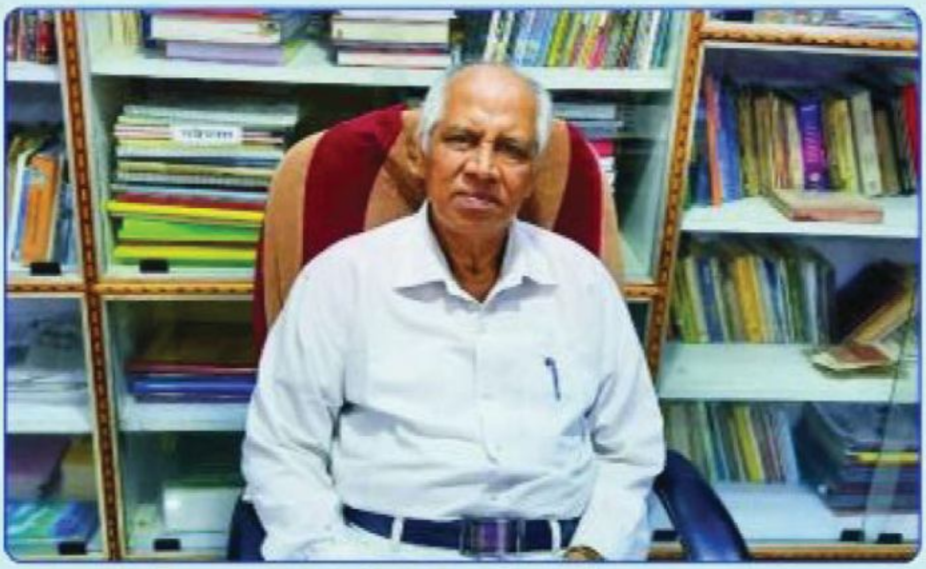

Professor Pramod Chandra Mishra felicitation volume

: Chief Editor :
Dr. Buddheswar Sarangi

Publisher
Maharshi Vyasadev National Research Institute
Vedavyas, Rourkela-4, Odisha
email : vyasasri12@gmail.com

विषयसूची

सृष्टिः	स्रष्टा	पृष्ठम्
अद्वैतवेदान्तदर्शनस्याधुनिके समाजे उपयोगिता	डॉ. राजेश्वरद्विवेदी	1
संस्कृतकाव्यशास्त्रे श्लेषविमर्शः - एका समीक्षा	ड. शिउलि वसु	8
वैदिकवाङ्मये शल्यतन्त्रम्	डा. गगनचन्द्रः दे	21
भारतीयजनजीवने वेदस्य प्रभावः	ड. पार्थसारथिः मुखोपाध्यायः	31
वेदान्तदर्शने जगतो विषये आचार्याणां विभिन्नधारणाः	डॉ. हरिदासः सूत्रधरः	37
वेदेषु चिकित्साविज्ञानम्	डॉ. बलभद्र उपाध्यायः	57
व्याकरणशास्त्रं प्रति विद्यासागरस्य योगदानम्	डॅ. गिरिधारी पण्डा, वापि साउ	66
अभिराजराजेन्द्रमिश्रस्य विजयपर्वणि ऐतिहासिकतथ्यानां विश्लेषणम्	जगदीशमालः	76
गीतगोविन्दस्य लोकप्रियता	डॉ. प्रतिभा मान्ना	87
''ईशा वास्यमिदं सर्वम्'' (ईश. १) इति मन्त्रस्य द्वैताद्वैतविशिष्टाद्वैतदर्शनदिशा अध्ययनम्	पलाशः घोडइः	94
आत्मादिख्यातिप्रत्याख्यानेनानिर्वचनीयप्रतिष्ठापनम्	त्रिदीपरायमण्डलः	105
शब्दार्थरत्नदिशा क्रियाप्राधान्यं तत्स्वरूपञ्च	सुदीपः मण्डलः	115
शब्दज्योत्स्नापाः संज्ञाप्रकरणस्य विमर्शः	सुमन्तः चौधुरी	135
नैयायिकवैयाकरणयोः नये कालतत्त्वमीमांसा	पिण्टु राउलः -	146
आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये व्यङ्ग्यकवेः डॉ. प्रमोदकुमारनायकस्य सांस्कृतिकं मूल्यावबोधनम्	शशीमथुरिया	168

 ISSN 2320-2025

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये व्यङ्ग्यकवेः डॉ. प्रमोदकुमारनायकस्य सांस्कृतिकं मूल्यावबोधनम्

शशीमथुरिया

विश्वंसंजीवन्याः सुरभारत्याः एव वैशिष्ट्यमिदमस्ति यदेषा भारतीयसंस्कृतिप्राणभूता अविचलनिर्मलधारा वैदिककालादारभ्य वर्तमानेऽपि नैरन्तर्येण प्रसृता सती सर्वेषां भारतीयानां चेतांसि ऐक्यसूत्रेण दृढमाबध्नाति। तदत्र वेदाः, वेदाङ्गानिः, रामायणं, महाभारतं, श्रीमद्भगवद्गीता,उपनिषद्साहित्यं, मनुस्मृतिप्रभृतयः धर्मशास्त्रीयग्रन्थाः नीतिशास्त्राणि, पंचतन्त्रं, हितोपदेशश्चेत्यादिकं बालसाहित्यं, नैकाः संस्कृतसूक्तयश्च वर्तमानजीवने अपि प्रासङ्गिका सत्परामर्शकाश्चेति निश्चप्रचम्। अतः कथनमिदं सर्वथा न्यायसंगतं यत् संस्कृतभाषा भारतीयसंस्कृतेः प्रतिबिम्बं भवति। सम्प्रति संसारे सर्वश्रेठकवयः संस्कृतसाहित्यस्य कलेवरम् अलङ्कर्तुं विवर्धयितुं च दत्तचित्ता संलक्ष्यन्ते। तेष्वन्यतमः विद्वान् युवव्यंग्यकविः डॉ. प्रमोदकुमारनायकः अद्वितीयः कश्चन लोकचैतन्योद्धारकः।

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यजगति काव्य-कथा-व्यंग्यलेखनं चेत्यादिबहुविधसाहित्यिकतविधासु सृझनशीलतायाः प्रकाशपुंजः, संस्कृतसाहित्याकाशे देदीप्यमाननक्षत्रसदृशश्चास्ति उत्कलीयकविरसौ नायकमहोदयः। तदीयरचनाः समाजस्य विभिन्नवर्गाणां प्रतिनिधित्वं निजीकृत्य पुरस्कुर्वन्ति यथार्थचित्रम्। नायकमहाभागस्य प्रकाशितकृतिषु त्रीणि पद्यकाव्यानि सन्ति - (१) शबरी (२) गर्त्तः (३) दारिद्र्यशतकं

च। डॉ. नायकस्य चत्वारः व्यग्यकथासंग्रहाः अपि सन्ति सुप्रसिद्धाः। ते यथा - १. उवाच कण्डुकल्याणः २. कथासप्ततिः ३. स्वर्गादपि गरीयसी ४. स्वर्गपुरे च। एतेषु कथासंग्रहेषु प्रथमे त्रयः सन्ति व्यंग्यकथासंग्रहाः, यत्र खलु समाजे प्रचलितकुसंस्काराणां समालोचनया सह हास्यरसानुप्राणितायाः अमृतधारायाः प्रसरणमेव डॉ. नायकस्य अस्ति साहित्यवैभवं प्रमुखं लक्ष्यं च। 'स्वर्गपुरे' इति उपन्यासकोटिकं तदीयं व्यङ्ग्यसंरचनं कलुषितसमाजस्य कलङ्कितरूपम् उपस्थाय प्रयतते सुस्थसमाजस्य निर्माणार्थम्।

सेयं भारतीयसंस्कृतिः विश्वस्य प्राचीनतमा संस्कृतिरिति नात्र किमपि विकत्थनम्। पाश्चात्यदेशानां संस्कृतयः काले काले विलुप्ताः अभवन्, परन्तु भारतीया संस्कृतिः अद्यापि स्वपरंपरागतस्वरूपेण लब्धसत्ताका इति वैशिष्ट्यमनन्यमस्याः। अन्यसंस्कृतीनां महत्त्वपूर्णतत्त्वानि स्वान्तः निजीकृत्य स्वस्य मूलमपि सुरक्षितमादधाति इति प्राच्यसंस्कृतिरेषा अनन्या एव। आध्यात्मिकता, विविधतायाम् एकता, सहिष्णुता, उदारता, विश्वकल्याणस्य कामना, वसुधैव कुटुम्बकमिति वैश्विकी भावना, पर्यावरणसुरक्षा, समन्वयवादिता, आध्यात्मिकताभौतिकतयोः समन्वयः, ग्रहणशीलता, निरंतरता चेत्यादयः अस्याः संस्कृतेः प्रमुखाः विशेषताः सन्ति।

संस्कृतिरेव विचारं चिन्तनं च परिपोषयन्ती मनुष्यस्य प्रकृतिं निर्माति। दया-प्रेम-त्याग-परोपकार-राष्ट्रियभावना-सेवाभावनादिभिः सांस्कृतिकमूल्यैः वयं मानवीयजीवनं सार्थकीकर्तुं समर्थाः भवामः। उच्चतरविकासपथे च अग्रेसराः भवामः। तदेतद्दृष्ट्या कविवरप्रमोदकुमारनायकस्य साहित्यसुरापगा मानवीयसांस्कृतिकजीवनमूल्यानाम् अक्षयनिधिस्वरूपा। तदत्र कानिचन उद्धरणानि उपस्थापयितुमिष्यन्ते अस्माभिः। तद्धि -

 ISSN 2320-2025

जन्मभूमिरेषा मे अतीव महीयसी। वैदेशिका। अभद्राः मन्दाः च। यदर्थं सामान्यकारणात् कारागारमानीतवन्तः। अत्र मातृभूमौ मे एतादृशानि कार्याणि नैव दोषरूपेण विविच्यन्ते। अहं खलु भाग्यवान्। अत्र मे जन्म धन्यं भवति।[१]

अत्र लेखकः कथयति यत् पाश्चात्यभ्यतायाः अन्धानुकरणेन, प्रभूतधनोपार्जनस्य आकर्षणेन च जनाः विदेशं प्रति पलायनं कुर्वन्ति, किन्तु वास्तविकतया विदेशेषु भारतीयानां स्थितिः दयनीया एव। तैः सह निन्दनीयः पक्षपातपूर्णः च व्यवहारः क्रियते। येन कवेश्चेतः नितरां दूयते। अतः सत्यमिदमुक्तं प्राच्यमनीषिभिः यत् –

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' इति।

गोस्वामी तुलसीदासोऽपि तथ्यमेतत् समर्थयन् ब्रूते –

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीडा सम नहिँ अधमाई।।

परोपकारेण तुल्य नास्ति कोऽपि धर्मः। सोऽसौ धर्मः भारतीयसंस्कृतेः मूलाधारोऽपि वर्तते।

अथ च परमधनाढ्यः मेघः
दानेन आशाहीनवितरणेन
शून्यः भवति
प्रत्येकेषु जन्मषु।
तथापि
नैव कदापि मेघः दानाय
कातरः भवति
जलवितरणे
कार्पण्यं प्रकटयति।[२]

कार्पण्यभावम् अप्रकटयन् मेघः स्वकीयप्रत्येकेषु जन्मषु जलवितरणं

कृत्वा भवति। अनेन दानेन कस्यापि आधारे पक्षपातः न भवति। प्रकृतिः सर्वत्र समानतायाः व्यवहारं करोति।

सृष्टेः विकासे प्रगतौच मानवीयमूल्यानि महत्त्वपूर्णताम् अधिगच्छन्ति। भारतीयसमाजस्य आधारशिलाभूतानि मानवीयजीवनमूल्यानि वैश्विकजगति आदर्शाः भवन्ति। कविवर-नायकस्य रचनासु जीवनस्य विविधपक्षेषु मूल्यानां दर्शनं भवति -

सेवाधर्मे सन्नद्धाः हि प्राणाः
संस्कृतिः या अतिमनोरमा
जीवप्रीतिः सम्पत्तिः यदीया
विश्वहिते मतिः यस्याः
स्वकर्मणि सततं निमग्ना।[3]

सम्प्रति नारीषु विभिन्नसौन्दर्यप्रतियोगितानाम् आयोजनं भवति, यत्खलु सर्वथा निरर्थकम् अवास्तविकं च। वस्तुतः वास्तविकसौन्दर्यन्तु क्रियामाणकर्मसु एव आधृतं भवति न तु शारीरिके सौन्दयैम। अतः स्वजीवनस्य परिवारस्य च उपेक्षां कृत्वा या दुःखितानां पीडितानां च सेवायाम् आत्मानं नियोजयति, अपि च यस्याः जीवनस्य एकमात्रं लक्ष्यं सेवा एव अस्ति, सा महिला एव सर्वश्रेष्ठा सुन्दरी, इहलोके परलोके च सुप्रशंसिता भवति इति निस्सन्दिग्धाभिधानम्।

व्यंग्यमाध्यमेन शिक्षाव्यवस्थां प्रति तर्जयन् कविः कथयति -

उद्योगप्रदाने असमर्था विद्या
निष्फला अनादृता जगति
न काऽपि पठति अथ स्पृहयति।
अतः यया सुगमायते धनागमः
समुपलभ्यते अखण्डितः अधिकारः
सा एव विद्यापदवाच्या इदानीन्तनसंसारचक्रं तामेव अपेक्ष्यते।[4]

वर्तमानयुगे जनाः तां विद्याम् अपेक्ष्यन्ते, यया धनागमः सरलतया एव भवति। विद्या धनार्जनस्य साधनमेव अस्ति।

अस्माकं जीवनं न केवलं सांस्कृतिके अपितु प्राकृतिकपर्यावरणे अपि आश्रितम् इत्यतः तस्य रक्षणम् अस्माकं परमं कर्त्तव्यम्। स्वान्तःकरणावस्थितं भावमिमं प्रकटीकुर्वन् कविः कथयति -

समग्रः वनप्रदेशः वृक्षशून्यः
ये वृक्षाः तैः संपूजिताः आराधिताः
ते कर्त्तिताः उत्पातिताः नगरवासिभिः
खण्डिताः भवन्ति तेषां हिताय।[4]

वनप्रदेशस्य दुर्दशां विलोक्य खिन्ना शबरी अद्य चिन्तामग्ना। यतोहि नगरवासिभिः स्वार्थपूर्तिहितवे वृक्षाः कर्त्तिताः। अविवेकेन भूधरखननं नदीजलप्रदूषणं चेत्यादिकं पर्यावरणविघटनात्मकं कार्यं नैरन्तर्येण भृशं क्रियते। वन्यप्राणिनः ये निर्भीकाः सन्तः विचरन्ति ते अपि निर्वाधं व्यापाद्यन्ते। भारतीयसंस्कृतेः संकटापन्नेयम् अवस्था संपूर्णविश्वस्य कृते विचारणीया चिन्तनीया च।

विविधतायाम् एकता भारतीयसंस्कृतेः प्रमुखं वैशिष्ट्यमस्ति। अत्र गुरुकुलपरम्परा सृष्टेः आबाहमानकालादेव प्रचलति। यस्ताम् कारणात् भारतदेशः विश्वगुरुः इति कथ्यते -

राजकुमारः वा ब्राह्मणतनयः
अनयोः भेदः नास्ति
अभिजातस्य वा दारिद्र्यस्य
प्रश्नः नोदेति तत्र
गर्त्तः।[5]

उपर्युक्तोदाहरणे समानतायाः भावं संदर्शयन् कविः नायकः राष्ट्रियभावना परिपोषयति।

निष्कर्षः - डॉ. नायकस्य लेखनी न केवलम् आनन्दं जनयति अपितु ''कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' इति मम्मटाचार्यस्य वचः अन्वर्थीकुर्वन्ती कर्तव्याकर्तव्योपदेशमाध्यमेन लोकजागरणस्य कार्यमपि करोति। वस्तुतः एष एव प्रथमतया आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये व्यंग्यधारायाः पथप्रदर्शकः अस्ति। व्यंग्यमाध्यमेन समाजे व्याप्तं कुसंस्काराणां रहस्यम् उदघाटयत्यसौ। नायकमहोदयस्य रचनासु सर्वे विषयाः सम्मिलिता सन्ति। सः न केवलं धर्माडम्बरं, भ्रष्टाचारम्, आतंकवादराजनीतेः प्रासंगिकविषयान् च आधारीकृत्य रचनाकार्ये प्रवृत्तः, अपितु विभिन्नसामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिकविषयान् अपि विषयीकुरुते। नवागन्तॄषां भविष्यन्नागरिकाणां राष्ट्रकर्णधाराणां कृते मानवीयजीवनमूल्यानां समुचितशिक्षाप्रदानाय सम्प्रति अपि सफलतापूर्वकं रचनाकर्मणि प्रसरणशीलोऽसौ परिलक्ष्यते इति सर्वथा अभिनन्दनार्हः। इति शम्।।

पादटीका -

१. प्रमोदकुमारनायकविरचिता - स्वर्गादपि गरीयसी - पृ. सं. ८
२. प्रमोदकुमारनायकविरचिता - शबरी-मेघः-८५
३. प्रमोदकुमारनायकविरचिता - शबरी-विश्वसुदरी-७०
४. प्रमोदकुमारनायकविरचिता - शबरी-विद्या, ९-१०
५. प्रमोदकुमारनायकविरचिता - शबरी-शबरी, २९-३०
६. प्रमोदकुमारनायकविरचितम् - गुरुकुलम्-५६

Volume - XVII July-Dec 2020 ISSN 2320-2025

Glimpses of Vyasashri Jnanadeep 100 Lecture Series (Webinar during Covid 19)

Published, printed and owned by Dr. Buddheswar Sarangi
Founder Trustee, The Vyasayanam, Regd. No. 1635-IV-477/04
Vedavyas, Rourkela-4, Odisha, Pin-769004
email : vyasasri12@gmail.com
Mobile : 7003415810, 7044016153, 09438542628

IIJ Impact Factor : 2.193 ISSN-2349-364X

वेदाञ्जली

अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत्समीक्षित षाण्मासिकी शोध पत्रिका

(An International Peer Reviewed Refereed Research Journal)

वर्ष-७ अंक-१३ भाग-१

जनवरी-जून, २०२०

प्रधानसम्पादक

डॉ0 रामकेश्वर तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, श्री बैकुंठनाथ पवहारी संस्कृत महाविद्यालय

बैकुंठपुर, देवरिया

सह सम्पादक

श्री प्रसून मिश्र

प्रकाशक

वैदिक एजूकेशनल रिसर्च सोसाइटी

वाराणसी

- व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में नारी चेतना — 54–57
  शशि मथुरिया व डॉ0 पूर्णचन्द्र उपाध्याय
- भारतीय समाज में वर्ण, जाति और वर्ग — 58–59
  सत्येन्द्र कुमार पाण्डेय
- पुरूषार्थ – चतुष्टय में "अर्थ" का स्थान — 60–62
  सरिता कुमारी महला
- संस्कृत व्याकरण में कालुकौमुदी का यण् सन्धि विमर्श — 63–66
  जया शर्मा
- आम चुनाव में कम मतदान लोकतंत्र के लिए चिंता — 67–69
  डॉ0 बिनोद सिंह
- महाभारतकालीन नारियों की शैक्षिक स्थिति — 70–73
  डॉ0 संयोगिता
- विश्व संस्कृत साहित्य में बाल–साहित्य का योगदान — 74–77
  हेमराज सैनी व डॉ0 पूर्णचन्द्र उपाध्याय
- आचार्य दण्डी का व्यक्तित्व — 78–79
  डॉ0 कृष्ण बिहारी पाठक
- मुगल साम्राज्य का पतन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — 80–81
  डॉ0 अनुज कुमार सिंह व डॉ0 राजीव कुमार
- चित्रा मुद्गल की रचनाओं मे नारी — 82–84
  सरस्वती कुमारी
- इतिहासकार जगदीश सिंह गहलोत की इतिहास दृष्टि — 85–87
  कृष्णा खींची
- नागार्जुन और हेगेल के द्वन्द्वन्याय का तुलनात्मक अध्ययन — 88–90
  डॉ0 चन्द्रमोहन पाण्डेय
- सविनय अवज्ञा आंदोलन और सेठ जमनालाल बजाज की सहभागिता — 91–93
  रामसिंह सामोता
- ज्यौतिषशास्त्रे भास्कराचार्यमतेन कालविचारः — 94–97
  तरूण कुमार झा
- मध्ययुगीन समाज मे स्त्रियों की स्थिति — 98–101
  डॉ0 काशीनाथ सिंह
- समाधि और मोक्ष की अवधारणा : घेरण्ड संहिता के विशेष सन्दर्भ में — 102–104
  डॉ0 उदय प्रताप सिंह
- आज के परिवेश में भारतीय दर्शन का महत्त्व — 105–107
  डॉ0 मिताली मीनू
- मनसबदारी व्यवस्था मुगल साम्राज्य के पतन के संदर्भ में — 108–110
  डॉ0 सावीत्री कुमारी
- नेपाल का भौगोलिक अध्ययन सार्क के संदर्भ में — 111–112
  कुमारी रोजी
- राजा तथा राज्य और कौटिल्य — 113–115
  डॉ0 रिंकी कुमारी

वेदांजली, ***An International Peer Reviewed Refereed Research Journal***
वर्ष–**७**, अंक–**१३**, भाग–**१**, जनवरी–जून **२०२०** | **ISSN: 2349-364X**

व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में नारी चेतना

• **शशी मथुरिया व डॉ0 पूर्णचन्द्र उपाध्याय**

मनु ने मनुस्मृति में लिखा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।(मनु. 3.56)

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न रहते हैं और जिस कुल में स्त्रियों को आदर–सत्कार नहीं मिलता, उस कुल में कर्म निष्फल होते हैं। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति अत्युच्च थी। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। महिलाएँ राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी कार्यों में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेती थीं। किन्तु जब मुस्लिम आक्रान्ता भारत आए तो भारतीय स्त्रियों को कई बुराईयों ने जकड़ लिया। उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया। दहेजप्रथा, पर्दाप्रथा और बाल–विवाह जैसी कुरीतियों ने अपने पैर पसार लिए। वर्णव्यवस्था का स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया। विधवाओं की स्थिति दिन–प्रतिदिन खराब होती गई। स्त्रियों की स्वतंत्रता समाप्त हो गई बचपन में वह अपने पिता के युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में अपने पुत्र के अधीन हो गई।

कालक्रमानुसार परिवर्धमान संस्कृत साहित्य का आयाम इतना विस्तृत हो चुका है, कि इसकी प्रत्येक शाखा के उद्गम और प्रसार की पूर्वापरता का निर्णय करना आज अनुसंधान का एक प्रमुख विषय बन गया है। बदलते परिवेश में संस्कृत साहित्य में भी नयापन आया है। आज संस्कृत में न केवल नवीन विचारों को लाया जा रहा है अपितु इन नवाचारों को नये ढंग से रचित भी किया गया। अतः यह शोध प्रबन्ध नवीन काव्य की व्याख्या करने का एक अभिनव प्रयास मात्र है।

"व्यङ्ग्य कवि प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में नारी चेतना" इस शोध पत्र में व्यङ्ग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक के संस्कृत साहित्य में नारी चेतना को शोध पत्र का विषय बनाया है। आधुनिक युग में कई समाज सुधारक तथा शिक्षाविद् हुए, जिन्होंने नारी उत्थान तथा उत्कर्ष हेतु विभिन्न आन्दोलन किए। आज नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है तथा राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक सभी क्षेत्रों में अपनी महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभा रही है।

अन्याय के विरोध में खड़ी शक्ति ही चेतना है। चेतना के यही मुखरित स्वर कवि नायक के साहित्य में सुनाई पड़ते हैं। उनकी रचनाओं में नारी कहीं आदर्श माता के रूप में तो कहीं विमाता के रूप में, कहीं परकीया नायिका के रूप में तो कहीं आदर्श पत्नी के रूप में, कहीं समाज–सेविका के रूप में तो कहीं शोषण और दरिद्रता की प्रतीकभूता रूप में दिखाई देती है। नारी जागरण की सुन्दरतम अभिव्यक्ति के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

श्रान्तः क्लान्तः दुःशासनः
द्विगुणीकरोति
अविरतं दुःसाहसजालं
कुलवधूयौवनदर्शने।
दुर्योधनः सकलचरितम्
आदिशति
'कुरु' 'कुरु'
"कार्यमिदं शुभाय भवतु"[1]

जर्जरित कुरुसभा में कुलवधू द्रौपदी अपने सम्मान और निजता की रक्षा में प्रयत्नशील है। दुर्योधन और दुःशासन अपने पुरुषार्थ प्रदर्शन में रत हैं। उनके लिए द्रौपदी के साथ किया जा रहा दुराचार शुभता के लिए है। शकुनि सहित संपूर्ण सभा मोहग्रस्त है।

आज भी दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि जैसे लोग समाज में संपूर्ण नारी जाति के लिए खतरा बने खड़े हैं प्रत्येक स्थान पर नारी की अस्मिता की रक्षा हेतु अवतारी पुरुष का होना संभव नहीं है। अतः स्त्री को आत्मरक्षा हेतु स्वयं जागरुक तथा सशक्त होना होगा।

सम्पूर्ण रामायण में कौशल्या एक आदर्श माता के रूप में चित्रित है तथा कैकेयी इतिहास के कलुषित अध्याय के रूप में जानी जाती है। विशाल रामायण कथा की मूल कैकेयी ने पृथ्वी के समान सब कुछ सहा।

कैकेय्याः त्यागं धैर्यमेव आश्रित्य
अवतरति श्रीरामपावनचरितः
रामकथा तामेव आश्रयते।
एतदर्थं हि वल्कलपरिहितं रामं वीक्ष्य
सा दुःखिनी न भवति, नापि
राजछत्रपरिशोभितम् आत्मजं दृष्ट्वा
आनन्दाधीरा भवति कैकेयी

• **शोधछात्रा, संस्कृतविभाग राजकीय महाविद्यालय बून्दी व सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृतविभाग, राजकीयमहाविद्यालय, बून्दी**

यदि च समाजदृष्ट्या
सा भर्त्सिता उपेक्षिता।[2]

भगवान् की स्थापना में कैकेयी सदैव प्रयत्नशील रही। कैकेयी के त्याग तथा धैर्य पर ही श्रीराम के पावन चरित्र की रामकथा आश्रित है। वल्कलवस्त्र में राम को देखकर वह दुःखी नहीं होती और राजछत्र से शोभित अपने पुत्र को देख कर वह आनन्दित नहीं होती। समाज की दृष्टि में वह भर्त्सित तथा उपेक्षित चरित्र है।

विमाता के रूप में कलङ्कित तथा समाज का निन्दित चरित्र कैकेयी के चरित्र का दूसरा पक्ष यह है कि स्वयं प्रताड़ना सहकर समाज में सत्य की स्थापना में योगदान दिया। अपने पति की आतुरता भी उसे बाधित न कर पाई। मानव कल्याण का ऐसा उदाहरण मिलना अन्यत्र दुर्लभ है।

"मदिरालयपरिसरे यस्याः चर्च्चा
चलच्चित्रगृहफलके
यस्याः अङ्गदर्शनम्
प्रचारनिमित्तं या माध्यमरूपा
यौतुकं विना प्रज्वाल्यते या
शास्त्रे शक्तिमयी वन्दनीया सा।"[3]

प्राचीनकालीन महिमामण्डित नारी आज मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गई है। मदिरालय परिसर में उसी की चर्चा होती है। चलचित्र में उसी के अङ्गों का प्रदर्शन होता है। प्रचार–प्रसार का जो माध्यम बन चुकी है। दहेज न मिलने पर उसे जला दिया जाता है। शास्त्रों में जिस नारी को शक्तिस्वरूपिणी कहा गया वन्दनीया कहा गया वह आज शक्तिहीन तथा तिरस्कृत दिखाई पड़ती है।

यथा मातृवत् पालयति
पितृवत् उपदिशति
तथैवापि कान्तावत् गहननिशीथे
चिन्तामग्नं वदनं परिचुम्बति
खेदमपहरति स्मितमुखेन।"[4]

प्रियतमा एक प्रेमिका माता के समान पालन–पोषण करती है। पिता के समान उपदेश देती है। पत्नी के समान प्रेम करती है अपनी मधुर मुस्कान से कष्ट को दूर कर देती है।

विभिन्न भूमिकाओं को निर्वाह करने वाली स्त्री दया, प्रेम, ममता, सहिष्णुता तथा त्याग की प्रतिमूर्ति है। वह पत्नी, बहन, पुत्री, माता तथा प्रेमिका बनकर पुरुष का हर कदम पर साथ देती है। स्वयं कष्ट भोगकर उन्हें शीतल छाँव प्रदान करती है और इसीलिए समाज में यह उक्ति प्रचलित है– हर कामयाब इन्सान के पीछे औरत का हाथ होता है।

सा हि लक्ष्मीः सा हि वाणी
देवी हैमवती
लक्ष्मीबाई दुर्गावती मीरा जिजाबाई
सा विश्वसुन्दरी
अनन्तशक्तिशालिनी कल्याणकारिणी।

आज विश्व में प्रतिवर्ष सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का आयोजन होता है किन्तु वास्तव में जो दूसरों के दुःख में दुःखी न हो तथा जिसके हृदय में करुणा रूपी जल न हो वह सुन्दर नहीं हो सकता। सौन्दर्य चर्म में स्थित नहीं है वह तो विचारों, तथा विश्वकल्याण की भावना में निहित है। अतः स्त्रियों को पर दुःखकातर, परोपकारी, सेवाभावी, शक्तिस्वरूपिणी तथा कल्याणकारिणी बनने की प्रेरणा दी गई है।

अपरुपा दारिद्र्याघातेन मरणोन्मुखिनः पितुः औषधिकयार्थं यदा श्रोष्ठिनः गृहं गतवती, तदानीं श्रेष्ठिपुत्रेण एतस्याः सर्वम् अपहृतम्।[5]

कमज़ोर आर्थिक स्थिति वाली अपरूपा जब अपने पिता के लिए औषधि लेने श्रेष्ठी के घर जाती है तो श्रेष्ठी के पुत्र ने उसका सब कुछ हरण कर लिया। पुरुष प्रधान समाज ने अपरूपा को ग्राम से बहिष्कृत कर दिया। निर्जन प्रदेश में वह बिना किसी आत्मीय जन के निवास करती थी।

एकदा रात्रिकाले कस्य कराघातः कपाटे श्रुतः। अपरूपा पश्यति ग्रामस्य मुख्य न्यायधीशः तस्याः निकटे भिक्षां याचते।[6]

प्राणों का भय दिखाकर न्यायधीश ने रात वहीं व्यतीत की। धीरे–धीरे अन्य भी वहाँ आने लगे और इस प्रकार अपरुपा पतित हो गई उसका नाम लेना भी पाप हो गया। अपरूपा चिन्तयति–

न्यायस्य मार्गः सत्ये निहितः अथवा धने। तथैव सतीत्वस्य का भवति संज्ञा?[7]

अपरूपा विचार करती है कि न्याय का मार्ग सत्य में निहित है अथवा धन में क्योंकि धनशाली धन के प्रभाव से न्याय को भी अपने पक्ष में कर लेता है और दरिद्र का सत्य घुट–घुट कर किसी कोने में दम तोड़ देता है।

जब दरिद्रता चारों ओर से पैर पसारती है तो सतीत्व की रक्षा कठिन हो जाती है। अभाववश परिस्थितिवश अपरूपा जैसी नारियाँ पतित हो जाती हैं। हमारे समाज में उच्च आदर्श हैं, नियम हैं, दिन के उजाले में आदर्शों की बात करते हैं और रात के अँधेरे में समाज के ठेकेदार ही मानवता को शर्मसार करते हैं। महिला सशक्तीकरण की बात करने वाले ही महिला की लाज को तार–तार कर रहे हैं। इतना होने पर भी महिला को ही दोषी, चरित्रहीन तथा बहिष्कार योग्य समझा जाता है।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

माता प्रेम, करुणा, दया और सहिष्णुता आदि गुणों से युक्त होती है। वह अपनी संतान के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देती है। किन्तु उसकी संतान में संवेदनाएँ, भावनाएँ तथा कर्त्तव्य परायणता केवल स्वयं तक ही सीमित रहती हैं।

तन्निकटे मातुरपेक्षया पत्न्याः स्थानम् अधिकम् अस्ति।[8]

पिता की मृत्यु के पश्चात् दिनेश कुमार की विधवा माँ ने जैसे–तैसे उसका पालन–पोषण किया। विवाहोपरान्त माता की अपेक्षा पत्नी का स्थान अधिक हो गया। दुर्व्यवहार से दुःखी माता ने घर का परित्याग कर दिया। दुर्भाग्य से दिनेश कुमार दुर्घटनाग्रस्त हो कर नेत्रहीन हो गया। दुःखी तथा अर्थहीन पत्नी चिन्तामग्न हो गई। कुमार की माता पुनः घर पहुँची तथा इस प्रकार के वचन कहने लगी–

"धन रे ! दुःखं नैव करणीयम्। इदानीमपि अहं
जीविता। यथाशीघ्रं चिकित्सालये मम एकमात्रं चक्षुः
नीत्वा तव शरीरे संयोजय। मम निकटे यः धनराशिः
अस्ति, मन्ये तदर्थं पर्याप्तः स्यात्।"[9]

पुत्र चाहे माता से जिस भी प्रकार का दुर्व्यवहार करे किन्तु एक माता सदैव किसी भी प्रकार के दुराग्रह को अपने ह्रदय में नहीं रखती है। उसके ह्रदय में सन्तान के लिए क्षमा और स्नेह रहते हैं।

विजय जिसके जन्म के प्रथम वर्ष में ही उसकी माता का स्वर्गवास हो गया। जिसने विमाता की पीड़ा को सहा। स्नेह और ममत्व के लिए वह हमेशा इच्छुक रहा। युवावस्था में उसके जीवन में कौशल्या का आगमन हुआ और विजय के ह्रदय में अनुराग का स्फुरण हुआ। दोनों विवाह के बंधन में बँधना चाहते थे किन्तु दोनों परिवारों की आपसी रंजिस के चलते यह संबंध आगे न बढ़ पाया।

फलस्वरूप विजय कुमार्गगामी होकर मद्यपान का व्यसनी हो गया तथा गणिका सुरेखा से विवाह करने की इच्छा करने लगा। सुरेखा को उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी माँ चन्द्रिका ने वहाँ भेजा था।

"गणिकावृत्तिः। एतादृशी कलङ्किता वृत्तिः कथं वा उत्तराधिकारसूत्रेण लभते।"[10]

कलङ्कित गणिका वृत्ति को भी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। आज बहुत–सी महिलाएँ इस कार्य से ही अपना जीवनयापन कर रही हैं। कुछ परिस्थितिवश मजबूर हैं तो कुछ की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है परन्तु जो एक बार इस दलदल में गिरी वह फिर कभी इससे न उभर सकी।

"नगरात् प्रत्यावर्त्त्य विजयः पश्यति – सुरेखा मृता।
अन्यस्य पुरुषस्य उपस्थितिं नाङ्गीकृत्य भर्त्सिता सा
आत्ममघातिनी जाता।"[11]

और अंत में सुरेखा ने अपने सम्मान की रक्षा में अपने प्राण गँवा दिए। सुरेखा जैसी कितनी ही महिलाएँ वेश्यावृत्ति के कर्म में लिप्त हैं और कई प्रयासों के बावजूद भी वे समाज की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाती है। कई सरकारी व गैरसरकारी संस्थाएँ ऐसी नारियों के उत्थान के लिए कार्य करती हैं, फिर भी समाज में यह बुराई अभी पूर्णरुपेण समाप्त नहीं हुई है। शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार तथा स्वावलम्बी होकर ही नारी इस देवदासी प्रथा का अंत कर सकती है।

'पापिनी' इस कथा में कथाकार ने ममत्व का चरमोत्कर्ष दिखाया है। एक माता अपने पुत्र की क्षुधाशान्ति हेतु ग्राम देवी के निकट से प्रसाद ला कर उसे सन्तुष्ट करती है, तो ग्रामवासी उसे घेर लेते हैं। ग्रामसभा में पुरोहित उसे पापी घोषित कर देता है और उसे दण्ड दिया जाता हैं–

"पापिनी विमला पंच वर्षाणि यावत् मम गृहे स्थास्यति।
दिवसे एकवारं भोजनं कृत्वा ब्राह्मणस्य मम सेवां करिष्यति।
तस्याः कृते उद्दिष्टात् अन्नात् तस्याः पुत्रस्य भोजनं
स्यात्। एवं सति तस्याः पापक्षालनम् अवश्यं भवेत्।"[12]

एक दरिद्र और निष्कपटक माता जो अपनी ममता के हाथों मजबूर थी, उसे स्वार्थी और भ्रष्ट पुरोहित ने पापिनी सिद्ध कर दण्ड दे दिया। जबकि पापकर्म माता ने नहीं किया दुराचारी ग्रामसभा और उसके पुरोहित ने किया।

निष्कर्ष – व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक ने नारी–प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विवेचन किया है। नारी की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी समस्याओं का विश्लेषण किया है तथा नारी के संदर्भ में विद्यमान परिस्थितियों का गहराई से अध्ययन किया है। उनके साहित्य में नारी का प्रत्येक पहलू समग्रतापूर्वक प्रतिबिम्बित होता है। शास्त्रों में जिस नारी को सर्वोच्च आदर तथा सम्मान प्रदान किया गया वही नारी पुरुष प्रधान समाज में आदिकाल से आधुनिक काल तक अपनी निजता तथा समता की रक्षा करती हुई अपने अस्तित्व को खोजती प्रतीत होती है। डॉ. नायक नारी के प्रति समाज की इसी दोहरी मानसिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाकर उसे समाज में सम्मानित स्थान प्रदानार्थ प्रयत्नशील नज़र आते हैं। इति दिक्।

सन्दर्भ –

1. दारिद्र्यशतकम्, पृ.सं.–29
2. गर्त्तः – युगकेलिः, पृ.सं. 22
3. गर्त्तः–विमाता, पृ.सं.–50
4. गर्त्तः–नारी, पृ.सं.–51

5. शबरी–स्मृतिः, पृ.सं.–26
6. कथासप्ततिः रूपाजीवा, पृ.सं.–3
7. कथासप्ततिः रूपाजीवा
8. कथासप्ततिः रूपाजीवा, पृ.सं.–3
9. कथासप्ततिः–जननी, पृ.सं.–23
10. कथासप्ततिः–जननी, पृ.सं.–23
11. कथासप्ततिः–उत्तराधिकारः, पृ.सं.–40
12. कथासप्ततिः–उत्तराधिकारः, पृ.सं.–40

IIJ Impact Factor : **2.206** **ISSN - 2395-5104**

शब्दार्णव

Shabdarnav

An International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research

Year-6 **Vol. 11, Part-I** **January-June, 2020**

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief
DR. RAMKESHWAR TIWARI
Assist. Professor, Shree Baikunth Nath Pawahari Sanskrit Mahavidyalay
Baikunthpur, Deoria

Executive Editors
Dr. Kumar Mritunjay Rakesh
Mr. Raghwendra Pandey

Published by
Samnvay Foundation
Mujaffarpur, Bihar

- आधुनिक संस्कृत साहित्य मे व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक का योगदान 95–96
  शशि मथुरिया व डॉ0 पूर्णचन्द्र उपाध्याय
- भारत में महिलाओं की दशा–दिशा का सामाजिक पाठ 97–98
  सत्येन्द्र कुमार पाण्डेय
- वल्लभ दर्शन में भक्ति तत्त्व : एक विवेचन 99–100
  नीरू जम्वाल
- व्याकरण शास्त्र में सवर्ण संज्ञा विधान 101–104
  जया शर्मा
- जैनदर्शन में पंचव्रत 105–106
  सरिता कुमारी महला
- महिलाओं का सामाजिक–आर्थिक विकास एवं स्वयं सहायता समूह 107–109
  प्रगति ओझा व डॉ0 विजय लक्ष्मी
- चुनाव में मीडिया की तटस्थता और चुनौतीपूर्ण रिपोर्टिंग 110–113
  डॉ0 बिनोद सिंह
- आचार्य भामह का काव्यालड्.कार 114–116
  डॉ0 कृष्णबिहारी पाठक
- आधुनिक समाज और तीसरे जेंडर के जीवन की त्रासदी 117–120
  सरस्वती कुमारी
- अलवर में सामाजिक परिवर्तन व सुधार में विभिन्न संगठनों व संस्थाओं का योगदान (18वीं–20वीं शताब्दी के सन्दर्भ में) 121–124
  डॉ0 बी. एल. खटीक
- राष्ट्रीय आंदोलन में सेठ जमनालाल बजाज का वित्तीय योगदान 125–126
  रामसिंह सामोता
- सिद्धान्ततत्त्वविवेककारस्य गोलमृग कमलाकरभट्टस्य मध्यमाधिकारे वैशिष्टयम् 127–130
  तरूण कुमार झा
- दर्शनोपनिषदि अष्टांगयोगस्वरूपम् 131–133
  जितेन्द्र
- मध्ययुगीन समाज मे शिक्षा 134–137
  डॉ0 काशीनाथ सिंह
- 'दारोश तथा अन्य कहानियां' में व्यक्त हिमाचली संस्कृति 138–140
  दीपा रानी
- पातंजले ईश्वरचिन्तनम् 141–148
  Dhrubajyoti Bhattacharjee
- मानवाधिकार का आधार : मानव–मूल्य 149–150
  डॉ0 मिताली मीनू
- मुगल साम्राज्य का पतन : कृषक विद्रोहों के संदर्भ में 151–153
  डॉ0 सावित्री कुमारी
- आपदा प्रबन्धन : उत्तर बिहार के संदर्भ में 154–155
  डॉ0 कुमारी रोजी
- सम्राट कनिष्क का राजनैतिक विरासत और सद्धर्म का प्रचार 156–159
  डॉ0 दीपेन कुमार राय
- मुगल शासकों की दक्षिण नीति 160–162

आधुनिक संस्कृत साहित्य में व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक का योगदान

• **शशी मथुरिया** व **डॉ0 पूर्णचन्द्र उपाध्याय**

विश्व को संजीवनी देने वाली संस्कृत भाषा के कारण ही भारतीय संस्कृति की अविचल निर्मल धारा युगों-युगों से प्रवाहित हो रही है, जो सभी भारतवासियों को एकता के सूत्र में बांधे रखती है| वेद-वेदांग, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवतगीता, उपनिषद्, मनुस्मृति, विदुरनीति, पंचतन्त्र, हितोपदेश तथा विभिन्न संस्कृत सूक्तियाँ वर्तमान जीवन में भी प्रासंगिक है| अत: यह कथन पूर्णतया न्यायसंगत है कि संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब है| वर्तमान में संसार में श्रेष्ठ कवि संस्कृत साहित्य के कलेवर को अलंकृत करने में दत्तचित्त हैं, उनमें विद्वान युवा व्यंग्य कवि डॉ. प्रमोद कुमार नायक का स्थान अन्यतम है|

नवोन्मेषी प्रतिभारूपी सम्पत्ति के धनी डॉ. प्रमोद कुमार नायक का जन्म ओड़िसा प्रांत के पूरीमंडल के गोप तहसील में गणेश्वरपूर नामक स्थान पर 27 अप्रेल 1965 में हुआ| पिता श्री रघुनाथ नायक तथा माता का नाम श्रीमती अन्नपूर्णा देवी था| डॉ. प्रमोद कुमार नायक ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गोप, पूरी से प्राप्त की| संस्कृत शिक्षा श्री सदाशिव केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, पूरी से प्राप्त करते हुए नवव्याकरणाचार्य में स्वर्ण पदक प्राप्त किया तथा व्याकरण विषय में ही विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) की उपाधि प्राप्त की| नायक जी का वर्तमान कार्यक्षेत्र दामोदर संस्कृत महाविद्यालय, पूरुणाबाजार, भद्रक (ओडिशा) है|

नायक जी की रचनाएँ जीवन के वास्तविक स्वरूप को उजागर करती है| समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हुई उनकी लेखनी आनन्द प्रदान करने के साथ-साथ लोकजागरण का कार्य भी करती है| समाज में प्रचलित कुसंस्कारों की कठोर समालोचना के साथ हास्य रस की अमृत धारा की प्राप्ति होना ही डॉ.नायक का साहित्य वैभव है| पूर्व में प्रियवाक लोकभाषा तथा सुश्री आदि पत्रिकाओं में आपके अनेक व्यंग्य लेख प्रकाशित हो चुके है| वस्तुत: प्रमोद कुमार नायक ही प्रथमतया आधुनिक संस्कृत साहित्य में व्यंग्य धारा के पथ प्रदर्शक हैं| डॉ. प्रमोद कुमार नायक की प्रकाशित कृतियों में तीन पद्य काव्य हैं- (1) शबरी (2) गर्त्त: तथा (3) दारिद्यशतकम्| इनमें शबरी तथा गर्त्त: इन दोनों काव्यों में व्यंग्य कविताओं का संग्रह है| दारिद्यशतकम् एक लघु काव्य है| जहाँ पर दरिद्रजनों के दु:ख का कवि ने बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है| आपने तीन व्यंग्य कथा संग्रह- (1) उ वाच कंडूकल्याण: (2) कथासप्तति: और (3) स्वर्गादपि गरीयसी लिखे| स्वर्गपुरे नामक संस्कृत व्यंग्योपन्यास की भी सुंदर रचना की| प्रियवाक्, लोकभाषा तथा सुश्री आदि पत्रिकाओं में आपके अनेक व्यंग्य लेख प्रकाशित हो चुके है| अत: यह सर्वत्र श्रेष्ठ व्यंग्यकार के रूप में प्रसिद्ध है| व्यंग्य माध्यम से समाज में बढ़े हुए अत्याचार का तथा नेतृवर्ग के कुसंस्कारों के रहस्य को उजागर किया है| शासन के विरुद्ध संग्राम की प्रेरणा दी है|, जिससे समाज दुर्नीति से मुक्त हो जाएगा और भ्रष्ट चरित्र का भी पुननिर्माण हो सकेगा|

कविवर नायक जी की रचनाएँ समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं इनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक मानवीय मूल्यों की भी सुंदर झांकी देखने को मिलती है आप एक सफल शिक्षक के रूप में शिक्षा के सन्दर्भ में लिखते है-

"अन्धे तमसि जीवने ज्योतीरूपा विद्या
नाशयति अज्ञानान्धकारं
दर्शयति परमकल्याणमार्गम्"

• **शोधार्थिनी संस्कृत विभाग, कोटा युनिवर्सिटी, कोटा** व **निदेशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, कोटा युनिवर्सिटी, कोटा**

अर्थात् जीवन के अज्ञानरुपी अन्धकार का नाश कर ज्योतिस्वरूपिणी विद्या परम कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करती है| इसी विद्या से मानवता में परोपकार की भावना का बीजारोपण होता है भारतीय संस्कृति के मूल में परोपकार ही है हमारे शास्त्रों में भी लिखा गया है कि परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है| कविवर नायक जी गर्त्तः नामक पुस्तक में नारी की व्याख्या करते हुवे लिखते हैं-

"मदिरालयपरिसरे यस्याः चर्चा
चलच्चित्र गृहफलके
यस्याः अंगदर्शनम्
प्रचारनिमित्तं या माध्यमरूपा
यौतुकं बिना प्रज्ज्वाल्यते या
शास्त्रे शक्तिमयी वन्दनीया सा|"

अर्थात्- मदिरालय परिसर में जिसकी चर्चा होती है, चलचित्रों में जिसका अंग प्रदर्शन होता है | जो प्रचार-प्रसार के माध्यम का स्वरूप बन गई है, दहेज के अभाव में आये दिन जिस नारी को जला दिया जाता है, वही नारी शास्त्रों में शक्तिमयी तथा वन्दना के योग्य कही गई है|

कविवर डॉ. नायक की लेखनी से कोई भी विषय अछूता नहीं रहा है| आपने न केवल धार्मिक पाखंडों, भ्रष्टाचार, आतंकवाद तथा राजनीति जैसे प्रासंगिक विषयों को अपनी लेखनी का आधार बनाया बल्कि आपने नव पीढ़ी के लिए परोपकार, सेवा, शिक्षा, संस्कृति, पर्यावरण संरक्षण और कर्म प्रधानता का संदेश दिया है| आपकी लेखनी नारी चेतना श्रमिक चेतना जैसे सामाजिक मुद्दों पर भी मुखर प्रतीत होती है| व्यंग्य के माध्यम से नायक जी ने समाज के वास्तविक स्वरूप को अपनी रचनाओं में सफलतापूर्वक उकेरा है|

सन्दर्भ-

1. नायक, प्रमोद कुमार. शबरी-विद्या. पृष्ठ संख्या-06, 83
2. नायक, प्रमोद कुमार. 2003. कथासप्ततिः,- सेवा लोकभाषाप्रचारसमितिः शरधाबाली पूरी सेवा पृ.सं- 05
3. नायक, प्रमोद कुमार. 2013. गर्तः. लोकभाषाप्रचारसमितिः शरधाबाली पूरी
4. नायक, प्रमोद कुमार. 2013. दरिद्रसप्तकम्. कथाभारती नरेंद्रपुरम्, कालिकाता

❖

व्यंग्यकारप्रमोदकुमारनायकेन सह साक्षात्कारः

व्यंग्यकारप्रमोदकुमारनायकेन सह साक्षात्कारः

साक्षात्कर्त्री – शशी मथुरिया

प्रश्नः 1 **कृपया भवतां जनिवृत्तं शिक्षादिविषयं च विज्ञाप्य अस्मान् कृतार्थयन्तु।**

उ. ओडिशाराज्ये पुरीमण्डलान्तर्गते गोपनामकोपखण्डे गणेश्वरपुरग्रामः मदीयं जन्मस्थानम्। ज्योतिर्वित् पण्डितः रघुनाथनायकः मे जनकः जननी च अन्नपूर्णा देवी। ग्रामविद्यालयमुत्तीर्य गोपस्थिते निगमानन्दोच्चविद्यालये विद्यालयशिक्षां समापितवान्। अनन्तरं पुरीस्थिते श्रीसदाशिवकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठे (साम्प्रतिककेन्द्रीयसंस्कृत–विश्वविद्यालयपरिसरे) व्याकरणाशास्त्रमवलम्ब्य विद्यावारिध्युपाधिं (Ph.D.) प्राप्तवानस्मि।

प्रश्नः 2 **कविकर्मणि भवतां प्रवृत्तिः कदारभ्य जाता?**

उ. ओडिशाराज्ये पालानामकः कार्यक्रमः प्रचलति। यत्र साहित्यचर्चा प्रामुख्यं भजते। वाल्ये पित्रा सार्धम् अनेकशः पाला मया अवलोकिता। सुतरां तदारभ्य कविकर्मणि प्रवृत्तिः मयि संजाता। परस्मिन् काले पुर्याम् अध्ययनकाले गुरुवराणां आचार्यगोपालचन्द्र–पण्डामहोदयानां प्रेरणया इदं पल्लवितम् अभूत्।

प्रश्नः 3 **प्राचीनेषु अर्वाचीनेषु च कविषु भवतां कवित्वप्रेरकौ प्रियतमौ च कौ? किं चात्र कारणम्?**

उ. प्रश्नोऽयम् अतीव गहनः। प्राचीनाः अर्वाचीनाश्च सर्वे कवयः मम प्रणम्याः। कवयः सृष्टि– निर्मातारः। सुतरां तेषु प्रियाप्रिययोः विचारः नैव कर्तव्यः। तथापि प्राचीनेषु कविषु महाकविः भवभूतिः मम समधिकः प्रियः। उत्तररामचरितं च मम प्रियतमः ग्रन्थः। वहुवारं तमेव पठामि। इदानीमपि कदाचित् पठामि। यत्र सीतापतिः परंब्रह्मापेक्षया साधारणमानवत्वेन उपस्थापितः। अयोध्यानरेशस्य अन्तःप्रदेशे कश्चन साधारणगृहस्थः संगोपितः। यः प्रियतमायाः विरहेण क्रन्दति। भ्रातृषु स्निह्यति। गुरून् प्रणौति। एवमपि शम्बुकस्य वधायापि दौर्वल्यम् अनुभवति। अहं हास्यरसस्य प्रशंसकः। करुणरसस्यापि। मम विचारेण इमौ द्वौ यमजौ। एकं विना मानवजीवने अन्यः असम्पूर्णः। एकस्य परिपूर्तये अपरस्य उपस्थितिः अनिर्वार्य्या। पूर्णाय। पूर्णतमाय।

विशालं भारतवर्षम्। ततोऽधिकं संस्कृतभाषायाः साम्राज्यम्। सुतरां नैव सर्वे कवयः नाऽपि तेषां कृतयः मया दृष्टाः। अथच अर्वाचीनकविषु महाकवयः राधवल्लभत्रिपाठिनः मम समधिकाः प्रियाः। त्रिपाठिनां साहित्यं नैव कदापि कल्पनासर्वस्वं, नाऽपि मिथ्याचारस्य समर्थकम्। अथच तदेव मानववादस्य वावदूकम्। ईश्वरस्य स्तुतिगानापेक्षया दुःस्थस्य निःस्वस्य यन्त्रणादग्धस्य मानवस्य चरितम् अनेकत्र प्राधान्यं भजते। नैव कुत्रापि तदीये साहित्ये सत्यस्य मुखं सौवर्णेन पात्रेण पिहितम्। अधिकन्तु सर्वेषां कृते तदेव उन्मोचितम्।

प्रश्नः 4 सहृदयरसास्वादकत्वेन इदानीं यावत् भवद्रचितेषु काव्येषु किं तावत् प्रियतमम्?

उ. कश्चन दरिद्रः पिता स्वकीयान् सन्तानान् समुपयुक्तैः अन्नवसनादिभिः पालयितुं यद्यपि नैव समर्थः, तथापि स्नेहमात्रदानाय नैव कुण्ठितः। समानस्नेहस्पर्शेन तस्य सन्तानाः जीवितुं शक्नुवन्ति। तदर्थं पिता नैव कदापि स्नेहवीजदाने न्युनाधिकं करोति। तस्य दृष्ट्या सर्वे तदीयाः, सर्वेऽपि समानाः।

अथ च सहृदयाः पाठकाः रसग्रहणकाले स्वतन्त्राः भवन्ति।

प्रश्नः 5 संस्कृतस्य प्राक्तनी दशा कीदृशी आसीत्?

उ. प्राक्तनं संस्कृतसाहित्यम् अधिकं समुन्नतम् आसीत्। विशेषतः राजानुग्रहात् कवयः स्वकर्मणि प्रवृत्ताः अभवन्। तदर्थमेव विश्वविश्रुतानि काव्यनाटकादीनि अस्मत्पुरतः इदानीं प्रतिभान्ति।

परन्तु संस्कृतभाषा नैव सुदूरातीते गणभाषा आसीत्। स्त्री–शुद्र–वनज–पर्वतजादयः संस्कृतस्य व्यवहरणे अशक्ताः आसन्। यदर्थमेव पालिप्राकृतादीनां भाषणाम् आविर्भावः जातः। इमाः भाषाः परस्मिन् काले गणभाषात्वेन आत्मानम् आविर्भावयन्ति स्म। यदर्थमेव संस्कृतस्य प्रसारः संकुचितः जातः।

प्रश्नः 6 संस्कृतभाषायाः साहित्यस्य च सामसामयिकी दशा कीदृशी अनुभूयते?

उ. इदानीन्तनकाले संस्कृतभाषायाः उपरि सर्वकारीयानुग्रहः अधिकतया जायते। अध्ययनाध्यापनार्थं स्वतन्त्राणि शिक्षानुष्ठानानि प्रतिष्ठापितानि सन्ति। तत्तु अपूर्वं शुभलक्षणम्। तथैव जनाः अपि संस्कृते प्रीतिभावं परिप्रकटयन्ति। कश्चन संस्कृतं वक्तुं नैव पारयेत् नाम अथ च संस्कृतस्य नामश्रवणेन सः आनन्दितः भवति। गीतोपनिषदां श्लोकान् वाचयति। हितोपदेशादीनां गल्पं भावयति। मम दृष्ट्या जातिसम्प्रदायविचारं विना इदानीं संस्कृतं गणभाषागौरवप्राप्तये गतिशीलमस्ति।

साहित्यप्रसंगस्तु स्वतन्त्रः अस्ति। इदानीं वहवः विद्वांसः साहित्यकर्मणि संलग्नाः भवन्ति। आनन्दस्य विषयः भवति, अधुनातनं साहित्यम् अधिकाधिकतया जीवनस्य कथां वाचयति। समाजस्य प्रकृतं चित्रमुपस्थापयति।

प्रश्नः 7 **संस्कृतस्य भविष्यत्कालिकी दशा कीदृशी स्यात्?**

उ. अस्मदीया कामना तु संस्कृतम् इतोऽप्यधिकं समुन्नतं भवतु। विश्वभाषाजगति स्वतन्त्रं स्थानम् अलंकरोतु।

प्रश्नः 8 **व्यंग्यात्मकरचनाकर्मणि भवदीया विशिष्टा प्रवृत्तिः किमर्थम्?**

उ. व्यंग्यकारः नैव कस्यापि पक्षधरः। प्रकृतस्य सत्यस्य वाचने नैव कदापि भयग्रस्तः नाऽपि प्रदर्शितलोभप्रलुब्धः। कदाचित् अभिधावाचनेन श्रोता दुःखभाग् भवेत्। येन आत्मनः संशोधनाय इच्छां नैव प्रकाशयेत्। अथ च व्यंग्यशैली प्रथमतः श्रोतारं हासयेत्। अनन्तरं तमेव संशोधयेत्। समाजसंस्कारः कस्यचिदपि व्यंग्यकारस्य मूलमन्त्रः। तदर्थम् अस्मिन् कर्मणि मम मतिः संलग्ना। दुःखपीडितस्य मनुष्यस्य मुखे हास्यरेखां जनयितुं ममैषा प्रचेष्टा।

अत्र इदं वक्तुं पारयामि, अधुना संस्कृतजगति व्यंग्यसाहित्यस्य महान् आदरभावः दृश्यते। व्यंग्यकाराः अपि अनुदिनं वर्धन्ते। अथ च कियद्भ्यः वर्षेभ्यः पूर्वम् तादृशी स्थितिः नासीत्। मत्पूर्वं प्रशस्यमित्रशास्त्रिणा व्यङ्ग्यश्लोकाः संरचिताः। ते सर्वे बहुलतया पाठकीयां स्वीकृतिं लब्धवन्तः। यदा अहं स्वतन्त्ररूपेण व्यंग्यकथाः लिखितुं प्रारब्धवान्, ताश्च सर्वाः सुश्रीः लोकसुश्रीः–प्रियवाक्–प्रियम्वदादिषु पत्रपत्रिकासु प्रकाशिताः, तदानीं मिश्रा प्रतिक्रिया प्राप्ता। केचन यदा प्रशंसितवन्तः, अन्ये च केचन मां भर्त्सितवन्तः। पत्रप्रेरणेन इमाः कथाः नैव प्रकाशयितव्या इति सम्पादकान् निर्देशितवन्तः। तादृशं निन्दाप्रशंसापूर्णं हारं गलदेशे संस्थाप्य अहं स्वकर्मणि प्रवृत्तः। यस्य सुफलमधुना उपलभ्यते।

प्रश्नः 9 **भवद्रचनासु निहितं व्यंग्यं ध्वन्यात्मकं वक्रोक्तिमूलकं वा?**

उ. व्याकरणस्य आधारेण न काऽपि भाषा सृष्टा। अधिकन्तु भाषायाः आधारेण व्याकरणं सृष्टम्। तथैव अलंकारशास्त्रं सम्मुखे संस्थाप्य न किमपि काव्यं निर्मितम्। अथच काव्यनाटकादीनां स्वरूपस्य अवधारणेन अलंकारशास्त्रं विरचितम्। सुतरां मम व्यंग्यं कीदृशमस्ति, अत्र प्रमाणीभूताः भवन्ति आचार्याः।

प्रश्नः10 संस्कृतसाहित्ये (अर्वाचीने) अपरे के व्यंग्यकाराः भवतां दृष्टिपथम् आगताः?

उ. संस्कृत साहित्यस्य क्षेत्रं विशालमस्ति। नाहं सर्वान् पठामि। तथापि अग्रजः प्रशस्यमित्रशास्त्री, वनमाली विश्वालः, प्रमोदभारतीयः अन्येऽपि व्यंग्यसाहित्यसाधने संरताः भवन्ति।

अत्रापि अधिकस्य आनन्दस्य विषयः भवति, लब्धप्रतिष्ठिताः वाणीवरदपुत्राः अपि इदानीं व्यंग्यसाहित्यं प्रति स्पृहाशीलाः भवन्ति। सुतरां संख्याधिक्यात् सर्वेषां नामोच्चारणं नैव सहजायते। अत्र प्रसंगे महाकवीनां राधावल्लभत्रिपाठिनां **"अथ श्रीगूगलसूक्तम्"** इति शीर्षकान्विता व्यंग्यकविता अवलोकनीया—

ऊ अस्य श्री गूगलसूक्तस्य श्रीगूगलदेवता, राधावल्लभ ऋषिः

अनुष्टुव्—गूगलादीनि च्छन्दांसि,

गूगलपाशान्मुक्तये विनियोगश्च। (पद्यबन्धा—स्पन्दः—16)

प्रश्नः 11 व्यंग्यरचनाकारस्य किं तावत् अपूर्वत्वम्?

उ. व्यक्तिविशेषस्य समाजस्य च यदेव निरन्तररूपेण हितसाधनं कुरुते, तदेव साहित्यम्। नवजातकं कमपि रावणादिवत् अकृत्वा रामादिवत् प्रवर्त्तनसामर्थ्यं केवलं साहित्यस्य एवास्ति। तत्रापि साहित्यस्य विभिन्नाः विभागाः विराजन्ते। सर्वेषां लक्ष्यन्तु समानमेव। परन्तु सहजेन सरलेन च उपायेन समाजनिर्माणकर्म व्यंग्यसाहित्येन एव कर्त्तुं शक्यते। प्रचण्डवेत्राघातेनाऽपि पाठकः साहित्यस्य येनैव विभागेन हासं हासम् आत्मानं संशोधयति, सः एव विभागः खलु व्यंग्यविभागः। यत्र आघातः अस्ति अथ च यन्त्रणा नास्ति। संशोधनमस्ति अथ च वृथोपदेशः नास्ति। भिन्नानां चरित्राणां व्याख्यानेन व्यंग्यकारः पाठकस्य दुर्गुणान् अपसारयति। कदाचित् कथायाः काले आत्मानम् उपहासयेत्। तथापि तस्य लक्ष्यं भवति समाजसंस्कारः। प्रचण्डदुःखनिदाघे आत्मानं सन्ताप्य अन्येभ्यः निर्मलच्छायावितरणमेव व्यंग्यकारस्य अपूर्वत्वम्।

प्रश्न. 12 आधुनिक संस्कृत साहित्ये कथासाहित्यस्य किं तावद वैशिष्ट्यम्?

उ. साहित्ये सर्वेषां विभागानां गुरुत्वं नितरां वर्त्तते एव। तत्रापि विभिन्नानां विभागानां रससिक्ताः पाठकाः सन्ति। सुतरां कथसाहित्यस्यापि स्वतन्त्र्यवैशिष्ट्यं विद्यते। कवितादिषु स्पष्टरूपेण यदेव चित्रयितुं नैव शक्यते, तदेव तु कथासु सम्भवति।

प्रश्नः 13 **संस्कृतस्योपयोगित्वं सर्वकारकर्त्तृकत्वं, सर्वजनसामान्यकर्त्तृकत्वं वा? कृपया भवद्विचारं प्रकटयन्तु?**

उ. अत्र उभययोः पक्षयोः गुरुत्वपूर्णं कर्त्तृकत्वं विद्यते।

प्रश्नः 14 **संस्कृतरचनानां विशेषतया भवदीयरचनानां किं तावत् सामाजिकम् अवदानम्?**

उ. शान्तिप्रीतिमैत्रीविमण्डितसमाजनिर्माणम्।

प्रश्नः 15 **समकालिकसंस्कृतसाहित्यकाराणां समीक्षकाणां शोधार्थिनां विद्यार्थिनां च कृते कः परामर्शात्मकः सन्देशः?**

उ. स्वकीयं कर्त्तव्यम् उत्तमरूपेण निभालयितुं सर्वे यत्नशीलाः स्युः। स्वकीयं साहित्यं कथं लोकाभिमुखं भवेत्, एतदर्थं साहित्यिकाः यत्नशीलाः स्युः। इदानीमपि आधुनिकसंस्कृतसाहित्यं समीक्षाक्षेत्रे दुर्बलं भवति। समीक्षानाम्ना यादृशी धारा प्रचलति, सा खलु वृथाप्रशंसात्मिका अथवा सारांशोपस्थापनमूलिका। एतदर्थं समालोचनायाः समीक्षायाश्च विद्यते महती आवश्यकता। परन्तु सा मित्रस्य चक्षुषा भवेत्। शोधार्थिनस्तु उत्तमरूपेण ग्रन्थान् अवलोक्य विचारयन्तु। येन नवीनस्य विचारस्य प्रकटनं सहजसाध्यं स्यात्। तथैव विद्यार्थिनः आगामियुगनिर्माणाय प्रस्तुताः भवन्तु। यतोहि नवोदिताः विद्यार्थिन एव युगकालावच्छिन्नराष्ट्रनिर्मातारः इति नात्र काऽपि संशितिः।

♦♦♦♦